सम्मेलनाङ्क—

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ७-८ फाल्गुन १९८०; चैत्र १९८१

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)   इस अंक का मूल्य ।=)

विषय-सूची

संख्या	विषय	पृष्ठ

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्ण १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है, जो भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाक व्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य२=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें पत्रिका के सम्पादक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से और प्रबन्ध संबन्धी पत्र 'मन्त्री' हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से आना चाहिए।

५—कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने, प्रकाश करने वा न करने का अधिकार सम्पादक को है।

आवश्यक सूचना

६—"आज से सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी।

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) रुपया सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तक लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं। अतः सर्व साधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहां नहीं मिलतीं।

निवेदक—

संयोजक

पुस्तक-प्रकाशन-समिति

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थ रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दर्शक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। वह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ; उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

३—भारतगीत

लेखक—श्री पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठकजी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है इसकी प्रस्तावना साहित्य मर्मज्ञ श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा जहाँ से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का सन्देश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ संख्या ४०६, मूल्य केवल १॥)

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है । इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है । हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है ? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह । इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें । महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है । पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिंगल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद }

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह। प्रथमा परीक्षा में स्वीकृत। मूल्य ।)

६—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। संदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४४८, मूल्य २।)

१२—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस. सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की है। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≈)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

१३—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सागर में से २५० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लाला-यित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक कागज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४२५ मूल्य २)

१४—विहारी-संग्रह

संपादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की बिहारी सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटासा संग्रह तैयार किया गया है। जहां तक संभव हुआ है इसमें एक दम शृंगारी दोहों का समावेश नहीं किया गया है, केवल ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना

किसी संकोच के प्रथमा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ।)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

संपादक—श्री वियोगी हरि

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार संकलन किया गया है। इस संग्रह की चार विशेषताएं हैं:—

(१) सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया है, कोई प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गई हैं जिससे साधारण पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

(४) प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवन चरित और उसकी कविता की सूक्ष्म आलोचना भी की गई है।

संक्षेप में, प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को आद्यन्त इस ब्रज-माधुरी-सार का अवलोकन करना चाहिये। पृष्ठ संख्या ६३२, मूल्य सजिल्द संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

संपादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसीकृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक इस भाग में समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठ संख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और सजिल्द का १।) रु०

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
की
मुख-पत्रिका

भाग ११ } फाल्गुन, संवत् १९८०, चैत्र संवत् १९८१ { अङ्क ७, ८,

स्वागत-गान

आज हम धन्य धन्य हैं नाथ !
लहि पद-पद्म-पराग तुम्हारे, हम सब भये सनाथ ॥
लहि अति मोद नयन निर्भर जल उछरत धोवत पांव ।
भौंह खड़ी पग के पोंछन को, हृदय हमारे ठाँव ॥
चंचल चित हित योग आप है भलो कियो महराज !
छमि अपराध हमारे सरबस, लेहु सँभारहु काज ॥
धूप, दीप, नैवेद्य, पत्र, फल फूल शब्द नहिं पास ।
भक्ति—भाव श्रद्धाञ्जलि लीजे, कीजे हिय में बास ॥
इन्द्रप्रस्थ मँह 'उदित,' 'अवध' छबि निरिखि २ सुख होत ।
जानि अवध 'पुरुषोत्तम', 'शंकर' आये 'करन' उद्योत ॥

—नाथूराम 'शंकर' शर्मा

भये हम नाथ ! अनाथ सनाथ ॥ टेक ॥
दरसके पान भक्ति भेषज को, भव-रुज-हारी क्वाथ ।
प्रभु के शुभ दर्शन सों आये, जीवन के फल हाथ ॥

भये हम नाथ ! सनाथ ॥
धोवत हैं पद-पद्म रावरे, ढार ढार दृग-पाथ ।
चूमैं पोंछ पोंछ पलकन सों नाय नाय कर माथ ॥
भये हम नाथ ! अनाथ सनाथ ॥
शंकर दीनदयाल तिहारो, कबहु न छोड़ैं साथ ।
उदित ह्वै गये भाग्य हमारे; गाय गाय गुण गाथ ॥
भये हम नाथ ! अनाथ सनाथ ॥

—उदित मिश्र

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का चौदहवां अधिवेशन

पहला दिन

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत सभापति कविवर पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' तारीख २२ को सबेरे ५॥ बजे दिल्ली पहुंचे । सम्मेलन के स्थान तक आपका खूब जुलूस धूमधाम से १ बजे के लगभग निकाला गया ।

भारत के भिन्न भिन्न भागों से प्रतिष्ठित प्रतिनिधि आये थे । इनमें श्रीपुरुषोत्तम दास टंडन, पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्रीनगर (पुर्निया) के कुंवर गंगानन्द सिंह, पंडित कृष्णकान्त मालवीय, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,' पंडित द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, पंडित पद्मसिंह शर्मा, पंडित गणेश विहारी मिश्र, पंडित श्यामविहारी मिश्र, पंडित माधव राव सप्रे, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित झाबरमल शर्मा, पंडित गिरधर शर्मा 'नवरत्न', मौलाना आरिफ़, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, श्रीरामदास गौड़, श्रीहरिहर शर्मा, पंडित नरदेव शास्त्री, पं० ज्वालादत्त शर्मा आदि सज्जनों के नाम उल्लेखनीय हैं । हाल दर्शकों से भरा हुआ था ।

पहले "वन्देमातरम्" का राष्ट्रीय गीत गाया गया। फिर स्वागत-कविताएं पढ़ी गईं। इसके बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने निम्न लिखित अपना स्वागत-भाषण सुनाया।

ओ३म्

इला सरस्वती मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्तु अस्रिधः॥ मं० १—सूक्त १३। मं० ९॥

"इला (गो) सरस्वती (वाणी) मही (धात्री, मातृभूमि) (इन) अस्रिधः (हिंसा रहित) मयोभुवः (सुखों का सम्पादन करानेवाली और) देवी (दिव्य गुणों को सिद्ध करानेवाली) तिस्रः (तीनों को) बर्हिः (घर घर में) सीदन्तु (प्रकाशित करो)।"

सरस्वती की उपासक बहिनो और भाइयो!

आज चिरकाल पीछे मेरी इच्छा पूरी हो रही है जब मैं आप सब भाई-बहनों का आर्य सम्राटों की पुरानी राजधानी में स्वागत कर रहा हूं। यद्यपि मेरा जन्म पंजाब में हुआ, तथापि यज्ञोपवीत लेकर देवनागरी अक्षरों का अभ्यास मैंने काशी नगर में ही किया था। मुझे गोस्वामी तुलसीदास की शान्तिदायिनी कविता का मधुर रसपान करने के योग्य बनाकर मेरे पिता बांदा को पधारे जहां कि पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम उर्दू था। फिर कई स्थानों में उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी की दासता में जकड़े जाकर अन्त को तीन वर्ष काशी धाम में फिर व्यतीत करने का अवसर मिला और एक सज्जन पंडित ने मेरी अरुचि होते हुए भी देववाणी के कुछ भाव मेरे अन्दर ज़बरदस्ती ठूंस दिये। समय के हेरफेर ने बहुत कुछ विरुद्ध यत्न किया, परन्तु वह संस्कार कुछ कुछ जमे ही रहे थे। जब संवत् १९३६ में मातृभूमि और मातृभाषा, दोनों के उद्धारक और गौमाता के परम भक्त संन्यासी ऋषि दयानन्द के सत्संग का अवसर मिला, उस समय हृदय में देवी सरस्वती की उपासना का बीजमात्र पड़ा, जो ५ वर्ष बिना खाद और जल के ऊसर भूमि में दबा रहा। पांच वर्ष पीछे संवत् १९४२ के आरम्भ में उसको

खाद और जल दोनों मिले और अंकुर निकल कर वह वृक्ष होगया जिसने हृदय पर से असंस्कृत भाषाओं का राज्य सदा के लिए दूर कर दिया।

मिश्रबन्धुओं ने मातृ (आर्य) भाषा हिन्दी के इतिहास में उस समय का "दयानन्द काल" लिखा है। यह ठीक ही है। संस्कृत के प्रगल्भ विद्वान् होते और निज मातृभाषा गुजराती रखते हुए भी उन्होंने जिस श्रेष्ठ समाज की स्थापना की, उसके सभासदों के लिए, कम से कम, आर्यभाषा का जानना आवश्यक बतलाया और अपने ग्रन्थों का माध्यम भी उसी भाषा को बनाया। जिस भाव से प्रेरित होकर गुसाईं तुलसीदासजी ने संस्कृत के अपूर्व विद्वान् होते हुए भी कह दिया था—

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाच।"

उसी भाव से प्रेरित होकर सर्वसाधारण के हित के लिए आचार्य दयानन्द ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के आगे सिर झुका दिया।

तिब्बत की समतल चोटी से उतर कर प्राचीन आर्यों ने जिस पवित्र भूमि पर वेद गान किया और हवन यज्ञ की सुगन्ध से वायु मंडल स्वच्छ बना दिया था, उस पर दो हज़ार वर्ष पहिले कुछ कुछ आक्रमण आरम्भ हुए। परन्तु एक सहस्र वर्ष तक उनका परिणाम यह होता रहा कि हमला करनेवाले आर्य-संस्कारों से प्रभावित होकर लौट जाते रहे। परन्तु उसके पीछे समय आया जब सारा चित्र ही पलट गया। "संसार की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत साधन, असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थ-रहितता, ईर्षा, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है.........तब पक्षपात, अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है" (दयानन्द)

ऐसी हीन अवस्था में सिंध पर विदेशियों का हमला हुआ। विश्वासघातियों ने अपने अपने स्वार्थ के लिये स्वदेश को विदेशी हमलाबारों के हवाले कर दिया और एक शताब्दी के अन्दर अन्दर

हो राजपाट, धन सम्पत्ति, सब कुछ नष्ट हो गया और तीनों रक्षक देवियाँ (अर्थात् गोमाता, सरस्वती और मातृभूमि) अन्तर्धान हो गईं।

आक्रमण का अधिक प्रभाव 'सप्तसिंधु' पर पड़ा। पंजाब से देववाणी का राज्य ऐसा उठा कि मानों उस देश में सरस्वती का कभी पदार्पण ही नहीं हुआ था। और जब मुसलमानों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ में जमकर "किल्ली" होनेवाली "डिल्ली" को 'देहली' का स्वरूप मिला तब शनैः २ सरस्वती का यहां से भी लोप होने लगा। कुछ दिनों हिन्दी ने गुसाईं जी के अनुग्रह से देहली में भी स्थिति के लिये हाथ पैर मारे। 'खानखाना' और 'खुसरो' को काबू किया, परन्तु अन्त को इसका पैर राजधानी से ऐसा उखड़ा कि पंजाब के सर होने पर यहां उर्दू बेगम का ही राज्य बना रहा।

जब संवत् १९५१ वि० के भाद्रपद मासमें पहले पहल मैं देहली निवासियों को वैदिक धर्म का सन्देश सुनाने आया, तब मुझे उनके हृदयों तक पहुँचने के लिये फिर से 'निस्तालीक़ उर्दू' का आसरा लेना पड़ा था। आर्यसमाज की बदौलत थोड़ी सी जनता में कुछ कुछ मातृभाषा से प्रेम हो चला था। परन्तु जब संवत् १९६७ में हिन्दी का 'सद्धर्म प्रचारक' दिल्ली से छपकर मुद्रित होने लगा तब उसकी स्थानीय बिक्री दो सौ से अधिक न थी। सद्धर्मप्रचारक यन्त्रालय के दिल्ली में जम जाने से अन्य साप्ताहिक समाचारपत्रों के निकलने में भी सुभीता हुआ। परन्तु मेरे मन में यह लालसा बनी रही कि किसी प्रकार राजधानी से हिन्दी का एक दैनिक पत्र निकले और जब १९११ ई० के दिसम्बर मास में दिल्ली फिर से राजधानी बनाई गई, तब से तो यह संकल्प वेग से काम करने लगा। भागलपुर के चौथे अधिवेशन में मार्गशीर्ष शुक्ला ६, सं० १९७० के दिन सभापति के आसन से बोलते हुए मैंने कहा था—"देहली" प्राचीन इन्द्रप्रस्थ, पांडवों का गढ़-दिल्ली इस समय ब्रिटिश गवर्नमेंट की राजधानी बन रही है। उस राजधानी, पांडवों के गढ़ और पृथ्वीराज की महिमा के केन्द्र स्थान में हिन्दी का एक भी दैनिक

पत्र नहीं हैं। उर्दू के साप्ताहिक यहाँ दैनिक हो गये। आधे दर्जन से अधिक उर्दू के साप्ताहिक पत्र हैं, दो उर्दू के दैनिक और एक नया उनमें मिलनेवाला है। यह सब उर्दू के पत्र केवल मुसलमानों के प्रबन्ध तथा सम्पादन में निकलते हैं, इसीलिये दिल्ली राजधानी में मुसलमान लोकमत ही बड़ी तेज़ी से फैलकर गूंज रहा है। परन्तु आर्य-भाषा हिन्दूजाति की मातृभाषा तथा देशभर की राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साप्ताहिक सद्धर्मप्रचारक के अतिरिक्त एक भी समाचारपत्र नहीं है। वहां एक दैनिक की अत्यन्त आवश्यकता है।"

संवत् १९७१ में जहाँ सद्धर्मप्रचारक के २५०० ग्राहकों में से ८०० स्थानीय ग्राहक हो गये वहाँ हिन्दीसमाचारादि अन्य पत्र भी निकल आये। फिर भी हिन्दी पत्रों का जीवन सन्दिग्ध ही बना रहा। संवत् १९७५ में रौलट बिल के आन्दोलन के कारण 'दैनिक विजय' ने जन्म लेकर अद्भुत चमत्कार दिखलाया। ७००० छप कर बिक जाता और फिर भी सैकड़ों ग्राहक खड़े रह जाते। परन्तु दुमदार सितारे की तरह उसे भी राजदण्ड के वज्रपात के कारण विलीन होना पड़ा। 'विजय' के साथ ही साथ 'हिन्दी समाचार' ने भी साप्ताहिक रूप छोड़ कर दैनिक बाना धारण किया। 'हिन्दी समाचार' के प्राणस्वरूप पं० शिवनारायण द्विवेदी का स्मरण आते ही आंखें डबडबा जाती हैं। आज भी द्विवेदीजी के गल्पलेखन में कुशलता याद आती है। सम्मेलन हुआ, परन्तु द्विवेदीजी न रहे। अकाल काल ने उन्हें असमय ही ग्रस लिया। हम सबके हृदय उनकी ओर जाते हैं। एक होनहार जीवन का असमय अन्त देख कर काल की क्रूरता को कोसने को जी चाहता है। हिन्दी समाचार भी दो बार दैनिक होकर बन्द हुआ। पं० जगन्नाथ अधिकारी के उद्योग से "वैभव" आया और दो झकोरों ने ही उसके पर उखाड़ दिये। इस समय आर्य-हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिये दैनिक "अर्जुन" 'सत्यवादी' 'सद्धर्म प्रचारक' 'वीर भूमि' गोरक्षकादि साप्ताहिक पत्र काम कर रहे हैं।

बहिनो और भाइयो ! आप हैरान होंगे कि काम तो मुझे सरस्वती के उपासकों के स्वागत का सौंपा गया और मैं क्या राम रोना ले बैठा ! परन्तु जब आप मुझसे इस बेजोड़ भूमिका का कारण सुनेंगे तो आपकी हैरानी दूर हो जायगी। दो बार पहले हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की बैठक यहां बुलाने में अकृतकार्य होकर जब आज आप सब को यहां एकत्रित देखता हूं तो मेरा हृदय गद् गद् हो जाता है। परन्तु साथ ही आपके स्वागतमें जो कमी रह गई है उसके लिये क्षमा मांगनी पड़ती है। अब तक इस नगर के निवासियों के कानों में मुगलों की भाषा गूंज रही है और इनकी आंखों का लखनवी बांकेपन का दृश्य ही मोहित कर रहा है। दिल्ली निवासी अधिकतः अब तक उर्दू कविता और विलासपूर्ण तहज़ीब के ही गुलाम बने हुए हैं। मैं आशा करता हूं कि आप महानुभावों की उपदेशरूपी छेनी इस दासता की जञ्जीर को तोड़ कर दिल्ली निवासियों को स्वतन्त्र सरस्वती का सेवक बना कर इस योग्य बना देगी कि जब दूसरी बार आप सब यहां निमन्त्रित किये जायँ तो इस नगर के नर-नारी, बाल वृद्ध सबके हृदय एकस्वर होकर आपका स्वागत करें।

अब यह पहेली नहीं रही कि क्यों स्वागतकारिणी सभा के सभ्य आपका मनोवांछित स्वागत नहीं कर सके। परन्तु आप तो "पत्रं पुष्पं फलं तोयम्" के भूखे हैं। और हम सब श्रद्धा की भेंट ही आपके सामने रख रहे हैं, जिसे आप उसी भाव से स्वीकार करेंगे जिसे हम अर्पण करते हैं।

सबसे पहले मैं जगद्धात्री जगदम्बा का नम्र धन्यवाद करता हूं जिसकी कृपा से हमें मातृभाषा के अनन्य भक्त और संसार के शिरोमणि देवता महात्मा गांधी को अपने अन्दर लौटने का अवसर मिला है और उनके साथ ही तीनों देवियों के भक्त लाला लाजपतराय और हिन्दी-साहित्य के रत्न गणेशशङ्कर विद्यार्थी महोदय तथा अन्याय महानुभावों की सेवा से सरस्वती देवी की आशाएँ फिर से हरी हो गई हैं। राजनैतिक संसार में परिवर्तन के कारण भी

दिल्ली में मातृभाषा के प्रचार को बड़ी सहायता मिलने की सम्भावना है। इस वर्ष की एक विचित्र बात यह है कि जहां लेजिस्लेटिव असम्बली (Legis lative Assembly) में बहुत से हिन्दी-साहित्य-सेवी जमा हो गये हैं वहां जबलपुर में हिन्दी-मन्दिर के निर्माता सेठ गोविन्ददासजी ने हिन्दी में शपथ ली और शायद वह दिन दूर नहीं है जब खद्दरपोश हिन्दुस्तानी असेम्बली-हाल की छत को राष्ट्रभाषा की ध्वनि से गुञ्जारने लग जायँ।

इस सम्मेलन की कार्यवाही में पथदर्शकता का बोझ आपके निर्वाचित सभापति महाशय पर होगा जो परिमार्जित कवितापूर्ण भाषा में उन विषयों की ओर निर्देश करेंगे जिन पर वर्त्तमान स्थिति के अनुसार के लिए विचार करना आवश्यक है, और उन विषयों पर वादानुवाद करके किसी उचित निश्चय पर पहुँचना आपका काम होगा। मैं उन विषयों पर विचार प्रकट करके आपका समय व्यर्थ नहीं गंवाना चाहता, केवल दो एक ऐसे विषयों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, जिन्हें मैं बहुत आवश्यक समझता हूं।

देवनागरी लिपि का महत्व

संन्यासी ऋषि दयानन्द ने आज से ५० वर्ष पहले हो भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा के लिये देवनागरी लिपि चुन ली थी। उससे ४० वर्ष पीछे महात्मा गांधी को भी उसी लिपि को अपनाना पड़ा। परन्तु महात्मा गांधी से भी पहले जस्टिस बाबू शारदाचरण मित्र ने 'एक लिपि विस्तार-परिषद्' खोलकर 'देवनागर' नाम का मासिक पत्र जारी करके बड़े महत्व का काम किया था। उन दिनों Esperento (इस्पेरेन्टो) नामसे संसार का एक व्यापक लिपि की बुनियाद डालने का विचार योरोप में फैल रहा था और अंग्रेजी मासिक Review of Reviews के स्वर्गवासी सम्पादक W. T. Stead ने इस पर बड़ा आन्दोलन उठाया था। शायद उसी आन्दोलन के कारण शारदा बाबू का ध्यान इस ओर खिंचा। मैंने भागलपुर के अधिवेशन में कहा था—

"एक लिपि विस्तार परिषद् के अंगरेज़ उपप्रधान ने एक बार अपनी वक्तृता में कहा था कि देवनागराक्षरों का सारे भूमण्डल में प्रचार होना चाहिये, क्योंकि इसके सदृश सर्वाङ्गपूर्ण दूसरी कोई लिपि नहीं है। उसी परिषद् के एक मुसलमान उपप्रधान ने कहा था कि भारतवर्ष के मुसलमानों को "कुरान शरीफ" भी देवनागराक्षरों में छपवानी चाहिए। भारत में जितनी भी प्रान्तीय लिपियें प्रचलित हैं वे प्रायः इसी लिपि को अपभ्रंश मात्र हैं, और इसीलिये बड़े उच्च साहित्य के स्थायी बंगदेशीय विद्वान् भी बंगीय साहित्य की पुस्तकों को देवनागराक्षरों में छपवाने लग गये हैं।

१३ वर्ष व्यतीत हो गए परन्तु इस ओर जो ध्यान खिंचा था उसका चिन्ह भी अब दिखाई नहीं देता। क्या हिन्दी-साहित्य सेवियों से यह आशा करनी अनुचित है कि वह फिर से एक ऐसा साप्ताहिक वा मासिक पत्र निकालें जिसमें भारत में प्रचलित सब भाषाओं के लेख देवनागराक्षरों में निकला करें? केवल बंगाली, मराठी, गुजराती इत्यादि का ही देवनागरी लिपि से घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत तामिल, करनाटक और अङ्गरेज़ी आदि भाषाओं के लेख भी यदि देवनागराक्षरों में निकलने आरम्भ हो जांय तो कोई आश्चर्य नहीं कि किसी समय योरोप में भी सारे संसार में एक लिपि प्रचलित करने का विचार फिर से जाग उठे। मेरा पिछला विचार चाहे स्वप्न मात्र ही हो परन्तु स्वदेश में इस लिपि का व्यापक प्रचार असम्भव नहीं है।

जिन लोगों की दृष्टि में प्राचीन आर्य संस्कृत ही योरोप और अमेरिका के वर्तमान असन्तोष की केवल औषधि है उनको तो इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि यदि हम लोग प्राचीन आर्य संस्कृत को स्वदेश में प्रचलित करने में कृतकार्य हो गये तो उसको संसार के विचारक दलके अन्दर फैलाना बहुत ही सुगम हो जायगा। यह काम स्थायी समिति के द्वारा बड़ी सुगमता से हो सकता है। इसीलिये मैंने इसकी ओर यहां निर्देश किया है।

शिक्षा का माध्यम आर्य-भाषा

हिन्दी के लिये मैं आर्य-भाषा शब्द का प्रयोग इसलिये करता हूं कि आपके ही एक मान्य पूर्व सभापति के कथनानुसार इस भाषा की बुनियाद उस समय पड़ चुकी थी जब यह देश हिन्दुस्तान नहीं वरन् आर्यावर्त कहाता था। फिर इस भाषा को हम केवल हिन्दू मात्रकी भाषा ही नहीं बनाना चाहते सारे देशकी राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं जिसमें जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान सभी सम्मिलित हैं। आज इस बात के सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, कि जब तक शिक्षा विदेशी भाषा द्वारा दी जाती रहेगी तब तक स्वदेश के प्रेम का पूरा चिन्ह इस अभागे देश में दिखाई न देगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जिस आर्यभाषा को आज से २३ वर्ष पहिले गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की बुनियाद के साथ ही शिक्षा का माध्यम बनाया गया था, महात्मा गांधी के आन्दोलन ने उसे सब राष्ट्रीय विद्यालयों में एक प्रकार से प्रविष्ट कर दिया है। परन्तु एक राष्ट्रीय कहलानेवाला विद्यालय है जिसने अब तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की निरन्तर पुकार को नहीं सुना। वह काशी का

हिन्दू विश्वविद्यालय

है। मैं इस सम्मेलन के सामने यह प्रश्न फिर से उपस्थित करता हूँ ताकि हिन्दू विश्वविद्यालय के संचालकों के अन्दर फिर से आन्दोलन किया जाय और उन्हें बाधित कर दिया जाय कि वे गवर्नमेंन्ट से आर्य भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की आज्ञा प्राप्त करके मातृभाषा के उद्धार में सहायक हों।

इन दोनों विषयों के अन्दर ही मातृ-भाषा प्रचार के सब सहायक विषय सीमाबद्ध हैं परन्तु हिन्दी साहित्य के विषय में मुझे कुछ और भी कहना है। वह यह कि अभी तक

हिन्दी साहित्य का स्वरूप ही स्थिर नहीं

हुआ। सच्चा सुधार तो उस समय होगा जब कोई हिन्दी का

कवि उत्पन्न होगा अब तक पद्य लेखक बहुत हो चुके हैं। परन्तु मेरे इस कथन को अनाधिकार चेष्टा समझते हुये भी हिन्दी के कवि मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूं कि सूरदास से सूर्य और तुलसी दास से चन्द्र, कवि के उत्पन्न होने की आशा में टिकटिकी लगाये ही हम सब बैठे हैं। गद्य और पद्य दोनों प्रकार के लेखों में कुछ न कुछ स्थिरता अवश्य होनी चाहिये। कहीं तो हम संस्कृत शब्दों की भरमार देखते हैं, कहीं खड़ी बोली के आश्रय पर प्रांतिक बोलियों का पंचमेल पाते हैं और कहीं व्रज-भाषा के नाम पर न समझे जाने योग्य भाषा का प्रचार देखा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि भाषा के संशोधन का काम कोई बनावटी उपसमिति नहीं कर सकती क्योंकि उसके हाथ में कोई दैवीय प्रमाण-पत्र नहीं होता परन्तु यदि उच्चकोटि के लेखक परस्पर समझौता करके भाषा का प्रवाह एक ओर चलने का यत्न करें तो अभीष्ट-सिद्धि की कुछ आशा बँध सकती है।

वहिनों और भाइयो !

दिल्ली निवासी सरस्वती सेवकों की ओर से मैं फिर आपका स्वागत करता हूं और आशा रखता हूं कि आप तीन दिनों में दिल्ली निवासियों पर ऐसा प्रभाव डाल जायंगे जिससे मातृभाषा हिन्दी का सिक्का दिल्ली निवासियों के हृदयों पर भी जम जावे। दिल्ली उर्दू का गढ़ है। इसे तोड़ने में आप जैसे अनुभवी सेनापतियों की युद्ध-कुशलता ही समर्थ हो सकती है। हम लोगों की त्रुटियां और भूलोंपर दृष्टि न दीजियेगा। उन्हें क्षन्तव्य समझ कर आप उस ऊंचे मातृभाषा की सेवा के व्रत को पूरा करने में हमारा हाथ बटाइयेगा, जिसे हम सब ने अपने हृदयों में धारण कर रखी है। यदि हम शुद्ध हृदय से यत्न करेंगे तो मुझे विश्वास है कि जगद्धात्री के आशीर्वाद से हमारा अभिलषित सिद्ध होगा।

तत्पश्चात् स्वामीजी ने कविवर पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय "हरिऔध" के लिये सभापतिपद ग्रहण करने का प्रस्ताव किया, जिसका समर्थन आ० पं० गोपीरामजी गोस्वामी, पं० पद्मसिंहजी,

बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन और पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ने किया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ श्रीमान् पं० अयोध्यासिंहजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द जीने पुष्पमाला पहनायी। इसी समय सम्मेलन की स्वागतकारिणी के प्रचार विभाग के मन्त्री श्रीयुक्त इन्द्रजीने विभिन्न स्थानों से आये हुए सहानुभूति और कल्याण कामनासूचक तार पढ़ सुनाये। इसके बाद श्रीयुक्त बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने यह सूचना दी कि मदरास प्रान्त में हिन्दी के प्रचारक पं० हरिहर शर्माजी मदरास से आये हैं और वे महात्मा जी का सन्देश लाये हैं, वह सन्देश मैं सुनाता हूँ। उस समय महात्मा गांधी की जयध्वनि से भवन गूँज गया और श्री टण्डन जी ने महात्माजी का लिखित सन्देश सुनाया जो इस प्रकार हैः—"दक्षिण भारत में राष्ट्र भाषा हिन्दी हिन्दुस्तानी के प्रचार के विषय में मेरे विचार केवल पूर्ववत ही कायम हैं बल्कि दिन प्रतिदिन उसका महत्व और आवश्यकता अत्यधिक मालूम होती है। मेरा यही विचार है कि जब तक दक्षिण भारत के लोग हिन्दी का साधारण ज्ञान प्राप्त न कर लें तब तक हमारी राष्ट्रीयता अपूर्ण ही रहेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन इस काम में और भी ध्यान दे। हिन्दी तथा उर्दू कवि सम्मेलन की बात सुन कर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। आशा है कि दोनों भाषाओं के कविगण राष्ट्रभाषा हिन्दी हिन्दुस्थान के निर्माण के विषय में उचित ध्यान देकर उद्योग करेंगे।"

तदनन्तर सभापतिजीने अपना भाषण पढ़ना आरम्भ किया। सभापतिजी ने अपने भाषण के २८ पृष्ठ ही पढ़े। शेषांश पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजी ने उच्च स्वर से पढ़ सुनाया।

श्रीमान् सभापति महोदय का भाषण नीचे दिया जाता है—

मंगलाचरण

द्रुतविलम्बित

सकल साधक साधित सेविता।
विबुध वृन्द विबोधित वन्दिता॥
भरित भाव प्रभूत विभूति से।
जयति भारत भूतल भारती॥ १॥

सरसती सुर की सरि सी रहे।
वन सुधा सम स्वाद सहोदरा॥
सरस नीरस मानस को करे।
रसिक को रसना रससे भरी॥ २॥

मधुमयी वन हो बुध लालिता।
पुलकिता रह हो अकलंकिता॥
सफलिता कलिता ललिता रहे।
विकसिता लसिता कवितावली॥ ३॥

सुध रखे हित साधन की सुधी।
सकल प्रेमिक प्रेम निकेत हो॥
विबुध की विधि हो विधि से बंधी।
विबुधतामय हो विविधा क्रिया॥ ४॥

सरलता शुचिता सहकारिता।
सरसता सहिता हितकारिता॥
विलसती जन मानस में रहे।
मधुरता मृदुता उपकारिता॥ ५॥

अनुनय विनय

स्वागतकारिणी समिति के सभापति महोदय! समुपस्थित सज्जन समूह! समादरणीया महिलावृन्द!

गौरव लाभ करना गौरव की बात है, किन्तु सबसे बड़े गौरव का अधिकारी वह है, जो वास्तवमें किसी को गौरवित बनाता है।

मन्दवाही मलयानिल का प्रवाह मन्द मन्द आता है, तरु-पुंज को स्पर्श करता है, सौरभित बनाता है, वे कुछ से कुछ हो जाते हैं, काठ से चन्दन बन जाते हैं, सुर शीशपर चढ़ते हैं, निस्सन्देह यह उनके लियें महत्व की बात है। परन्तु जिसने उन्हें यह महत्ता प्रदान की वह किस महत्व का अधिकारी है, आप लोग स्वयं इसको समझ सकते हैं। आप लोगों का कृपापात्र बनकर मैं सम्मानपात्र हुआ हूं—किन्तु वास्तव में इस सम्मान के अथवा इससे भी किसी उच्च और पुनीत सम्मान के भागी आप लोग हैं। लोहा पारस स्पर्श से स्वर्ण बनता है, किन्तु लोहे को स्वर्णता प्रदान करके पारस क्या बनता है, यह कहते नहीं बनता। कंगाल सुदामा भगवान यदुकुल कुमुद कलाधर की कसौटी है। एक साधारण लोक को लोकपाल बनाकर वे त्रिलोक से ऊंचे हो गये। आप लोगों का भी कुछ ऐसा ही कौशल है, नहीं तो उज्ज्वल, रत्नराजि के मिलते तुच्छ कांच न पूछा जाता, प्रफुल्ल पाटल प्रसून के होते पलाश पुष्प पर दृष्टि न पड़ती। दूसरे तर्क वितर्क करें, मैं सतर्क हूं, मेरा हृदय कृतज्ञतापूर्ण है, मैं इस अभूतपूर्व उदारता के लिये आप लोगों को सहस्रों धन्य-वाद प्रदान करता हूं। मेरे रोम रोम से धन्यवाद ध्वनि निकल रही है। मैं शिष्टाचार प्रदर्शन नहीं कर रहा हूं, वास्तव बात यह है कि धन्यवाद से भी बहुमूल्य यदि कोई वस्तु होती, तो आज मैं उसको भी सेवा में अर्पण करके संतोष न पाता। अपने किये की लज्जा आप लोगों को अवश्य होगी, आप लोग अपना कार्य्य मुझ अयोग्य से भी योग्यता पूर्वक करा ही लेंगे, अतएव आज मैं अयोग्य होकर भी योग्य हूँ। विशेष क्या कहूँ—कहूंगा तो इतना ही और कहूँगा "मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः"।

हिन्दी भाषा का उद्गम

आप लोगों ने अनुग्रह करके मुझको जिस सभा के समुच्च सिंहा-सन पर समासीन किया है, उसका नाम है हिन्दी साहित्य-सम्मे-लन। सभापतित्व की सूचना पत्रों में प्रकाशित होते ही, मेरे पास पत्रों की भरमार हो गई, अनेक विषयों में सम्मति देने की मुझे

सम्मति दी गई। कहा गया घड़े में समुद्र भर दिया जावे, सामयिक सब विषयों पर लेख लिख दिया जावे, यही नहीं लेख में प्रौढ़ वय की प्रौढ़ता भी हो। एक सज्जन ने लिखा अपने पक्ष का प्रतिपादन पूरा पूरा किया जावे, चाहे पक्षपात का दोष भले ही लगे। निदान अपना अपना राग सबने अलापा, मैं चिन्तित हुआ, क्या करूं। यदि व्याख्यान लम्बा होगा, तो रंग फीका हो जावेगा, लोग बिना सुने ही लम्बे हो जावेंगे। यदि छोटा हुआ तो छोटाई होगी, अधूरा हुआ तो पूरी न पड़ेगी। सोच समझ कर ठीक किया, हमें तीन ही विषय से मतलब है, और वे हैं, 'हिन्दी' 'साहित्य' और 'सम्मेलन'। अतएव मैं इन्हीं तीन विषयों पर आप लोगों की सेवा में कुछ निवेदन करूंगा। यद्यपि इन विषयों पर भी बहुत कुछ कहा जा चुका है, किन्तु इसके लिये मैं क्या करूं, यह मार्ग सब के लिए तंग है। कौन सा विषय है, कि जिस पर लेखनी नहीं चल चुकी है, पर लिखने वाले कब मानते हैं, कुछ न कुछ लिखते ही हैं—और नहीं कुछ होता तो पूर्वजों का पदानुसरण ही करते हैं—मैं भी यही करूंगा। ऐसे ही बखेड़े में एक बार कविकुल-तिलक गोस्वामी तुलसीदास जी भी पड़े थे—उस समय उनकी रत्न प्रसविनी लेखनी ने लिखा था, "सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिन रहा न कोई" मेरे लिये यही महावाक्य अवलम्बन है। यह वाक्य मेरी मति तमोमयी रजनी का मयंक और मेरे नीरस मानस तरु का मन्दान्दोलित बसन्त समीर है।

पहला विषय मेरा हिन्दी है, अतएव पहले मैं देखूँगा हिन्दी भाषा की जननी कौन है? उसकी जन्मभूमि कहां है? वह वहां कैसे उत्पन्न हुई? कैसे लालित पालित हुई? उसका उगना, अंकुरित होना, पल्लवित बनना, फूलना फलना, अत्यन्त मनोमुग्धकर है। परम ललित लेखनी द्वारा यह बातें लिपिबद्ध हुई हैं, बड़े सुचतुर चित्रकारों ने अपनी चारुतूलिका द्वारा उसका रुचिर चरित चित्र अंकित किया है। मैं उस सुन्दर लेखमाला को उस चमत्कारमय चित्रपट को आपके सामने रखने में असमर्थ हूं। किन्तु उस लेख-

माला की कुछ काम की बात सुनाऊंगा, उस चारु चित्रपट के कुछ आवश्यक अंश दिखलाऊंगा। आशा है उनसे आप लोगों का बहुत कुछ मनोरंजन होगा।

हिन्दी भाषा का वर्तमान रूप अनेक परिवर्तनों का परिणाम है। वह क्रम क्रम विकसित होकर इस अवस्था को प्राप्त हुई है, यह क्रम विकास कैसे हुआ, उसका निरूपण यहां किया जाता है। प्रथम सिद्धांत यह है कि हिन्दी भाषा की जननी संस्कृत है, पहले वह कई प्राकृतों में परिवर्तित हुई, उसके उपरांत उसने हिंदी का वर्त्तमान रूप धारण किया। दूसरा यह कि प्राकृत स्वयं एक स्वतन्त्र भाषा है, वह न तो वैदिक भाषा से उत्पन्न हुई न संस्कृत से, कालान्तर में वही रूप बदल कर आई और हिन्दी कहलाई। तीसरा यह कि प्राचीन वैदिक भाषा ही वह उद्गम स्थान है, जहां से समस्त प्राकृत भाषाओं के स्रोत प्रवाहित हुये हैं, संस्कृत उसी का परिमार्जित रूपान्तर, और हिन्दी उन्हीं स्रोतों में से एक स्रोत का सामयिक स्वरूप है, हम मीमांसा करके देखेंगे कि इनमें कौनसा सिद्धांत उपपत्ति मूलक है।

सबसे पहले प्रथम सिद्धांत को लीजिये, उसके प्रतिपादक संस्कृत और प्राकृत भाषा के कुछ प्राचीन विबुध और हमारी हिंदी भाषा के कुछ धुरन्धर विद्वान् हैं। उनका यह कथन है—

"प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवम् तत् आगतम् वा प्राकृतम्"।
वैयाकरण हेमचन्द्र

"प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवत्वात् प्राकृतम् स्मृतम्"।
प्राकृत चन्द्रिकाकार

"प्राकृतस्य तु सर्व मेव संस्कृतम् योनिः"।
प्राकृत संजीवनीकार

"यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि प्रकृति संस्कृत होने पर भी कालान्तर में प्राकृति एक स्वतन्त्र भाषा मानी गई"।
स्वर्गीय पंडित गोविन्द नारायण मिश्र

"संस्कृत प्रकृति से निकली भाषा ही को प्राकृत कहते हैं"।

स्वर्गीय पंडित बदरी नारायण चौधरी

अब दूसरे सिद्धान्तवालों की बातें सुनिये। इनमें अधिकांश बौद्ध और जैन विद्वान हैं। अपने "प्रयोग सिद्धि" ग्रन्थ में कात्यायन लिखते हैं—

सा मागधी मूल भासा नरा यायादि कप्पिका।
ब्राह्मणो चस्सुतालापा संबुद्धा चापि भासरे।

आदि कल्पोत्पन्न मनुष्यगण, ब्राह्मणगण, सम्बुद्धगण, और जिन्होंने कोई वाक्यालाप श्रवण नहीं किया है ऐसे लोग, जिसके, द्वारा बातचीत करते हैं, वही मागधी मूल भाषा है।

'पति सम्बिध अत्थूय' नामक ग्रन्थ में लिखा है—

"मागधी भाषा देवलोक, नरलोक, प्रेतलोक, और पशु जाति में सर्वत्र प्रचलित है। किरात, अन्धक, योणक, दामिल प्रभृति भाषा परिवर्त्तनशील हैं, किन्तु मागधी आर्य और ब्राह्मणगण की भाषा है। इसलिये अपरिवर्तनीय और चिरकाल से समानरूपेण व्यवहृत है"।

महारूप सिद्धिकार लिखते हैं—

"मागधिकाय सभाव निरूत्तिया" अर्थात् मागधी स्वाभाविक भाषा (अथवा मूल भाषा है।)

अपने पाली भाषा के व्याकरण की अंगरेज़ी भूमिका में श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण लिखते हैं—

* "धीरे धीरे मागधी में, जो इस देश में बोली जाती थी, बहुत से परिवर्तन हुए और आजकल की भाषाएँ, जैसे बंगाली मरहठी, हिंदी, और उड़िया इत्यादि उसी से उत्पन्न हुईं"।

---

* In course of time this Magadhi, the spoken language of the country, underwent immense changes, and gave rise to the modern vernaculars such as Bengali, Marhati, Hindi, Uriya etc.

"जैनेरा अर्द्ध मागधी भाषा केई आदि भाषा बलिया मने करेन"
जैन लोग अर्ध मागधी भाषा को ही आदि भाषा मानते हैं।

बंगला विश्वकोश पृष्ठ ४३८

अब तीसरे सिद्धान्तवालों का विचार सुनिये। यह दल समधिक पुष्ट है। इसमें पाश्चात्य विद्वान तो हैं ही, भारतीय विद्वानों की संख्या भी न्यून नहीं है। क्रमशः अनेक विद्वानों की सम्मति मैं आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूँ—जर्मन विद्वान् 'वेबर' कहते हैं—

"वैदिक भाषा से ही एक ओर सुगठित और सुप्रणालीबद्ध होकर संस्कृत भाषा का जन्म, और दूसरी ओर मानव प्रकृति सिद्ध और अनियत वेग से वेगवान प्राकृत भाषा का प्रचलन हुआ। प्राचीन वैदिक भाषा ही क्रमशः बिगड़ कर सर्व साधारण के मुख से प्राकृत हुई"।

बंगला विश्वकोश पृष्ठ ४३३

विश्वकोष के प्रसिद्ध विद्वान् रचयिता स्वयं यह लिखते हैं—

"वास्तविक आर्य जाति की आदि भाषा वेद में है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वैदिक भाषा रूप स्रोतस्वती से ही संस्कृत और प्राकृत दोनों धाराएँ निर्गत हुई हैं"।

बंगला विश्वकोश पृष्ठ ४३३

श्रीमान् विधुशेखर शास्त्री अपने पाली प्रकाश नामक बंगला ग्रन्थ में क्या लिखते हैं उसे भी देखिये—

"आर्य्यगण की वेद भाषा और अनार्य्यगण की आदिम भाषा में एक प्रकार का संमिश्रण उत्पन्न होने से बहुत से अनार्य शब्द वर्तमान कथ्य वेदभाषा के साथ मिश्रित हो गये, इस संमिश्रण-जात भाषा का नाम ही प्राकृत है"।

पालि प्रकाश प्रवेशक पृष्ठ ३६

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह अनुमति है—

"हमारे आदिम आर्यों की भाषा पुरानी संस्कृत थी, उसके कुछ नमूने ऋग्वेद में वर्तमान हैं। उसका विकास होते होते कई प्रकार की प्राकृतें पैदा हो गईं, हमारी विशुद्ध संस्कृत किसी पुरानी प्राकृत से ही परिमार्जित हुई है।"

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति पृष्ठ ७३.

विख्यात साहित्य मर्मज्ञ श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन का विद्वत्तापूर्ण भाषण भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादक है। और भी प्रगल्भ विद्वानों की सम्मतियां मैं यहां उद्धृत कर सकता हूँ, किन्तु विस्तारभय से छोड़ता हूं।

अब मैं देखूँगा कि इन तीनों सिद्धान्तों में से कौनसा सिद्धान्त विशेष उपपत्तिमूलक है। शब्द शास्त्र की गुत्थियों का सुलझाना सुलभ नहीं। लोग जितना ही इसको सुलझाते हैं, उलझन उतनी ही बढ़ती है। बहुत कुछ छानबीन हुई। किन्तु भाषा विज्ञान का अगाध रत्नाकर आज भी बिना छाने हुए पड़ा है, छाननेवालों ने उसको सौ सौ तरह छाना, किन्तु रत्न हाथ आना सबके भाग्य में कहां! मैं इस उद्योग में नहीं हूं, न मुझ में इतनी योग्यता है, न मैं इस घनीभूत अंधकार में प्रवेश करने के लिये कोई सुन्दर आलोक प्रस्तुत कर सकता हूँ, केवल मैं विचारों का दिग्दर्शन मात्र करूंगा। प्रथम सिद्धान्त के विषय में मैं विशेष कुछ लिखना नहीं चाहता, वेदभाषा को प्राचीन संस्कृत कहा जाता है। कोई कोई वेद भाषा को वैदिक संस्कृत और पाणिनी काल की और उसके बाद के ग्रन्थों की भाषा को लौकिक संस्कृत कहते हैं। प्रथम सिद्धान्तवालों ने संस्कृत से ही प्राकृत की उत्पत्ति बतलाई है, यदि इस संस्कृत से ही प्राकृत की उत्पत्ति बतलाई है, यदि इस संस्कृत से वैदिक संस्कृत अभिप्रेत है, तो प्रथम सिद्धान्त तीसरे सिद्धान्त के अन्तर्गत हो जाता है, और विरोध का निराकरण होता है। परन्तु वास्तव बात यह है कि प्रथम सिद्धान्तवालों का उद्देश वैदिक संस्कृत से नहीं, वरन लौकिक संस्कृत से है। क्योंकि षड्भाषा-चन्द्रिकाकार लिखते हैं—

भाषा द्विधा संस्कृता च प्राकृती चेति भेदतः ।
कौमार पाणिनीयादि संस्कृता संस्कृतामता ।
प्रकृतेः संस्कृता यास्तु विकृतिः प्राकृता मता ।

अतएव दोनों सिद्धान्तों का परस्परविरोधी होना स्पष्ट है। प्रथम सिद्धान्त की सारवत्ता के विषय में मैं कुछ नहीं लिखना चाहता, उस पर समधिक लेखनी परिचालना हुई है। सम्मेलन के सभापतित्व के आसन पर विराजमान हो कर पारसाल इस विषय में विद्वद्वर श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने युक्ति के साथ उसकी असारता सिद्ध कर दी है, अतएव उसके सम्बन्ध में अब मेरा कुछ लिखना पिष्टपेषण मात्र होगा। सम्भव है कि कुछ विद्वज्जन उनके विचारों से सहमत न हों, सम्भव है उनकी चिन्ता प्रणाली अभ्रान्त न हो, विचार-वैचित्र्य अप्रकट नहीं, परन्तु मेरी उनके साथ एक वाक्यता है—केवल इस कारण से नहीं कि उनके विचार में प्रौढ़ता है, वरन इस कारण से भी कि शिक्षा नामक वेदांग के पाँचवें अध्याय का तीसरा श्लोक भी उनके विचार को पुष्ट करता है। वह यह है—"प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ता स्वयम्भुवा" स्वयं आदि पुरुष प्राकृत अथवा संस्कृत बोलते थे। इस श्लोक में प्राकृत को अग्र स्थान दिया गया है, जो संस्कृत को पश्चाद्वर्त्ती उसका बनाता है। अतएव अब इस विषय में कुछ और न लिखकर मैं दूसरे सिद्धांत की मीमांसा करता हूँ।

दूसरा सिद्धान्त क्या है, उसका परिचय मैं दे चुका हूं। वह मागधी को आदि कल्पोत्पन्न, मूल भाषा, आदि भाषा, और स्वाभाविक भाषा मानता है। यदि इस भाषा का अर्थ वैदिक भाषा के अतिरिक्त सर्व साधारण में प्रचलित भाषा है, तो यह सिद्धान्त बहुत कुछ माननीय है। क्योंकि महर्षि पाणिनी के प्रसिद्ध सूत्रों में वेद अथवा उसमें प्रयुक्त भाषा, छंद, मंत्र, निगम, आदि नामों से अभिहित है, यथा—विभाषा छन्दसि (१, २, ३६) अयस्मयादीनि छन्दसि (१, ४, २०) नित्यं मन्त्रे (६, १, १०) जनिता मंत्रे (६,४,५३) वाव पूर्वस्य निगमे (६, ४, ६) ससूवेति निगमे (७, ४, ७४)

परन्तु * भाषाओं के लिये 'लोक' 'लौकिक' अथवा 'भाषा' शब्द का ही प्रयोग उन्होंने किया है, यथा—

विभाषा भाषायाम् (६, १, १८१) स्थेत्र भाषायाम् (६, ३, २०) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् (७, २, ८८) पूर्वं तु भाषायाम् (८, २, ९८)

परन्तु वास्तव बात यह नहीं है, वरन् वास्तव बात यह है कि मागधी को मूल भाषा अथवा आदि भाषा कह कर वेद भाषा पर प्रधानता दी गई है। क्योंकि वह अपरिवर्तनीय मानी गई है, और कहा गया है कि नरलोक के अतिरिक्त उसकी व्यापकता देवलोक तक है। प्रेतलोक और पशु जाति में भी यह सर्वत्र प्रचलित है। जिस काल में स्वयं वेदों की अप्रधानता हो गई थी, उस काल में वेद-भाषा का अप्राधान्य माना जाना स्वाभाविक है। धार्मिक संस्कार सभी धर्मवालों के कुछ न कुछ इसी प्रकार के होते हैं—ऐसे स्थलों पर वितण्डावाद व्यर्थ है, केवल देखना यह है कि भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह विचार कहाँ तक युक्तिसंगत है, और पुरातत्त्ववेत्ता क्या कहते हैं। वैदिक भाषा की प्राचीनता, व्यापकता, और उसके मूल भाषा अथवा आदि भाषा होने के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की सम्मति मैं नीचे उद्धृत करता हूं—उनसे इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा। संस्कृत भाषा से इन अवतरणों में वैदिक-संस्कृत अभिप्रेत है।

† "किसी समय संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोलचाल की भाषा थी।" मिस्टर वाय।

---

* संस्कृतं प्राकृतं चैवापभ्रंशोथ पिशाचिकी।
मागधी शौरसेनी च षड्भाषाश्च प्रकीर्तिताः॥ प्रा० लक्षण टी०

† At one time Sanskrit was the one language spoken all over the world.

Edinburgh Rev., Vol, XXXIII, 3. 43.

* "सर्व ज्ञात भाषाओं में से संस्कृत अतीव नियमित है, और विशेषतया इस कारण अद्भुत है कि उसमें योरप की अद्यकालीन भिन्न भिन्न भाषाओं और प्राचीन भाषाओं के धातु हैं।"

मिस्टर कूवियेर।

‡ "यह देख कर कि भाषाओं की एक बड़ी संख्या का प्रारम्भ

---

* It is the most regular language known and is especially remarkable, as containing the roots of various languages of Europe, and the Greek, Latin, German, of Sclavonic—Baron cuvier—

Lectures on the Natural Sciences.

‡ The great number of languages which are said to owe their origin, or bear a close affinity to the Sanskrit, is truly astonishing, and is another proof of its high antiquity. A German writer (Rudiger) has asserted it to be the parent of upwards of a hundred languages and dialects, among which he enumerates twelve Indian, Seven Median-Persic, two Arnantic-Albanian, seven Greek, eighteen Latin, fourteen Sclavonian, and six Celtic-Gallic.

× × × × ×

A host of writers have made it the immediate parent of the Greek, and Latin, and German families of languages, or regarded some of these as descended from it through a language now extinct. With the persian and Zend it has been almost identified by Sir William Jones and others. Halhed notices the similitude of Sanskrit and Arabic words, and this not merely in technical and metaphorical terms but in the main ground work of

संस्कृत से है, या यह कि संस्कृत से उसकी समधिक समानता है, हमको बड़ा आश्चर्य होता है—और यह संस्कृत के बहुत प्राचीन होने का पूरा प्रमाण है। रेडिगर नामक एक जर्मन लेखक का यह कथन है कि संस्कृत सौ से ऊपर भाषाओं और बोलियों की जननी है। इस संख्या में उसने बारह भारतवर्षीय, सात मिडियन पारसी, दो अरनाटिक अलबानियन, सात ग्रीक, अट्ठारह लेटिन, चौदह इसक्लेवानियन और छः गेलिक केल्टिक को रखा है।

× × × × ×

लेखकों की एक बड़ी संख्या ने संस्कृत को ग्रीक और लैटिन और जर्मन भाषा की अनेक शाखाओं की जननी माना है, या इनमें से कुछ को संस्कृत से उत्पन्न हुई किसी दूसरी भाषा द्वारा निकला पाया है, जो कि अब नाश हो चुकी है।

सर विलियम जोन्स और दूसरे लोगों ने संस्कृत का लगाव पारसी और ज़िन्द भाषा से पाया है।

हालहेड ने संस्कृत और अरबी शब्दों में समानता पाई है, और यह समानता केवल मुख्य मुख्य बातों और विषयों में ही नहीं वरन् भाषा की तह में भी उन्हें मिली है। इसके अतिरिक्त इन्डो चाइनीज़ और उस भाग की दूसरी भाषाओं का भी उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।" मिस्टर एडलिंग।

* "पुरातन ब्राह्मणों ने जो ग्रंथ हमें दिये हैं, उनसे बढ़ कर निर्विवाद प्राचीनता के ग्रन्थ पृथ्वी पर कहीं नहीं मिलते।

मिस्टर हालहेड।

---

language. In a contrary direction the Indo-Chinese, and other dislects in that quarter, all seem to be closely allied to it—*Adcling Sans. Literature. H. 38-40.*

* The world does not now contain annals of more indisputable antiquity than those delivered down by the ancient Brahmans.—*Halhed. Code of Hindu laws.*

"ज़िन्द के दश शब्दों में से ६ या ७ शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं।"
मिस्टर हैमर।

"जिन्द और वैदिक संस्कृत का इतना अन्तर नहीं जितना वैदिक संस्कृत और संस्कृत का है।"
मैकडानैल...ईश्वरीय ज्ञान पृष्ठ ६३, ६४, ६६, ६७.

संसार की आर्य जातीय भाषाओं के साथ वैदिक भाषा का सम्बन्ध प्रगट करने के लिये मैं यहां कुछ शब्दों को भी लिखता हूं—

संस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अंग्रेज़ी	फ़ारसी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फ़ादर	पिदर
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर
भ्रातृ	ब्रतर	फाटेर	फ्रेटर	ब्रदर	बिरादर
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	एम	ऐम	अस

अवतरणों के पढ़ने और ऊपर के शब्दों का साम्य देखकर यह बात माननी पड़ेगी कि वैदिक भाषा अथवा आर्य्य जाति की वह भाषा जिसका वास्तव और व्यापक रूप हमको वेदों में उपलब्ध होता है, आदि भाषा अथवा मूल भाषा है। यदि संसार भर की भाषाओं की जननी हम उसे न मानें, तो भी हमें आर्य्य भाषा से प्रसूता जितनी भाषायें हैं, उनकी आधारभूता अथवा जन्मदात्री तो उसे मानना ही पड़ेगा, और ऐसी अवस्था में मागधी भाषा को मूल भाषा अथवा आदि भाषा कहना कहाँ तक युक्तिसंगत है, आप लोग स्वयं इस को सोच सकते हैं।

पालिप्रकाशकार कहते हैं "समस्त प्राकृतों में पालि ही सब से प्राचीन है, यह भी कहा गया है कि प्राकृत संस्कृत की पूर्ववर्ती है। इसलिए सिंहल के पालि वैयाकरणों की पालि के प्राचीनत्व के सम्बन्ध में जो धारणा है, उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।"
पालि प्रकाश प्रवेशक ९५ पृष्ठ

वास्तव में, वह अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि पालि ही मूल अथवा आदि भाषा है। पालि

प्रकाशकार एक स्थान पर लिखते हैं, "पालि भाषा का दूसरा नाम मागधी है और यह उसका भौगोलिक नाम है—पृष्ठ १३"। दूसरे स्थान पर वे कहते हैं "मूल प्राकृत जब इस प्रकार उत्पन्न हुई, तो उसके अन्यतम भेद पाली की उत्पत्ति का कारण भी यही है, यह लिखना बाहुल्य है—पृष्ठ ४८"। उक्त महोदय का यह वाक्य इस भाव का व्यंजक है कि पाली अथवा मागधी से मूल प्राकृत को प्रधानता है। ऐसी अवस्था में वह आदि और मूल भाषा कैसे हुई! तत्कालिक कथ्य भेद भाषा के साथ अनार्य्य भाषा के सम्मिश्रण से जो भाषा उत्पन्न हुई उसे वे मूल प्राकृत मानते हैं, अतएव मूल प्राकृत भाषा, कथ्य वेद भाषा की अंगजा हुई, अतः वेद भाषा उसकी भी पूर्ववर्ती हुई, फिर पाली अथवा मागधी मूल भाषा किम्वा आदि भाषा कैसे मानी जा सकती है! विश्व कोषकार ने वैदिक संस्कृत से आर्ष प्राकृत, पाली और प्राकृत का सम्बन्ध प्रगट करने के लिये शब्दों की एक लम्बी तालिका पृष्ठ ४३४ में दी है, उनके देखने से यह विषय और स्पष्ट हो जावेगा, अतएव उसके कुछ शब्द यहां उठाये जाते हैं विश्व कोषकार ने पालि प्रकाश के मूल प्राकृत के के स्थान पर आर्ष प्राकृत लिखा है—

संस्कृत	आर्ष प्राकृत	पाली	प्राकृत
अग्निः	अग्गि	अग्गि	अग्गी
बुद्धिः	बुद्धि	बुद्धि	बुद्धी
मया	मये, मे	मया मये,	मइ मे, ममए
त्वम्	त्वं, तुमन	त्वं, तुवम्	तं, तुमं, तुवम्
षोड़श	सोलस	सोलस	सोलह
विंशति	वीसा	वीसति, वीसम्	वीसा
दधि	दहि, दहिम्	दधि	दहि, दहिम्

प्रसिद्ध हिन्दी उन्नायक बाबू श्यामसुन्दरदास ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम भाग में जो लेख भारतवर्षीय आर्य्य देश भाषाओं के प्रादेशिक विभाग पर लिखा है, उसके अन्त में उक्त महोदय ने एक नकशा लगाया है, उस नकशे में उन्होंने वैदिक

संस्कृत से प्राचीन प्राकृत की और प्राचीन प्राकृत से मागधी और अर्ध मागधी की उत्पत्ति दिखलाई है। यह नक़शा भी इसी विचार को पुष्ट करता है कि मागधी मूल भाषा नहीं है।

'प्राकृत लक्षणकार, चण्ड ने आर्ष प्राकृत को, 'प्राकृत प्रकाश कार, वररुचि ने महाराष्ट्री को, प्रयोग सिद्धि कार, कात्यायन ने मागधी को, जैन विद्वानों ने अर्धमागधी को आदि प्राकृत अथवा मूल प्राकृत लिखा है। पालि प्रकाशकार, पाली को सब प्राकृतों में प्राचीन बतलाते हैं—कुछ लोग दोनों को दो भाषा समझते हैं। और अपने कथन के प्रमाण में दोनों भाषाओं के कुछ शब्दों की प्रयोग भिन्नता दिखलाते हैं—ऐसे कुछ शब्द नीचे लिखे जाते हैं—

संस्कृत	पाली	मागधी
शश	ससा	भो
कुक्कुट	कुक्कुटो	रो
अश्व	अस्स	सांगा
श्वान	सुनश	साच
व्याघ्र	व्यग्घो	वी

जो अभेद वादी हैं, वे इन शब्दों को मागधी भाषा के देशज शब्द मानते हैं—जो हो, किन्तु अधिकांश विद्वान् पाली और मागधी को एक ही मानते हैं। इस प्रकार के मतभेद और खींच खांच का आधार कुछ धार्मिक विश्वास और कुछ आपेक्षिक ज्ञान की न्यूनता है। अतएव अब मैं इस विषय में कुछ विशेष लिखना नहीं चाहता। केवल एक कथन की ओर आप लोगों की दृष्टि और आकर्षित करूंगा, वह यह कि कुछ लोगों का यह विचार है कि मागधी को देश भाषा मूलक मान कर मूल भाषा कहा गया है। किन्तु यह सिद्धांत मान्य नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता, तो द्राविड़ी, और तेलगू आदि देशभाषाओं के समान वह भी एक देश भाषा मानी जाती, परन्तु उसको किसी पुरातत्ववेत्ता ने आज तक ऐसा नहीं माना, वह आर्य भाषा संभवाही मानी गई है, इसलिये यह तर्क सर्वथा उपेक्षणीय है। आर्य भाषा संभवा वह इसलिये मानी गई है

कि उसकी प्रकृति आर्य भाषा अथवा वेद भाषा मूलक है। प्राकृत भाषा के जितने व्याकरण हैं उन्होंने संस्कृत के शब्दों अथवा प्रयोगों द्वारा ही प्राकृत के शब्द और रूपों को बनाया है, प्राकृत भाषा का व्याकरण सर्वथा संस्कृतानुसारी है। संस्कृत और प्राकृत के अधिकांश शब्द एक ही झोले के चट्टे बट्टे, अथवा एक फूल के दो दल, अथवा एक चना के दो दाल मालूम होते हैं; थोड़े से ऐसे शब्द नीचे लिखे जाते हैं—

संस्कृत	मागधी	संस्कृत	मागधी
कृतं	कतं	ऐश्वर्य्य	इस्सरिय
गृहं	गहं	मौक्तिकं	मुत्तिकं
घृतं	घतं	पौरः	पोरो
वृत्तान्तः	वुत्तन्तो	मनः	मनो
चैत्रः	चित्तो	भिक्षुः	भिक्खु
क्षुद्रं	खुद्दं	अग्निः	आगी

संस्कृत के एक श्लोक का प्राकृत रूप देखिये। पहला शुद्ध मागधी दूसरा अर्ध मागधी है।

रभस वशनम्र सुर शिरो विगलित मन्दार राजितांघ्रि युग।
वीर जिनः प्रक्षालयतु मम सकलमवद्य जम्बालम्॥

१. लहश वशन मिल शुलशिल-विअलिद मन्दाल लायिदंहि युगे।
वील यिणे पक्खालदु मम शयल मवय्य यम्बालम्॥

२. लभश वशन मिल शुलशिल-विअलिद मन्दाल लाजि दहिजुगे।
वील जिणे पक्खालदु मम शयल मवज्ज जम्बालम्॥

संस्कृत के श्लोक में और उसके प्राकृत रूप में कितना अधिक साम्य है, वह आप लोग स्वयं समझ सकते हैं। जो बातें ऊपर कही गई हैं वे भी क्रम-उपपत्ति मूलक नहीं। ऐसी अवस्था में यदि प्राकृत भाषा वेद भाषा मूलक नहीं है तो क्या देश भाषा मूलक है? वास्तव में मागधी अथवा अर्द्ध मागधी किम्वा पाली की जननी वैदिक संस्कृत है, और यही तीसरा सिद्धान्त है जिसको अधि-

कांश विज्ञानवेत्ता स्वीकार करते हैं; ऐसी दशा में दूसरे सिद्धान्त की अप्रौढ़ता अप्रगट नहीं।

हिन्दी भाषा का विकास

हिन्दी भाषा के विकास की बातें चित्त विकसित करनेवाली हैं। आप लोगों को ऐसे अमनोरम मार्ग से चलना पड़ा है, जहां मन रम कर भी नहीं रमता। पथ असरल तो था ही, भूल भुलैयों से भी भरा था, वहाँ यथोचित आलोक न होने के कारण अन्धकार भी था, टटोल टटोल कर चलना पड़ता था। कहीं पत्थर थे, कहीं राह के रोड़े, कहीं पहाड़, कहीं मरु भूमि, कहीं कांटे। वहां न तो चित्त प्रफुल्लित करनेवाले फूल थे, न हरीभरी बेलियां, न कोकिल का कल कूजन, न पक्षियों का कलरव। आप लोग ऊब गये होंगे, न जाने क्या सोचते होंगे, परन्तु अन्त सब का होता है, यह मार्ग भी समाप्त होना चाहता है, थोड़ा आर चलिये। विदेशी विद्वानों का मत है कि आर्य जाति मध्य एशिया से भारतवर्ष में आई, कोई कहता है तिब्बत से, कोई कहता है हिन्दू कुश अथवा काकेशश के आस पास से। कुछ लोग इस बात को नहीं मानते वे कहते हैं पश्चिमी यूरप अथवा आरमेनिया किम्बा आक्सस नदी का कान्त कूल उनका आदिम निवास स्थान था। अंतिम मत यह है कि प्राचीन आर्य लोग दक्षिण रूस के सुन्दर पहाड़ी प्रदेश के रहने वाले थे। किन्तु भारतीय अनेक विद्वान् इन विचारों से सहमत नहीं हैं, वे कहते हैं, पवित्र भारतवर्ष ही हमारा क्रीड़ा क्षेत्र और आदिम निवास स्थल है, वे स्वर्गोपम काश्मीर प्रदेश अथवा उसके समीपवर्ती संसार में सर्वोच्च पामीर आदि भूभाग को अपनी आदि जन्म भूमि मानते हैं। वे कहते हैं उसी स्थान से मुख्य निवासी आर्य भारतवर्ष में पूर्व और दक्षिण में बढ़े। और यहीं से आर्य जाति की कुछ शाखायें ईरान होती हुई दूसरे प्रदेशों में गईं। इस विषय में विस्तृत समालोचना करने का स्थान नहीं, अतएव अब मैं प्रकृत विषय लिखने में प्रवृत्त होता हूं। यह निश्चित है कि जन्म ग्रहण उपरान्त आयजाति चिर-

काल तक काश्मीर प्रदेश में अथवा उसके निकटवर्ती भूभाग में रही और फिर वह वहाँ से कई दलों में विभक्त होकर पूर्व दक्षिण और उत्तर पश्चिम ओर फैली। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ७५वें सूक्त में 'नद्यो देवताः' सम्बन्धी मन्त्रों में नदियों का वर्णन है, उनमें गंगा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु, वितस्ता, सरयू, गोमती, विपाशा आदि उन नदियों का नाम आया है जो इस समय भी पंजाब प्रांत और हमारे पश्चिमोत्तर प्रदेश में वर्तमान हैं। इस से यह पता चलता है कि वैदिक काल में हमारी आर्यजाति इन्हीं प्रदेशों में निवास करती थी, और यही कारण है कि यह प्रदेश आर्य्यावर्त्त कहलाया। इस प्रदेश में निवास करते हुए आर्य्य जाति का सम्बन्ध यहां के आदिम निवासियों से स्थापित हुआ, और यहीं पर आर्य्य भाषा के बहुत से शब्द आर्य्येतर जातियों ने और बहुत से आर्य्येतर जातियों के शब्द आर्यों ने ग्रहण किये। स्थिति और आवश्यकता के अनुसार यह आदान प्रदान बढ़ता गया, और आर्ष प्राकृत की उत्पत्ति हुई। अतएव आर्ष प्राकृत की उत्पत्ति का स्थान आर्य्यावर्त्त कहा जा सकता है। इसके उपरान्त ज्यों ज्यों आर्य्यजाति पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़ती गई, त्यों त्यों उसका सम्बन्ध नई नई आर्य्येतर जातियों से होता गया, साथ ही उनकी नित्य की व्यवहृत भाषा का प्रभाव भी उनकी आर्ष प्राकृत पर पड़ा, और यही स्थान परक प्राकृतों की उत्पत्ति का कारण हुआ, जैसा कि मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अवन्ती आदि स्थान सम्बन्धी नामों से ही प्रगट होता है। श्रीयुत स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने अपने व्याख्यान में लिखा है—"महाराष्ट्री शब्द से प्रयोजन दक्षिण देश से नहीं किन्तु भारतरूपी महाराष्ट्र से है।" "प्राकृत प्रकाश" कार वररुचि भी कुछ इसी विचार के मालूम होते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त एक देशी है, वास्तव बात यह है कि महाराष्ट्री नाम देश परक है, चाहे किसी काल में वह बहुदूर व्यापिनी भले ही रही हो। 'प्राकृत लक्षण' कार चण्ड ने चार प्राकृत का उल्लेख किया है प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाचिकी और मागधी उनकी संज्ञा है, प्राकृत से उनका

अभिप्राय आर्ष प्राकृत से है। 'प्राकृत लक्षण' के टीकाकार षड्भाषा मानते हैं वे उपर्युक्त चार नामों में संस्कृत और शौरसेनी का नाम बढ़ाते हैं। वररुचि महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी, और शौरसेनी चार और हेमचन्द्र मूल प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश छ प्राकृत बतलाते हैं। हमारी हिन्दीभाषा का सम्बन्ध शौरसेनी और अपभ्रंश से है। इन प्राकृतों के विषय में अध्यापक लासेन की सम्मति देखने योग्य है, वे कहते हैं—"वररुचि वर्णित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची, इन चार प्रकार के प्राकृतों में शौरसेनी और मागधी ही वास्तव में स्थानीय भाषायें हैं। इन दोनों में शौरसेनी एक समय में पश्चिमाञ्चल के विस्तृत प्रदेश की बोल चाल की भाषा थी। मागधी अशोक की शिला लिपि में व्यवहृत हुई है, और पूर्व भारत में यही भाषा किसी समय प्रचलित थी। महाराष्ट्री नाम होने पर भी यह महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा नहीं कही जा सकती। पैशाची नाम भी कल्पित मालूम होता है।"

विश्व कोष पृष्ठ ४३८

प्रायः कहा जाता है कि पुस्तक की अथवा लिखित भाषा में और बोल चाल की भाषा में अन्तर होता है। यह बोल चाल की भाषा साहित्य में विकृत हो जाती है। यह बात स्वीकार की जा सकती है पर सर्वथा सत्य नहीं है। हृदय का वास्तविक उद्गार यदि हम चाहें तो अपनी बोल चाल की भाषा में भी प्रकट कर सकते हैं, वरन् पुस्तक की अथवा लिखने की भाषा से इस प्रकार की रचना कहीं अधिक हृदय ग्राहिणी, मनोहर और भावमयी हो सकती है, यह दूसरी बात है कि प्रान्तिक भाषा में होने के कारण उसके समझनेवालों की संख्या परिमित हो। मैं इस बात का कुछ प्रमाण आप लोगों के सामने बिना उपस्थित किये आगे बढ़ना नहीं चाहता। दो एक प्रमाण सुनिये। हमारे हिन्दी संसार में कुछ ऐसे सहृदय कवि भी हो गये हैं, जिन्होंने बोल चाल की भाषा में कविता लिख कर कमाल कर दिया है इन सहृदयों में सब से पहिले मेरी दृष्टि घाघ पर पड़ती है, उनकी समस्त रचना बोल चाल की भाषा में

है-और उसमें ग़ज़ब का जादू है-देखिये वह भगवान् वैकुंठनाथ के वैकुंठ को भी कुंठित करके क्या कहते हैं—

भुइयाँ खेड़े हर व्है चार। घर व्है गिहथिन गऊ दुधार।
रहर दाल जड़हन का भात। गागल निबुआ औ घिव तात।
सहरस खंड दही जो होय। बाँके नैन परोसै जोय।
कहै घाघ तब सब ही झूठा। उहां छाड़ि इहवैं बैकूंठा।

सुनिये एक ब्राह्मण देवता की बातें सुनिये—आप बड़े बिगड़े दिल और चिड़चिड़े थे—कुछ दुख पाकर एक बार अपने राम से खिझ गये—फिर क्या था उबल पड़े-बड़ी जली कटी सुनाई-उनकी बातें हों बेढंगी-पर दिल के भाव का सच्चा फोटो उनमें मौजूद है—कहते हैं—

घर से निकसतै बापै खैलैं। पंचवटी हरवउलैं नार।
ढेकुली के अड़वा से बाली मरलैं। ए दसरथ के बंड बोहार।

स्वर्गीय परिडत प्रतापनारायण मिश्र की बैसवाड़ी में लिखी गई कविता की बहार देखिये—

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नक न्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करन॥
छिन भर चटक छिनै मा मद्धिम जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखबख देख परत हैं हमरी अकिल के लच्छन॥

यदि इन पद्यों में वास्तविक हृदय के उद्गार प्रगट हुये हैं, तो बोल चाल की भाषा में क्यों उत्तम कविता न हो सकेगी। सैकड़ों गाने की चीजें, ठुमरियां, कजलियां, बिरहे, लोरिक, पचरे, आल्हे, बिल्कुल बोल चाल की भाषा में लिखे गये हैं, और आज तक प्रचलित हैं, जनता में उनका कम आदर भी नहीं, फिर कैसे कहा जावे कि बोल चाल की भाषा काव्य अथवा कवि कृति की भाषा नहीं हो सकती। मेरा विचार है कि पवित्र वेदों की भाषा बिल्कुल सामयिक बोल चाल की भाषा है, उसकी सरलता, सादगी, स्वाभाविकता उसके छन्दों की गति यह बतलाती है कि वह कृत्रिम भाषा नहीं है। जिस समय किसी लिपि का प्रचार तक नहीं हुआ था, ब्राह्मी लिपि

ब्रह्म देव के विचार गर्भ में थी, लेखनी विधि की ललाट लेखा भी न लिख सकी थी, और पुस्तक भगवती वीणा पुस्तक धारिणी के पद्म पाणि में भी सुशोभित नहीं थी, उस समय श्रुति श्रवण परम्परा द्वारा भारतीय आर्य जाति का हृदय सर्वस्व थी। जो श्रुति स्वाभाविकता की मूर्ति है, उसमें अस्वाभाविकता की कल्पना भी नहीं हो सकती, श्रुति ही वेद भाषा स्वरूपा है। यही वेद भाषा स्थिति, प्रगति, और देश काल के प्रभाव से परिवर्तित होकर उच्चारण भिन्नता और अनेक नवीन शब्दों के संसर्ग से आर्ष प्राकृत में परिणत हुई। आर्ष प्राकृत का पूर्ण विकास होने पर वेदभाषा उस अवस्था को प्राप्त हुई जो कि नियति का नियम है। अब वह सर्व साधारण की भाषा न थी, अतएव विद्वद्वृन्दका हृदय तल अथवा उनका मुख प्रदेश ही उसका निवासस्थल था, ब्राह्मी लिपि का उद्भाव न होने पर यथा समय उसको पुस्तक का स्वरूप भी मिला।

जिस समय वेदभाषा आर्ष प्राकृत का रूप धारण कर रही थी, उसी समय कुछ संस्कार प्रिय विद्वज्जनों ने उसे संस्कृत किया, और इस प्रकार संस्कृत भाषा की उत्पत्ति हुई। ज्ञात होता है वेदांग शिक्षाके इस अर्द्ध श्लोक का 'प्राकृते संस्कृते चैव स्वयं प्रोक्ता स्वयम्भुवा' यही मर्म्म है। संस्कृत यद्यपि विद्वद्वृन्द में ही प्रचलित रही है। यद्यपि वह उन्हीं के परस्पर सम्भाषण और धार्मिक कार्यकलापकी सम्बल मानी गई है, किन्तु उसका भाण्डार अलौकिक और अद्भुत है। वह नन्दन कानन समान कान्ति निकेतन और चारु चिंतामणि सदृश अनन्त लोकोत्तर चिंताओं का आगार है। वह कल्पना कल्पतरु, कमनीयता कामधेनु, भाव का सुमेरु, माधुर्य निर्झर का मनोहर सलिल, ध्वनि वीणा का मनो मुग्ध कर झङ्कार, और कला कुमुदिनी का कांत कलाधर है। वह कूटस्थ अचल हिमाचल समान समुन्नत, पुनीत ज्ञान सुरसरि प्रवाह का जनक, भाव भक्ति भानुनन्दिनी का उत्पादक, और अनुपम विचार रत्न राजिका आकर है। उसी के समान उसमें से अनेक छोटे बड़े धर्म के परम पवित्र स्रोत निकलते हैं, संसार को सरस करते हैं, मानसों में मन्द

मन्द बहते हैं, निज कल कल ध्वनि से निर्जीव को सजीव बनाते हैं, मूढ़ प्रकृति मरुभूमि की मरुभूमिता खोते हैं, पाहन हृदय को स्निग्ध रखते हैं, कलित कामना क्यारियों को सींचते हैं, प्रेम पादप पुंज को पानी पिलाते हैं और कहीं तरंगिणी का स्वरूप धारण कर सद्भाव प्रान्त को पय सिक्त कर देते हैं। वह एक देशवर्ती मान सरोवर है, जिसमें विवेक का निर्मल नीर भरा है, जिसके वेदान्त, सांख्य, न्याय, मीमांसा जैसे बड़े ही मनोरम घाट हैं, जिसमें उपनिषद्-उपदेश के अनूठे उत्पल सुविकसित हैं और जिसके अनुकूल कूल पर संसार भर के नीर क्षीर विवेकी मानस मराल सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं। जिस समय महिमामयी मागधी के तुमुल कोलाहल से भारतीय गगन ध्वनित हो रहा था, उस समय कुछ दिनों तक संस्कृत देवी का महान् कंठ अवश्य कुण्ठित हो गया था, किंतु जल्द समय ने पलटा खाया, फिर उनकी पूजा अर्चा और पद वन्दना होने लगी, उनकी महत्ता देखकर मागधी अवनत मस्तक हुई, बौद्ध धर्म के ग्रन्थ संस्कृत में लिखे जाने लगे, ललित विस्तर जैसे ललित ग्रन्थों की रचना हुई, बौद्ध धर्म के साथ वह देशान्तरों में भी पहुँची, और वहां हाथों हाथ ली गई। समस्त प्राकृत भाषायें अपना काल बिताकर अव्यवहृत हुईं, किंतु संस्कृत की अबाध सत्ता आज भी भारतवर्ष की समस्त प्रचलित भाषाओं को अपने तत्सम शब्दों द्वारा सत्तामयी बना रही है। आज भी प्राचीन भाषाओं के सुसज्जित सभा मंडप में वह सिंहासनासीन है, और आज भी उसकी पुस्तक व्यापिनी भाषा रूपान्तर देश व्यापिनी होकर अपनी विजय वैजयन्ती उत्तोलन कर रही है।

संस्कृत अर्चा की बातें कहने में मैं आर्ष प्राकृत की चर्चा को भूल गया। जब आर्ष प्राकृत अधिक व्यापक हो गई और अनेक प्रान्तों पर उसका अधिकार हो गया, तो उसका रंग रूप भी बदला और उसका स्थान प्रान्तीय प्राकृत ने धीरे धीरे ग्रहण कर लिया। इन प्रान्तीय प्राकृतों में मागधी और शौरसेनी की प्रभा के सामने शेष समस्त प्राकृतों की प्रभा मलिन हो जाती है। मागधी भगवान बुद्ध

देव के आत्मबल से बलवती, और प्रियदर्शी अशोक की धर्म प्रियता से समुन्नत हुई और चिरकाल तक भारत व्यापिनी रही। शौरसेनी को यह गौरव तो नहीं प्राप्त हुआ, परन्तु वह भी बहुत दिनों तक भारतवर्ष के एक बृहत् भाग पर विस्तृत रही, पश्चात् अपभ्रंश भाषा में परिणत हो गई, यही अपभ्रंश भाषा हमारी हिन्दी भाषा की जननी है।

किस प्रकार वेद भाषा बदलते बदलते हिंदी भाषा के रूप में आई, इसका उदाहरण थोड़े में, मैं आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूं—मैं कुछ पद्य आर्ष प्राकृत, शौरसेनी, अपभ्रंश और तदुपरान्त हिन्दी भाषा के लिखता हूं, उनको मिलाइये, आशा है उनसे हिंदी भाषा के विकास पर पूर्ण प्रकाश पड़ेगा। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र की यह सम्मति है कि आदि प्राकृत का रूप गाथाओं में मिलता है, उनके इस सिद्धांत का अनुमोदन मनीषी मैक्स मूलर और डाक्टर वेवर आदि विद्वानों ने भी किया है कहा जाता है कि आर्ष प्राकृत का पूर्व रूप गाथाओं में ही मिलता है एक गाथा नीचे लिखी जाती है।

अध्रुवम् त्रिभवम् शुरदभ्र निभम्।
नट रंग समा जगि जन्मि च्युति।
गिरि नद्य समम् लघु शीघ्र जवम्।
व्रजतायु जगे यथ विद्यु नभे।

संस्कृत के नियम के अनुसार दूसरे चरण के नट रंग समा को नट रंग समम्-जगि को जगति-जन्मि को जन्म-च्युत के स्थान पर च्युतिः तीसरे चरण में गिरिनद्य समम् के स्थान पर गिरि नदी समम् और चौथा चरण व्रजत्यायुर्जगति यथा विद्युन्नभसि होना चाहिये। यह पद्य यह बतलाता है कि किस प्रकार संस्कृत प्रयोगों और शब्दों का तोड़ फोड़ आदि में प्रारम्भ हुआ। इसके बाद का आर्ष प्राकृत रूप देखिये।

रभस वश नम्र सुरशिरों विगलित मन्दार राजितांघ्रि युगः।
वीर जिनः प्रक्षालयतु मम सकल मवद्य जम्बालम्।

यह संस्कृत रूप है–आर्ष प्राकृत का रूप नीचे लिखा जाता है। देखिये कितना थोड़ा परिवर्तन है।

रभस वस नम्म सुरसिर-विगलित राजितांघि युगो।
वीर जिनो पक्खालेतु-मम सकल मवज्ज जम्बालम्॥

शौरसेनी रूप कितना परिवर्तित है यह नीचे लिखे पद्य से प्रगट होगा पहिले संस्कृत रूप उसके नीचे प्राकृत रूप लिखा जाता है।

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमार केसर शिखानि।
अवतंस यन्ति दयमानः प्रमदाः शिरीष कुसुमानि॥
ईसीसि चुम्बिआई भमरेहिं सुउमार केसर सिहाइं।
ओदसयन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीस कुसुमाइं॥

विदग्ध मुख मण्डनकार ने अपभ्रंश भाषा की निम्नलिखित कविता बतलाई है—

रसिअह केण उच्चाडण किज्जइ।
जुयदह माणसु केण उविज्जइ॥
तिसिय लोउ खणि केण सुहिज्जइ।
एह पहो मह भुवणे विज्जइ॥

इसका संस्कृत रूप देखिये—

रसिकानां केनोच्चाटनं क्रियते, युवत्याः मानसं केनोद्विज्यते। तृषितो लोकः क्षणं केन सुखी क्रियते, एतदयं मम (प्रश्नः) भुवने गीयते।

वैयाकरण हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का यह उदाहरण दिया है—

वाह बिछोड़वि जाहि तुहुं हउंते वइं को दोसु।
हिय पट्टिय जद नीसरहि जाणउं मंज सरोसु॥

अब हिन्दी भाषा के आदि कवि चन्द की रचनाओं से इन अपभ्रन्श भाषा की कविताओं को मिलाइये, देखिये कितना सादृश्य है।

ताली खुल्लिय ब्रह्म दिक्खि इक असुर अदभ्भुत।
दिघ्घ देह चख सीस मुष्ष करुना जस जप्पत॥
कवी कित्त कित्ती डकत्ती सुदिप्पी।
तिनक्की उचिष्टी कवी चन्द भष्पी॥

अपभ्रन्श भाषा की कविता से चन्द की कविता कितनी मिलती है, दोनों में कितना साम्य है। यह आपने देखा। परिवर्तन होते होते अपभ्रन्श भाषा की कविता संस्कृत से कितनी दूर हो गई, और वर्तमान हिन्दी के कितनी निकट आ गई, यह भी प्रगट हो गया। कविवर चन्द तेरहवें शतक के आदि में हुए हैं, कहा जाता है कि ग्यारहवें शतक के अन्त तक अपभ्रन्श का प्रचार था, इसके उपरान्त वह हिन्दी के रंग में ढलने लगी। कविचन्द हिन्दी भाषा के चासर हैं, उनके पहले भी कुछ कवि हो गये हैं, जिनमें खुमान, कुतुब अली, साईं दान चारण फैजअकरम और पुष्प कवि का नाम विशेष उल्लेख योग्य है परन्तु हिन्दी भाषा के आदिम प्रौढ़ कवि चंद बरदायी ही हैं। इनके पहले के कवियों के न तो कोई काव्य कहलाने योग्य उत्तम ग्रंथ मिलते हैं, और न उनकी भाषा ही टकसाली अथवा वास्तविक हिन्दी कही जा सकती है, अतएव हिन्दी भाषा के आदि कवि होने का सेहरा चंद बरदायी के ही सिर है।

चंद बरदायी का ग्रंथ पृथ्वीराज रासो, विशाल ग्रंथ है, उसकी भाषा में भी भिन्नता है। उसमें कई प्रकार की रचनायें हैं, वह केवल चंद की कृति भी नहीं है, ग्रंथ का अंतिम भाग उसके योग्य पुत्र जल्ह द्वारा लिखा गया है, अतएव रासो के विषय में संदिग्ध बातें कही सुनी जाती हैं तथापि उसकी अधिकांश भाषा, ग्रंथ की सामयिक बातों का वास्तविक उल्लेख; उस काल की सभ्यता के आदर्श, रासो को हिंदी भाषा का आदि ग्रंथ मानने के लिये विवश करते हैं। कुछ उसकी भिन्न प्रकार की रचनायें आप लोगों के मनोरंजन के लिये यहां उद्धृत करता हूं।

दोहा

पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फल दान।
अन्त होइ सह गामिनी, नेह नारि को मान॥
सम दरसी ते निकट है, भुगत मुगति भरपूर।
विखम दरस वा नरन ते सदा सरवदा दूर॥

ये पद्य बिल्कुल प्रौढ़ हिन्दी काल के मालूम होते हैं—

हरित कनक कान्ति कापि चंपेव गौरी।
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा।
उरज जलज शोभा नाभि कोशं सरोजं।
चरण कमल हस्ती लीलया राज हंसी।

ऊपर जो दो कवितायें लिख आया हूं—वह इन दोनों रचनाओं से भिन्न हैं। अधिकांश स्थल पर चन्द की कविता बड़ी मनोहारिणी है, सम्भव है कि रासो में कुछ प्रक्षिप्त अंश भी हो, किन्तु जिन कविताओं में चन्द या जल्ह का नाम आया है, उनके तत्कालिक रचना होने में सन्देह नहीं, रासो बड़ा सुन्दर काव्य है, और साहित्य की सम्पूर्ण कलाओं से अलंकृत है।

कविवर चन्द बरदायी के बाद चौदहवें शतक के मध्यकाल में हमारे सामने दो भाषाओं के दो महान् विद्वान् आते हैं—एक संस्कृत विद्या का विदग्ध और दूसरा अरबी फ़ारसी का आलिम। दोनों ही भगवती वीणा पाणि के वर पुत्र, सरस हृदय और कविता देवी के भावुक भक्त हैं, उन्होंने हिंदी के मनोरम उद्यान में बड़े सुन्दर सुमन खिलाये हैं। एक ने पूर्वी हिंदी की उज्ज्वल और परम ललित रचना की नींव डाली है, और दूसरे ने खड़ी बोली की मनोहर कविता का आदि रूप सामने उपस्थित किया है एक मैथिल कोकिल है—और दूसरा बुलबुल हज़ार दास्तान। एक का नाम है विद्यापति ठाकुर और दूसरी का अमीर खुसरो। यदि कोमल कान्त पदावली के जनक संस्कृत में जयदेव हैं, तो हिंदी भाषा में कलित ललित मधुर रचना के पिता विद्यापति—यदि वे हृत्तंत्री को निनादित कर कहते हैं।

ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुञ्ज कुटीरे॥

तो ए मानस मृदंग को मुखरित कर यों मधुर आलाप करते हैं।

नन्दक नन्दन कदम्बेर तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सँकेत निकेतन बरसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥

जमुना क तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहारि ।
गोरस बिकइ अबइते जाइत जनि जनि पुछ बन मारि ॥

इस सुधा स्रावी सज्जन के इस वाक्य पर "साह भादर भरा बादर सून्य मन्दिर मोर" बंगाल का सहृदय समूह बिमुग्ध हो जाता है, किंतु उनके इस प्रकार के सहस्त्रों ललित पद उनके ग्रंथ में मौजूद हैं। अब हमारे बुलबुल हज़ार दास्तान की नग़मा सराई सुनिये।

ज़े हाल मिसकीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नयना बनाय बतियां।
कि ताबे हिज्रां न दारम ऐ जां न लेहु काहे लगाय छतियां ॥
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम बेबुर्द तसकीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियां ॥

इन पद्यों में जो हिन्दी का रूप है, उसमें आदि के दो पद्यों में सरस ब्रज भाषा का सुन्दर नमूना है नीचे के हिंदी पद्य में से यदि 'बतियां, निकाल दें तो वह खड़ी बोली का बड़ा अनूठा उदाहरण है। नीचे के दोहे कितने मनोहर हैं।

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को भये दोऊ एक रंग ॥
श्याम सेत गोरी लिये जनमत भई अनीत।
एक पल में फिर जात हैं जोगी काके मीत ॥
गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस ॥

इस सहृदय सुकवि की एक बिल्कुल खड़ी बोली की कविता देखिये, यह आकाश की पहेली है।

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चार ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे ॥

इन दोनों सज्जनों की कविताओं को पढ़ कर आश्चर्य होता है कि किसी आदर्श के न होने पर भी इन लोगों ने कितनी सरस, टकसाली, और सुन्दर हिन्दी लिखी है। मेरा विचार है कि कोई कविता पुस्तक न होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस

प्रकार की भाषा का देश में उस काल प्रचार न था। सैकड़ों भजन, गीत, और गाने की चीज़ें उस समय अवश्य होंगी, और उनसे इन लोगों को कम सहारा न मिला होगा, यही बात चन्द बरदायी के लिये भी कही जा सकती है। मैथिल कोकिल की भाषा तो इतनी प्यारी और सुन्दर है, उनका कल कूजन इतना आकर्षक है, कि बंगाल, बिहार, और हमारा प्रांत तीनों उनको अपनी अपनी भाषा का महाकवि मान कर अपने को गौरवित समझते हैं।

इन लोगों के बाद हिन्दी संसार के सामने संत कबीर आते हैं, इनके हाथों में ज्ञान का दीपक था, जो खूब दमक रहा था, आप की हिन्दी रचनायें बहुमूल्य हैं, और उसी दीपक ज्योति से ज्योतिर्मयी हैं। आपने संतमत और संतबानी की नींव डाली। आपकी दृष्टि बड़ी प्रखर थी, आपकी समस्त रचनाओं में उसकी प्रखरता विद्यमान है। आपकी रचनायें हिन्दी साहित्य का गौरव हैं, उनमें वह आदर्श मौजूद है—जिस आदर्श ने अनेक संतजनों के हृदय को प्रेम रस से प्लावित कर दिया। महात्मा कबीर ने अपनी रचनाओं से हिन्दी भाषा को तो मालामाल बना ही दिया है, परन्तु उनके आदर्श ने एक विशद साहित्य उत्पन्न कर दिया है हिन्दी साहित्य के विकास में इन रचनाओं से बड़ी सहायता मिली है। कबीर साहब की रचनाओं का भाण्डार बहुत बड़ा है, उसमें सब प्रकार की कवितायें पाई जाती हैं, जो उनको विभिन्न समयों में रची गई बतलाती हैं, उनकी रचना प्रणाली में भी अन्तर है। मेरा विचार है कि कबीर साहब की रचना का मुख्य स्वरूप उनके बीजक में पाया जाता है। दोनों प्रकार की रचनायें नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कहहु हो अम्बर कासों लागा, चेतन हारा चेत सुभागा।
अम्बर मध्ये दीसे तारा, एक चेता एक चेतवन हारा॥
जो खाजी सो उहवां नाहीं, सो तो आहि अमर पदमाहीं।
कह कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाकै एक होई॥

रहना नहिं देश बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े घुल जाना है।

यह संसार कांट की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झांखड़, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

महात्मा गोरखनाथ कबीर साहेब के प्रथम हुए हैं। और संत-वानी और हिन्दी गद्य के आदि आचार्य्य वे ही हैं—उनकी वानी का नमूना देखिये—

अवधू रहिया हाटे बाटे रूख विरिख की छाया।
तजिवा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया ॥

परन्तु इस प्रणाली को समुन्नत करनेवाले कबीर साहब हैं, उनकी रचनाएँ अधिक हैं, और भावमयी हैं, अतएव उनका समादर भी अधिक हुआ है। हिन्दी साहित्य को समुन्नत करने में वे सहायक हुई हैं। कबीर साहेब की साखियां बड़ी मनोहर हैं, वे भजनों से अधिक जनता में प्रचलित हैं—उनका भी रंग देखिये—

आछे दिन पाछे गये गुरु सों किया न हेत।
अब पछताया क्या करे चिड़िया चुग गई खेत ॥
पांचो नौबत बाजती होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥

कबीर साहेब के उपरांत हिन्दी की समुन्नति और वृद्धि का वह समय आया, जो फिर कभी नहीं आया। उनके बाद सौ बरस के भीतर हिन्दी देवी का जो शृंगार हुआ, जो लोकोत्तर प्रसून-चय उन पर चढ़े, उनका वर्णन नहीं हो सकता। इस समय में हिन्दी गगन को समुद्भासित करनेवाले, हिन्दू संसार को अलौकिक आलोक से आलोकित करनेवाले प्रभाकर समान प्रभाशाली सूरदास और सुधाकर समान सुधास्रावी गोस्वामी तुलसीदास उत्पन्न हुए। मधुमयी लेखनी के आधार मलिक मुहम्मद जाइसी और सम्मट समान आचार्य पद के अधिकारी विबुधवर केशवदास इसी काल के जगमगाते रत्न हैं। इस समय यदि सम्राट् अकबर हिन्दी साम्राज्य सम्वर्धन का केतु उत्तोलन कर रहे थे, तो मंत्रिप्रवर रहीमखां ख़ानख़ाना उसको अमूल्य रत्नों का हार उपहार देकर और सचिव

शिरोमणि महाराज बीरबल पारिजात पुष्प से उसकी पूजा करके फूले नहीं समाते थे। इस समय वह भारत के अधिकांश भाग में सम्मानित थी, महाराजाधिराज के समुच्च प्रासाद से लेकर एक साधारण विद्याव्यसनी की कुटीर तक में उसका सरस प्रवाह प्रवाहित था। वह वैष्णव मण्डली की जीवन सर्वस्व, विबुध समाज का आधार स्तम्भ, सहृदय जन की हृदय वल्लभा, और रसिक जनों को रसायन सरसी थी। इस समय अनेक सरस हृदय कवि उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी रसमयी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को अजर अमर कर दिया है। इस समय व्रज भाषा का अखण्ड राज्य था, किन्तु इसी समय अवधी भाषा में पद्मावत जैसा बड़ा ही अनूठा काव्य लिखा गया।

इस काल के समस्त बड़े बड़े कवियोंकी भाषा और रचनाओंका उदाहरण मैं सेवा में उपस्थित नहीं कर सकता। किन्तु जो हिन्दी देवी के अंक के निराले लाल हैं, जिन्होंने उसको निहाल ही नहीं किया उसे चार चांद भी लगा दिये उनकी कुछ कविताएँ सुनाये बिना आगे बढ़ने को जी भी नहीं चाहता। साहित्य संसार के सूर सूर की बातें सुनिये—

> खंजन नैन रूप रसमाते।
> अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
> चल चल जात निकट श्रवनन के उलट पलट ताटंक फंदाते॥
> सूरदास अंजन गुन अटके न तरु अबहिं उड़ि जाते॥

कुछ मर्म भरी बातें मलिक मुहम्मद जाईसी की भी सुनिये। यह शख्स अजब दर्द भरा दिल साथ लाया था।

> मिलहिं जो बिछुरे साजना करि करि भेट वहंत।
> तपन मृगिसिरा जे सहंहि ते अदरा पलु हंत॥
> पिय सों कहेहु संदेसरा ए भौंरा ए काग।
> सो धन विरहिन जरि गई तेहिक धुआं मोहि लाग॥
> राती पिय के नेह की स्वर्ग भयो रतनार।
> जोरेउवासो अथवा रहा न कोइ संसार॥

गोस्वामीजी की रत्न-राजि में से कौन रत्न उपस्थित करूं, वे सभी उज्ज्वल हैं, राम चरित मानस सरोज मकरंद का मधुप कौन नहीं है? उनका रँग निराला, ढँग निराला बात निराली सब निराला हा निराला तो है--हां, उनका रंग बड़ा चोखा है—अच्छा इसी की रंगत देखिये—

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश चातक तुलसीदास॥
तुलसी संत सुअम्ब तरु फूलि फलहिं पर हेत।
इन ते ए पाहन हनैं उतते वे फल देत॥
गो धन गज धन वाजि धन और रतन धन खान।
जब आवत संतोष मन सब धन धूरि समान॥
असन बसन सुत नारिसुख पापिहु के घर होय।
संत समागम राम धन तुलसी दुर्लभ दोय॥

"महाकवि केशव का महत्व अकथनीय है—आपके कुल के सेवक भी भाषा नहीं बोलते थे—आपको भाषा में कविता करना अरुचिकर था-किन्तु जब इधर रुचि हुई तो कमाल कर दिया-एक पद्य उनका भी सुन लीजिये, देखिये आपकी मान-मर्यादा की मर्यादा बनी रहे—

भूखन सकल घनसारही के घनश्याम कुसुम कलित के सर ही छवि छाई सी।
मोतिन की लरी सिर कंठ कंठमाल हार और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥
चन्दन चढ़ाये चारु सुन्दर सरीर सब राखी जनु सुभ्र सोभा वसन बनाई सी।
सारदा सी देखियत देखो जाइ केसोराइ ठाढ़ी वह कुंवर जोन्हाई में अन्हाई सी॥

हिन्दी संसार में दो बहुत बड़े सारग्राही हुये हैं, इनकी सारग्राहिता बड़ी ही हृदयग्राही है। ये हैं थोड़ी पूँजी वाले, किन्तु कई बड़े बड़े पंजिपति इनके सामने कुछ नहीं हैं। इनके पास हैं थोड़े, किन्तु जितने जवाहिर हैं, हैं बड़े ही अनूठे। जहां कितने तेल चुलाने वाले ठीक ठीक तेल भी नहीं चुला सके वहां इन्होंने इत्र निचोड़ा है। इनमें एक दरियाय लताफ़त के दुरे बेबहा अब्दुल रहीमखां ख़ानख़ाना हैं और दूसरे साहित्य गगन के पीयूषवर्षी पयोद विहारी लाल। इन दोनों सहृदयों में सौ साल से अधिक का

अन्तर है--इन लोगों की भी कुछ रचनायें सुनिये--पहले रहीम की सेह बनायी देखिये--

यों रहीम सुख होत है बढ्यो देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अँखियान लखि अँखियन को सुख होत ॥
छार मुण्ड मेलत रहत कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज रिखि पत्नी तरी सो ढूँढ़त गजराज ॥
कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला ।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥

बिहारीलाल की ललामता अवलोकन कीजिये--

यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनो दीपक देह ।
तऊ प्रकास करै तितो भरियो जितौ सनेह ॥
जो चाहत चटक न घटै मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित्त प्रीति ।
परति गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति ॥

हिंदी के इस स्वर्णयुग में और भी अनेक साहित्य कानन केशरी उत्पन्न हुए हैं--वे सब अपने ढंग में निराले हैं, परन्तु मेरे पास उन समस्त भावुकों की भावमयी रचनाओं के उपस्थित करने का स्थान नहीं। इस स्वर्ण युग के उपरान्त भी बड़े ही कवि कर्म कुशल काव्य कर्त्ताओं का दर्शन होता है, उन लोगोंने भी मोती पिरोये हैं, बड़े अनूठे बेल बूटे तराशे हैं, भगवती भारती के कण्ठ में बहुमूल्य रत्न हार डाले हैं—हिन्दी देवी को भाव के समुच्च आसन पर आसीन किया है--उसे समुन्नत बनाया है और उन न्यूनताओं की पूर्ति की है जो उसकी कीर्ति के आवश्यक साधन हैं, परन्तु स्वर्णयुग का आदर्श ही उनका आदर्शभूत है, अतएव उनके विषय में कुछ विशेष लिखकर मैं इस व्याख्यान की कलेवर-वृद्धि नहीं करना चाहता। हां, इन लोगों में एक देवदत्त बलबलीयान देवदत्त

नामक कविकुल-कलश पर दृष्टि बिना पड़े नहीं रहती, यह देव वास्तव में स्वर्गीय सम्पत्ति सम्पन्न है-उसकी दीप्ति के सम्मुख कविता देवी भी चमत्कृत होती हैं, अतएव उनका चमत्कार भी देखिये—

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूं सुजस कहानी सी।
तब ही ते देव देखी देवता सी हंसति सी,
रीझति सी खीजति सी रूठति रिसानी सी॥
छोहीं सी छली सी छीन लीनो सी छकी सी,
छिन जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बँधी सी विख बूड़ति विमोहित सी,
बैठी बाल बकति विलोकति विकानी सी॥

हिंदी विकास का यह प्रसंग अधूरा रह जायगा यदि गुरु देवों की गौरवमयी रचनाओं की गुरुता का गान इस में न हो। महात्मा गुरु नानक से लेकर कँलगीधर गुरु गोविंदसिंह तक दसों गुरुओं ने हिन्दू जाति को गौरवित बनाने का ही भगीरथ प्रयत्न नहीं किया है-उन स्वर्गीय महा पुरुषों ने हिंदी देवी की भी वह सेवा की है कि जिसके विषय में यह निर्भय होकर कहा जा सकता है 'न भूतो न भविष्यति'। यदि वंदनीय वल्लभ सम्प्रदाय अथवा पूजनीय वैष्णव दल ने उसको समुन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है—यदि समादरणीय संत मत वालों ने उसकी प्रथित प्रतिष्ठा पताका बहुत ऊंची कर दी है, तो सकल गौरव भाजन गुरु देवों ने उसकी कान्ति कीर्ति कौमुदी द्वारा समस्त दिशाओं को धवलित कर दिया है। वास्तव बात यह है कि एक हिंदी देवी ही ऐसी हैं जो अविरोध से सभी सम्प्रदाय और मतवालों की आराध्या हैं। पवित्र आदि ग्रंथ साहब और दशम गुरु प्रणीत दशम ग्रन्थ साहब हिन्दी भाषा की पुनीत, महान् और भावमयी रचनाओं के अपार पारावार हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दी में आज तक किसी ग्रन्थकार ने इतना बड़ा ग्रंथ नहीं रचा। इन दोनों पुनीत ग्रंथों में क्या नहीं है? वे ज्ञान के भाण्डार, विवेक के वारिधि, विचार के हिमाचल, भाव के

सुमेरु और भक्ति के आकर हैं। गुरु नानक देव के शब्द पंजाबी भाषा मिश्रित हैं, किन्तु गुरु अर्जुन देव की रचना अधिकांश शुद्ध हिन्दी है—दशम ग्रन्थ साहब की अधिकांश कविता व्रजभाषा में है, और उसमें उसका उच्च और परिमार्जित स्वरूप वर्तमान है—आदि ग्रन्थ साहब में से दो दोहे और दशम ग्रन्थ साहब में से एक पद्य नीचे लिखा जाता है।

बलिहारी गुरु आपणे देव हाड़ीं सद वार।
जिन माणस ते देवते करत न लागी वार॥
जो सौ चंदा ऊगवे सूरज चढ़ै हज़ार।
एते चानण होदियाँ गुरु बिण घोर अँधार॥

सेत धरे सारी बृखभानु की कुमारी जस,
ही की मनोवारी ऐसी रची है न को दई।
रंभा उरवसी और सची सी मन्दोदरी पै,
ऐसी प्रभा काकी जग बीच न कछू भई।
मोतिन के हार गरे डार रुचि सों सिंगार,
कान्ह जू पै चली कवि श्याम रस के लई।
सेत साज साज चली साँवरे के प्रीति काज,
चाँदनी में राधा मानो चांदनी सी हो गई।

व्रजभाषा और खड़ीबोली

हिन्दी भाषा के विकास की वार्त्ता के साथ खड़ी बोली के विकास का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। यद्यपि खड़ी बोली की कविता कविवर खुसरो के समय से ही होने लगी थी, कबीर साहब ने भी कभी कभी खड़ी बोली की कविता लिखी है, कभी कभी और सहृदय सुजन भी एक आध पद्य खड़ी बोली का लिख जाते थे—जैसा निम्नलिखित पद्यों से प्रकट होता है—

जंगल में हम रहते हैं—दिल बस्तीसे घबराता है।
मानुस गंध न भाती है मृग मरकट संग सुहाता है॥

चाक गरेबां करके दम दम आहें भरना आता है।
ललित किशोरी इश्क रैन दिन ये सब खेल खिलाता है॥

ललित किसोरी

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बन्द किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफन्द किया।
चम्पक दल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया॥

किन्तु खड़ीबोली की ये रचनायें आकस्मिक हैं। व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों शौरसेनी अपभ्रंश का रूप हैं, व्रजभाषा का केन्द्र मथुरा मण्डल है, और खड़ी बोली का दिल्ली प्रान्त अथवा उसका समीपवर्ती भू भाग। किस प्रकार व्रजभाषा उन्नति करते करते पराकाष्ठा को पहुँची, यह आप लोगों ने देख लिया—जो सौभाग्य स्वयं शौरसेनी अथवा अपभ्रन्श को नहीं प्राप्त हुआ, जो महत्व उसकी दूसरी बहनों अवधी अथवा भोजपूरी बोलियों को नहीं मिला, वह अथवा उससे भी कहीं अधिक सौभाग्य और महत्व व्रजभाषा ने हस्तगत किया। मैथिल कोकिल की रचना में आप व्रजभाषा की झलक देख चुके हैं। यदि आप आगे बढ़कर बंगाल में पदार्पण करेंगे, तो वहां के प्राचीन कवि कीर्तिवास और चंडो दास इत्यादि की मधुर रचनाओं को भी वह माधुर्य्य वितरण करती दिखलाई पड़ेगी। पच्छिम दक्षिण में राजपूताने और गुजरात में भी आप उसका प्रसार देखेंगे, वहां वह तत्कालिक पूर्वतन कवि की कविता मालाओं को अपनी कोमल कान्त पदावलि कुसुमावली द्वारा सुसज्जित करती दृष्टिगोचर होती है। भगवान् बुद्धदेव के साधन बल से जिस प्रकार मागधी का हित साधन हुआ था, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव के सहवास से सुवासित होकर व्रजभाषा भी समादृत हुई। जहाँ जहाँ उनके प्रेममय ग्रंथ का प्रचार हुआ, जहाँ जहाँ उनकी मधुमयी लोक विमुग्धकारिणी मुरली की चर्चा छिड़ी, जहाँ जहाँ उनकी आराध्या श्रीमती राधिका देवी उनके साथ आराधित हुई, वहां वहां कलित ललित कलामयी व्रजभाषा अवश्य

पहुँची। न तो पंजाब इस प्रवाह में पड़ने से बचा, न बिहार, न मध्यप्रान्त, हमारे देश की चर्चा ही क्या, वह तो चिरकाल से भगवती व्रजभाषा का भक्त है—और आज भी उनके पुनीत चरणों पर भक्ति पुष्पांजलि अर्पण कर रहा है। व्रजभाषा साहित्य का पद्य विभाग जितना विशद, उन्नत और उदात्त है, जितना ललित और सरस है, उतना ही प्रिय और व्यापक है। जो गौरव इस विषय में उसको मिला भारत की किसी अन्य भाषा को आज तक प्राप्त नहीं हुआ। इस प्रान्त के अधिकांश सुकवि आज भी उसके अनन्य उपासक हैं—बहुत लोग आज भी उसकी चकितकरी ललित कला के समर्थक हैं—किन्तु यह अवश्य है कि कालगति से उसके अबाध प्रवाह में अब कुछ बाधा उपस्थित हो गई है, इसके कारण हैं।

उन्नीसवें शतक के आरम्भ में गद्य हिन्दी की नींव श्रीयुत लल्लूलाल और श्रीमान् सदल मिश्र द्वारा कुछ विशेष कारणों से पड़ी। यद्यपि इनके पहले के भी गद्य ग्रन्थ हिन्दी में पाये गये हैं, जिनमें महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी विट्ठलनाथ, और गोस्वामी गोकुलनाथ के ग्रन्थ प्रधान हैं—किन्तु गद्य विभाग का वास्तविक कार्य जो कि क्रमशः अग्रसर होता गया उक्त दोनों सज्जनों के समय से ही प्रारम्भ होता है। हिन्दी गद्य का जो सुन्दर बीज उन लोगों ने बोया वह श्रीयुत राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के सेचन द्वारा कुछ काल के उपरान्त एक हरा भरा पौधा बन गया, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के कर कमलों से लालित पालित होकर यह पौधा एक प्रकाण्ड वृक्ष में परिणत हुआ, और सुन्दर फूल फल लाया। इस काल में और इसके परवर्ती काल में हिन्दी गद्य के अनेक सुलेखक उत्पन्न हुये, उन्होंने सुन्दर सुन्दर पुस्तकें लिखीं, तरह तरह के समाचारपत्र और मनोहर मासिक पत्रिकायें निकालीं, और इस प्रकार उसको बहुत कुछ अलंकृत एवं श्री सम्पन्न कर दिया। जो हिन्दी गद्य किसी काल में कतिपय पंक्तियों में ही स्थान पाता था, जो थोड़े से दान पत्रों, दस्तावेज़ों, तमस्सुकों, इकरारनामों और महज़र नामों के आधार से ही जीवित था, जो या तो कुछ चिट्ठी

पत्री में दिखलाई पड़ता, अथवा किसी टीकाकार की लेखनी से प्रसूत हो टूटी फूटी दशा में किसी प्राचीन पुस्तक के मैले कुचैले पत्रों में पड़ा रहता, वह इस काल में नये वसन भूषणों से सुसज्जित होकर सर्वजन आदृत हुआ। पहले पहल जो तेरहवें शतक में मेवाड़ की एक सनद में दिखलाई पड़ा और अट्ठारहवें शतक में छोटे छोटे लेखों अथवा साधारण पुस्तकों के सहारे कभी कभी अग्रसर होता रहा, उन्नीसवें शतक में पचास बर्ष के भीतर वही विस्तृत होकर भारतव्यापी हुआ। जो महात्मा गोरखनाथ की विभूति से भी विभूतिमय नहीं हुआ, गोस्वामी बिट्ठलनाथ की स्वामिता में भी साहित्य स्वामी नहीं बना, भक्त नाभादास जिसे आभा नहीं दे सके, जिसे बनारसीदास सरस, जटमल सजीव, देव दिव्य, सूरत मिश्र स्वरूपमान, दास प्रसाद युक्त, ललित किशोरी ललित, और ललित माधुरी मधुर नहीं बना सके, वहीं हिन्दी गद्य इस काल में समुन्नत होकर सर्वगुणसम्पन्न हो गया। भारतेन्दु और तत्कालिक हिन्दी साहित्य गगनशोभी कतिपय ज्योति निकेतन विद्वद्वृन्द तारक पुंज ने उस समय उसको जो अपूर्व आलोक प्रदान किया, उससे वह आज तक आलोकित है, और दिन दिन समधिक आलोकमय हो रहा है।

समय प्रवाह से जब हिन्दी गद्य समुन्नत हुआ, और योग्य विद्वत्समाज द्वारा उसको समुचित आश्रय मिला, तो जनता में उसका अनुराग उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जैसे जैसे हिन्दी में सुन्दर सुन्दर भावमय ग्रंथ निकलने लगे वैसे वैसे उसका समादर बढ़ता गया, यंत्रालयों और सामयिक पत्र पत्रिकाओं की वृद्धि ने इस प्रवृत्ति की और वृद्धि की। इस समय युक्त प्रान्त, बिहार और मध्यप्रदेश में तो वह प्रचलित था ही, पंजाब प्रान्त में और बंगाल के प्रधान स्थान कलकत्ते और बम्बई हाते की राजधानी बम्बई में भी उसका प्रचुर प्रसार हो गया था। इस बहु विस्तृत हिन्दी गद्य की भाषा खड़ी बोली थी। श्रीयुत गोस्वामी विट्ठलनाथ के चौरासी वैष्णवों की वार्ता की रचना ब्रजभाषा में हुई है, पहले की जितनी टीकाएँ और फुटकल

नोट कहीं पाये जाते हैं, उन सब की भाषा लगभग ब्रजभाषा ही थी, श्रीयुत लल्लूलाल की भाषा में भी ब्रजभाषा का पुट मौजूद है। किन्तु राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने गद्य में शुद्ध खड़ी बोली को स्थान दिया है। परवर्ती समस्त हिन्दी गद्य लेखक भी इसी पथ के पथिक हैं। कारण इसका यह है कि जिस कालका यह वृत्तान्त है, उस समय उर्दू भाषा उत्तरोत्तर समुन्नत होती हुई सर्कारी कचहरियों में भी प्रतिष्ठा लाभ कर चुकी थी, अतएव उसका प्रचार प्रान्त भर में हो गया था, और उसके आश्रय से खड़ीबोली प्रान्त व्यापिनी भाषा बन गई थी। ऐसी अवस्था में हिन्दी की समुन्नति के लिये उसका भी खड़ीबोली में लिखा जाना आवश्यक हो गया। यही कारण है कि ब्रजमण्डल निवासी होकर भी राजा लक्ष्मणसिंह की लेखनी खड़ीबोली के अनुकूल चली, और ब्रजभाषा के अनन्य भक्त होकर भी भारतेन्दु खड़ी बोली को भारत व्यापिनी बनाने में संकुचित नही हुये। राजा शिवप्रसाद के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, क्योंकि उनका आदर्श था "चलो तुम उधर को हवा हो जिधर की।" इतना होने पर भी हिन्दी गद्य लेखकों ने पद्य की भाषा उस समय ब्रजभाषा ही रखी, भारतेन्दु जी और राजा लक्ष्मणसिंह के ग्रन्थों की पद्य भाषा ब्रजभाषा है। किन्तु कुछ समय बीतने पर सुगमता और सुविधा का सामना करना पड़ा, इस समय पढ़ी लिखी जनता खड़ीबोली से परिचित हो गयी थी, अधिकांश लेखक भी जितना खड़ी बोली पर अधिकार रखते थे उतना ब्रजभाषा पर नहीं, अतएव धीरे धीरे वह अव्यवहृत हो चली और उसका समझना सुगम नहीं रहा। सामने उर्दू का आदर्श था; जिसके गद्य पद्य दोनों की भाषा एक थी, अतएव खड़ी बोली में ही हिन्दी भाषा की कविता करने का प्रश्न छिड़ा, सुविधा और सुगमता की दोहाई दी गई, धूम धाम से आंदोलन हुआ, सफलता खड़ीबोली को मिली, और इस प्रकार खड़ीबोली की कविता का सूत्रपात हुआ।

जनता अथवा मानव-हृदय सुविधा और सुगमता का अनुचर है, सामयिक प्रवाह उसका सूत्रधार है, समयानुसार जो सुगम और सुविधाजनक पथ होता है, वह बहुत विरोध करने पर भी अन्त में उसी पथ पर अविरोध के साथ चलने लगता है—सदैव ऐसा होता आया है, आगे भी ऐसा ही होगा। हमारी परम पवित्र वेद भाषा, सुसंस्कृता संस्कृत, महिमा मयी मागधी, जैसे नियति का नियम पालन करने को वाध्य हुई, उसी प्रकार मधुरता मूर्त्ति व्रजभाषा को भी नियति चक्र में पड़ना पड़ा। किन्तु वे भाषायें जैसे हमारी दृष्टि में आज तक भी समादृत हैं, वैसे ही जब तक हिन्दी भाषा का नाम भी संसार में शेष रहेगा, व्रजभाषा समादृत रहेगी। आज भी उसकी अर्चा करके अपने करों को चन्दनचर्चित करने वाले लोग हैं, और चिरकाल तक रहेंगे। मैं उन लोगों को मर्म्मज्ञ और सहृदय नहीं समझता जो उसके विरुद्ध असंगत बातें कथन करके अपने को कलंकित करते हैं।

खड़ीबोली की कविता का अभी आरंभिक काल है। जो लोग उसकी सेवा आजकल कर रहे हैं, वास्तव में वे सेवक हैं, यदि उनको कोई कवि समझता है तो यह उसका महत्व है। भक्त जन की भावुकता भावमयी होती है, अपने भावावेश में उसे किसी बात का अभाव नहीं होता, इसी सूत्र से कोई कुकवि भी किसी की दृष्टि में महाकवि बन सक्ता है। परन्तु वास्तव बात यह है कि खड़ी बोली के सेवकों की तुलना व्रज भाषा के सुकवियों से करना विडम्बना छोड़ और कुछ नहीं है। कवि चक्र चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास से महाकवि जिस पथ में चलकर कहते हैं, "कवित विवेक एक नहिं मोरे-सत्य कहों लिखि कागद कोरे" उस पथ का पथिक होकर कोई खड़ी बोली का सुकवि भी अपने को कवि नहीं कह सकता, कोई सेवक ऐसा दुस्साहस कैसे करेगा! सब भाषाओं में सूर शशि एक एक ही होता है, हां, तारक चय की कमी नहीं होती। खड़ी बोली की कविता के आस पास अंधकार घनीभूत है, कतिपय तारे उसमें चमक दमक रहे हैं, धीरे धीरे अंधकार भी टल रहा है।

किन्तु भरमार अभी खद्योतों की ही है, उनको भी चमकने दीजिये, क्या कुछ अंधेरा उनसे भी दूर नहीं हो रहा है ? आप उनको मूठियों में क्यों रखना चाहते हैं, यह अंधेर है। समय पर सब होंगा, घनी-भूत अन्धकार एक दिन टलेगा, भगवान् भुवन-भास्कर भी निकलेंगे।

सेवकों को उचित पथ पर चलाने का अधिकार सब अधिकार वालों को है—किन्तु कशाघात करके उनको क्षत-विक्षत कर देना न्यायसंगत न होगा। आजकल देखता हूं कि खड़ी बोली की कविता के सेवकों पर प्रहार पर प्रहार हो रहे हैं, उनको नाना लांछनों द्वारा लांछित किया जा रहा है—अपराध उनका यह है कि वे नीरस को सरस, तमोमयी अमा को राका रजनी, और काक-कुमार को कलकण्ठ बनाना चाहते हैं। कहा जाता है कि उनकी खड़ी बोली की रचना क्लिष्ट होती हैं, उसमें ब्रजभाषा के शब्द मिला-कर खिचड़ी पकाई जाती है, और शुद्ध शब्दों का प्रयोग करके उसे कर्कश किया जाता है। उनकी कविता में सरसता नहीं, लालित्य नहीं, भाव नहीं, ध्वनि नहीं, व्यंजना नहीं, कोमलता नहीं, प्रयोजन यह कि उसमें सब नहीं ही नहीं है, उत्तमता कुछ नहीं। मेरा सवि-नय निवेदन यह है कि क्या यह सत्य है ? मैं क्लिष्टता का प्रति पादक नहीं, मैं कोमल कान्त पदावली का अनुरक्त हूं, प्रिय प्रवास रचना का और उद्देश है, मेरे इस कथन में सत्यता है या नहीं, यह 'बोल चाल' नामक ग्रंथ बतलावेगा, जो प्रियप्रवास का दूना है। किन्तु प्रसाद गुणमयी कविता का अनुमोदक होकर भी, मैं यह कहने के लिये बाध्य हूं कि कवि की स्वतंत्रता हरण नहीं की जा सकती, उसको सब प्रकार की रचना करने का अधिकार है। यदि कोई क्लिष्ट कविता करना ही पसंद करता है, तो वह अवश्य सतर्क करने योग्य है-परन्तु यदि उसकी कविता सब प्रकार की है, और उसमें से क्लिष्ट रचना ही दोष दिखलाने के लिये उपस्थित की जाती है—तो यह अनुचित दोष दर्शन है। प्रायः देखा जाता है कि किसी खड़ी बोली के कविता-लेखक की कोई अत्यंत क्लिष्ट कविता उठाकर रख दी जाती है-और तरह तरह के व्यंग करके यह प्रश्न

किया जाता है कि क्या यह खड़ी बोली की कविता है ? प्रयोजन यह कि खड़ी बोली की कविता रचना ढोंग मात्र है, उसमें असरसता छोड़ और कुछ नहीं। मेरा निवेदन यह है कि प्राचीन लब्ध-प्रतिष्ठ महा कवियों ने भी इस प्रकार की कवितायें की हैं, और ये कवितायें उसी भाषा की मानी गई हैं, जिस भाषा में कि लिखी गई हैं। मैं हिन्दी संसार के कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास, वंग भाषा के महा कवि भारत चंद्र और उर्दू भाषा के मलिकुश्शोअरा मिर्ज़ा ग़ालिब की एक एक कविता प्रमाणस्वरूप नीचे लिखता हूं-आप लोग उसे देखें—

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं।
चरणारविन्दमहं भजे भजनीय सुर नर दुर्लभं॥
सिर केकि पच्छ विलोल कुण्डल अरुन बनरुह लोचनं।
गुञ्जावतंस विचित्र सब अंग धातु भव भय मोचनं॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भृगका मयंक समाननं।
अपहरत तुलसीदास त्रास विहार वृन्दा काननं॥

गोस्वामी तुलसी दास

जय चामुण्डे जय चामुण्डे कर कलितासि वराभय मुण्डे।
कल कल रसने कड़ मड़ दशने रण भुवि खण्डित सुर रिपुमुण्डे॥
अट अट हासे कट कट भाषे नखर विदारित रिपु करि शुण्डे।
कलि मल मथनम्‌ हरि गुण कथनम्‌ विरचय भारत कविवर तुण्डे॥

भारत चन्द्र

शुमारे सबहा मरग़ूबे बुते मुशकिल पसंद आया।
तमाशाये बयक कफ़ बुरदने सद दिल पसंद आया॥
हवाये सब्ज़ गुल आईनये बेमेहरिये क़ातिल।
कि अन्दाज़े ब ख़ूं ग़लतीदने क़ातिल पसंद आया॥

मिर्ज़ा ग़ालिब

गोस्वामीजी के इस प्रकार के पद्य सैकड़ों हैं, विनयपत्रिका का लगभग एक तृतीयांश ऐसे ही पद्यों से पुर है। आचार्य केशव की रचना में इस प्रकार के अनेक पद्य हैं। क्या कविवर सूरदास

क्या वैष्णव संसार के दूसरे प्रसिद्ध कवि सभी की रचनाओं में इस प्रकार की कविता पाई जाती है। भारतेन्दु जी के बहुत से पद्य ऐसे हैं, उनकी गंगा स्तुति का एक पद्य सोलह चरणों का है-वह आरम्भ यों होता है-"ब्रह्म द्रव भूत आनन्द मन्दाकिनी अलकनन्दे सुकृति कृति विपाके"। यदि इस प्रकार की कविता होती है, और आद्योपान्त संस्कृत शब्दमयी होनेपर भी ब्रजभाषा की कविता समझी जाती है, तो खड़ी बोली में रचे गये इस प्रकार के कतिपय पद्य खड़ी बोली के पद्य क्यों न माने जावेंगे? यदि ऐसे पद्यों को लेकर वितण्डावाद किया जावे तो अधिकांश वर्तमान हिन्दी गद्य भी खड़ी बोली का नहीं माना जावेगा।

दूसरी बात यह कि खड़ी बोली की कविता में ब्रजभाषा के शब्द मिला कर खिचड़ी पकाई जाती है, खिचड़ी बड़ी मीठी होती है, क्या बुरा किया जाता है? कौन ब्रजभाषा का कवि है, जिसकी कविता बुन्देलखण्डी शब्दों से बची है, कविवर बिहारीलाल की मधुमयी कविता उससे मामूर है, क्या इन लोगों की कविता ब्रज-भाषा की कविता नहीं मानी जाती? गोस्वामीजी की अद्भुत रामायण में अनेक प्रान्तों के शब्द हैं, अवधी को वह आकर है, ब्रजभाषा भूषित है, बुन्देलखण्डी से अलंकृत है, भोजपुरी से भावमयी है, क्या यह दूषण है, यह तो भूषण ही माना गया है—भाषामर्म्मज्ञ भिखारी दास कहते हैं—

तुलसी गंग दोऊ भये सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥

देखिये, सहृदया 'ताज' की यह कई भाषामयी कविता कितनी मधुर है—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हूँ भुलानी तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूँगी मैं॥
साँवला सलोना सिर ताज सिर कुल्ले दिये तेरे नेह दाग में निदाग हो दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबानी तांड़ी सूरत पै ताँड़ नाल प्यारे हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं॥

मेरी इन बातों से आप लोग यह न समझें कि मैं खड़ी बोली की कविता में व्रजभाषा शब्दों के अबाध व्यवहार का पक्षपाती हूं। नहीं यह मेरा विचार कदापि नहीं है, ऐसी अवस्था में खड़ी बोली की कविता की उपयोगिता ही क्या रह जायगी, वह तो पहचानी भी न जा सकेगी। मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि व्रजभाषा के उपर्युक्त और सुन्दर शब्द यदि कहीं प्रयुक्त होकर कविता को कवित्वमय कर देते हैं, तो उसका ग्रहण कर लेना भावुकता है। कवि सौन्दर्य का उपासक, भाव का भूखा, रस का रसिक, प्रसाद का प्रेमिक, और सरलता को सेवक है, अतएव इनके साधनों को साध्य बनाना ही उसका धर्म है—अन्यथा कवि कर्म्म कवि कर्म्म न रह जावेगा।

मुख्यतः क्रिया ही खड़ी बोली को व्रजभाषा से पृथक् करती है, अतएव व्रजभाषा क्रिया का प्रयोग खड़ीबोली में कदापि न होना चाहिये। किसी उपयुक्त अवसर पर, संकीर्ण स्थल पर अनुप्रास के लिये यदि व्रजभाषा क्रिया का प्रयोग संगत जान पड़े तो मेरा विचार है कि वहां उसका प्रयोग हो सकता है, किन्तु उसी अवस्था में जब उसे खड़ी बोली की क्रिया का रूप दे दिया जावे। उस शब्द योजना और वाक्य विन्यास को जो कि व्रजभाषा प्रणाली से प्रस्तुत है, खड़ी बोली में ग्रहण करना उचित नहीं, क्योंकि इससे खड़ी बोली व्रज-भाषा का प्रतिरूप बन जावेगी। हिन्दी भाषा की दो मूर्तियां हैं, एक खड़ी बोली और दूसरी व्रज-भाषा, अतएव उनके परस्पर सम्बन्ध की रक्षा न्यायानुमोदित है, अन्य भाषा के शब्दों से खड़ी बोली पर व्रज-भाषा का विशेष स्वत्व है, इसलिए उसका बिलकुल बायकाट बिडम्बना है। उर्दू के कवि अब तक व्रज-भाषा शब्दों का आदर करते हैं, फिर खड़ी बोली के कवि उसका अनादर क्यों करें, हां, उनको समधिक संयत होना चाहिये। उर्दू के वे अशआर प्रमाण स्वरूप नीचे लिखे जाते हैं—जिनमें व्रज-भाषा शब्दों का प्रयोग हुआ है-ऐसे शब्द बड़े अक्षरों में दिये गये हैं—

सुबह गुज़री शाम होने आई मीर ।
तू न चेता और बहुत दिन कम रहा ॥ मीर

हाय ! क्या चीज़ ग़रीबुल वतनी होती है ।
बैठ जाता हूं जहां छांव घनी होती है । हाफ़िज़

कमसिनी है तो ज़िदें भी है निराली उनकी ।
इस पै मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखेंगे ॥ फ़साहत

जग में आकर इधर उधर देखा ।
तूही आया नज़र जिधर देखा ॥ मीर दर्द

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलसिता हमारा । अक़बाल

शुद्ध शब्दों के प्रयोग के विषय में मुझ को इतना ही कहना है कि यह प्रवृत्ति बहुत अच्छी है, इसने खड़ी बोली के कवियों को च्युति दोष और शब्दों के तोड़ मरोड़ से बहुत बचाया है—जहां व्रजभाषा में इस दोष की भर मार है—वहां खड़ी बोलचाल की कविता इससे सुरक्षित है । अतएव इस अंश में आक्षेप मान्य नहीं परन्तु इसका दूसरा पहलू भी है, इसलिये इधर समुचित दृष्टि होनी आवश्यक है । वह यह कि—खड़ी बोली के कुछ कवियों को शुद्ध शब्द प्रयोग का नशा सा हो गया है--और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे कविता में कर्कशता आ गई है । यदि अक्ष के बजाय आंख, कर्ण के स्थान पर कान, दन्त के स्थान पर दाँत, जिह्वा के स्थान पर जीभ, ओष्ठ की जगह ओठ या होंठ लिखना ठीक है, तो मुख के स्थान पर मुंह, आशा के स्थान पर आस, वेश के स्थान पर भेस, यश के स्थान पर जस, विष के स्थान पर बिख लिखना भी ठीक है-दोनों प्रकार के शब्द ही अपभ्रंश शब्द हैं, इसी प्रकार के और बहुत से शब्द बतलाये जा सकते हैं । चाहिये यह कि अपभ्रंश शब्दों के व्यवहार के लिये परस्पर कलह न करें-प्रयोग करने न करने के लिये सब स्वतंत्र हैं । किन्तु यह आग्रह उचित नहीं कि हम प्रयोग करेंगे तो शुद्ध शब्द का ही प्रयोग करेंगे, इसका यह परिणाम होगा कि आँख, कान इत्यादि के स्थान पर अक्ष और कर्ण इत्यादि लिखे

जाने लगेंगे, भाषा कृत्रिम हो जावेगी और हिन्दी का हिन्दीपन लोप हो जावेगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी भाषा की जननी अपभ्रंश भाषा है, हिन्दी की प्रशंसा इसी लिये है कि वह तद्भव शब्दों द्वारा सुगठित है--जिस दिन उसके आधार तत्सम शब्द हो जावेंगे, उसी दिन वह अपना स्वरूप खोकर अन्तर्हित हो जावेगी। नियम यह होना चाहिये कि प्रयोग आवश्यकतानुसार तद्भव और तत्सम दोनों प्रकार के शब्दों का हो, किन्तु प्रधानता तद्भव शब्दों को दी जावे। संस्कृत के विद्वान् भी तद्भव शब्दों का प्रयोग करते देखे जाते हैं, शुद्ध शब्दों का प्रयोग तो वे करते ही हैं। हम लोगों को भी उन्हीं का पदानुसरण करना चाहिये। कुछ ऐसे प्रयोग दिखलाये जाते हैं। शुद्ध शब्द क्षुर है। अपभ्रंश उसका खुर है, इसी प्रकार प्रियाल शब्द शुद्ध, और पियाल अपभ्रंश है, कविकुलगुरु कालिदास रघुवंश के "तस्याखुरन्यास पवित्र पांशुम्" और कुमार सम्भव के "मृगाः पियाल द्रुम मंजरीणाम्" वाक्यों में 'खुर' और 'पियाल' का प्रयोग पाये जाते हैं।

अब रही कवितागत लालित्य और सौंदर्य्य इत्यादि की बातें इस विषय में मेरा इतना ही निवेदन है कि क्या श्रुतिधर श्रीमान् पंडित श्रीधर पाठक के भारत गीतमें भारतीयता का राग नहीं है? क्या शुभङ्कर श्रीमान् पंडित नाथूराम शंकर शर्मा की रचनाओं में रचनाचातुरी दृष्टि गत नहीं होती? क्या विद्वद्वर श्रीमान् पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के वाग्विलास में विद्वत्ता नहीं बिलसती? क्या ललितकण्ठ श्रीमान् लाला भगवानदीन गुले लाला अथवा गुल्लाला नहीं खिलाते? क्या काव्य विनोद श्रीमान् पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय की वर वचनावली विविधि विनोदमयी नहीं होती? क्या रामचरित चिन्तामणिकार श्रीमान् पंडित रामचरित उपाध्याय की कृति में चारु चरित चित्रण नहीं होता? क्या निरूपणपटु श्रीमान् पंडित रूपनारायण पाण्डेय की रूपकपटुता अनुरूप नहीं होती? क्या भारत भारतीकार श्रीमान् बाबू मैथलीशरण गुप्त की भारती विविध भाव भरित नहीं पाई जाती? क्या शङ्कर नगर

निवासी श्रीमान् बाबू जयशङ्कर प्रसाद की कविता के प्रसादमयी होनेमें सन्देह है ? क्या स्नेहभाजन श्रीमान् पंडित गयाप्रसाद सनेही को सुलेखनी सरलता के साथ नहीं सरसती ? क्या पवित्रात्मा भारतीय आत्मा की अनूठी उक्ति आत्म-विस्मृति-कारिणी नहीं होती ? क्या परम सहृदय भारतीय हृदय का कवित्व हृदय विभक्त नहीं करता ? क्या रमणीय मानस श्रीमान् पंडित रामनरेश त्रिपाठी की मानसिकता में नव रसमयी रसिकता नहीं मिलती ? क्या हृदयवान् सुकवि श्रीमान् पंडित गोकुलचन्द्र की चारुचित्तता अरोचकता को अर्द्धचन्द्र नहीं देती ? इसका उत्तर सहृदय हृदय दे; मैं इतना ही कहूंगा कि इन सज्जनों की रचनायें रुचिर हैं। यदि यह समय उनके अनुकूल नहीं है तो कोई अनुकूल समय भी आवेगा। एक समय था जब भावुकवर भवभूति को यह कहना पड़ा था—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां, जानन्तु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेस्ति मम कोपि समान धर्म्मा, कालोह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी ॥

किन्तु बाद को वह समय भी आया जब वह इन शब्दों में स्मरण किये गये।

"कारुण्यं भवभूति रेव तनुते" अथवा—
भवभूतेः संबंधाद् भूधर भूरेव भारती भाति।
एतत्कृत कारुण्ये किमिन्यथा रोदिति ग्रावा ॥

क्या हिन्दी उर्दू में भेद है ?

हिन्दी शब्द उच्चारण करते ही हृदय उत्फुल्ल हो जाता है, और नस नस में आनन्द की धारा बहने लगती है। यह बड़ा प्यारा नाम है। कहा जाता है—इस नाम में घृणा और अपमान का भाव भरा हुआ है, परन्तु जी इसको स्वीकार नहीं करता। हिन्दू शब्द से हिन्दी का सम्बन्ध नहीं है, वरन् हिन्द शब्द उसका जनक है—हिन्द शब्द देशपरक है और भारतवर्ष का पर्य्यायवाची है। यदि हिन्दू शब्द से ही उसका सम्बन्ध माना जावे तो भी अप्रियता की कोई बात नहीं—आज दिन हिन्दू नाम ही इक्कीस करोड़ संख्या का सम्मि-

लन सूत्र है, यह नाम ही ब्राह्मण से लेकर अस्पृश्य जाति के पुरुष तक को एक बंधन में बांधता है। आर्य्य नाम उतना व्यापक नहीं है, जितना हिन्दू नाम। यह कभी विष रहा हो पर अब अमृत है। वह पुण्यसलिला सुरसरी जल विधौत, सप्त पुरी पावन रज कण पूत और पुनीत वेद मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित है, क्या अभी इस में अपावनता मौजूद है ? इतना निराकरण के लिये कहा गया, इस विषय में मेरा दूसरा सिद्धांत है। यह सत्य है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों अथवा पुराणों में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं है, यह सत्य है कि मेरुतंत्र का "हीनश्च दूषयेत्वेव हिन्दु रित्युच्यते प्रिये" और शिव रहस्य का "हिन्दू धर्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे" आधुनिक श्लोक खण्ड हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि विजेता मुसलमानों ने बलपूर्वक हिन्दुओं से हिन्दू नाम स्वीकार नहीं कराया। यदि बलात् यह नाम स्वीकार कराया गया होता, तो चन्दबरदायी ऐसा स्वधर्म्माभिमानी अब से सात सौ बरस पहले अपने निम्नलिखित पद्य में 'हिन्दुवान' शब्द का प्रयोग न करता।

"हिन्दुवान रान भय भान मुख गहिय तेग चहुआन जब।"

वास्तव बात यह है कि फ़ारस निवासी चिरकाल से भारत को हिन्द कहते आये हैं। अब से लगभग पांच सहस्र वर्ष की पुरानी पुस्तक ज़िन्दावस्ता में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है—उसकी १६३वीं आयत यह है—

'चूं व्यास हिन्दी बलख आमद गुस्तास्प जरतुश्तरा बख्वांद'॥

यह हिन्द नाम सिंधु के सम्बन्ध से पड़ा है, क्योंकि फ़ारसी में हमारा 'स' 'ह' हो जाता है—जैसे सप्त से हप्त बना, वैसे ही सिंध से हिंध, अथवा हिन्द बना है, और इसी हिन्द शब्द से हिन्दू शब्द की वैसे ही उत्पत्ति है—जैसे इण्डस से इण्डिया और इण्डियन की। जब मुसलमान जाति भारत में विजेता बनकर आई तो वह यहां के निवासियों को इसी प्राचीन नाम से ही पुकारती रही, अतएव उसके संसर्ग और प्रभाव से यह शब्द व्यापक और सर्व साधारण में गृहीत हो गया। इस सीधी और वास्तविक बात को

स्वीकार न करके यह कहना कि हिन्दू माने काफ़िर के हैं अतएव बलात् यह नाम हिन्दुओं से स्वीकार कराया गया अनुचित और असंगत है। एक उस्ताद का शेर है—

न हिन्दुअम न मुसलमां न काफ़िरम न यहूद।
व हैरतम कि सरंजामे मन चे ख़ा हद बूद ॥

यदि हिन्दू और काफ़िर पर्य्यायवाची शब्द होते तो इस शेर में हिन्दू और काफ़िर का अलग अलग प्रयोग न होता, क्योंकि यह पुनरुक्ति है।

उर्दू हिन्दी का रूपान्तर है। जिस समय विजेता मुसलमान भारत में आये, उस समय दिल्ली के आस पास खड़ी बोलचाल की हिन्दी का प्रचार था, अतएव अनेक कार्य्य सूत्र से बहुत से अरबी फ़ारसी और तुर्की के शब्द हिन्दी में मिल गये—यही उर्दू है। यदि अन्य भाषा के शब्द सम्मिलित होने से नाम बदल जाता है, तो फ़ारसी अंगरेज़ी आदि बहुत सी भाषाओं का नाम बदल जाना चाहिये। फ़ारसी में अरबी, तुर्की के इतने अधिक शब्द मिल गये हैं कि उतने शब्द आज भी हिन्दी में इन भाषाओं अथवा फ़ारसी के नहीं मिले। फिर क्यों फ़ारसी फ़ारसी कहीं जाती है, और हिन्दी उर्दू कहलाने लगी? फ़ारस के विख्यात महाकवि फिर्दौसी ने अपने शाहनामे में एक स्थान पर लिखा है—'फ़लक गुफ्त अहसन मलक गुफ्त ज़ेह'। अहसन और ज़ेह अरबी शब्द हैं—अतएव उनसे प्रश्न हुआ कि आपने कुल किताब तो ख़ालिस फ़ारसी में लिखी, इस शेर में दो अरबी के शब्द कैसे आ गये, उन्होंने कहा "फ़लक व मलक गुफ़्त न मन गुफ़्त"। कहाँ यह भाव, कहाँ यह कि एक तिहाई से अधिक अरबी शब्द फ़ारसी में दाख़िल हो गये, तो भी फ़ारसी का नाम फ़ारसी ही रहा। उर्दू भाषा की प्रकृति आज भी हिन्दी है, व्याकरण उसका आज भी हिन्दी प्रणाली में ढला है, उसमें जो फ़ारसी मुहाविरे दाख़िल हुये हैं वे सब हिन्दी के रंग में रँगे हैं, फ़ारसी के अनेक शब्द हिन्दी के रूप में आकर उर्दू की क्रिया बन गये हैं, एक बचन शब्द बहुधा हिन्दी रूप में बहु बचन होते हैं,

फिर उर्दू हिन्दी क्यों नहीं है ? यदि कहा जावे कि फ़ारसी, अरबी और संस्कृत शब्दों के न्यूनाधिक्य से ही उर्दू हिन्दी का भेद स्थापित होता है—तो यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अनेक उर्दू शायरों का बिल्कुल हिन्दी से लबरेज़ शेर उर्दू माना जाता है—और अनेक हिन्दी कवियों का फ़ारसी और अरबी से लबालब भरा पद्य हिन्दी माना जाता है--कुछ प्रमाण लीजिये—

तुम मेरे पास होते हो गोया । जब कोई दूसरा नहीं होता ।

मोमिन

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे ।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे ।

ज़ौक़

लटों में कभी दिल को लटका दिया ।
कभी साथ वालों के झटका दिया ।

मीर हसन

न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो ख़ुदा होता ।
डुबाया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता ।

ग़ालिब

हिन्दी भरी कविता आपने उर्दू की देख ली । अब अरबी फ़ारसी भरी हिन्दी कविता देखिये—

पजनेस तसद्दुक़र्त्ता बिसमिल जुल्फ़ें फुरकत न क़बूल कसे ।
महबूब चुना मद मस्त सनम अज़ दस्त अला वल जुल्फ बसे ।

पजनेस .

जेहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक ।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेवाँ चाक ॥

रसनिधि

यों तिय गोल कपोल पर परी छूटि लट साफ़ ।
खुश नवीस मुन्शी मदन लिख्यो कांच पर क़ाफ़ ॥

शृंगार सरोज

मैं यहां कुछ अंग्रेज़ और भारतीय विद्वानों की सम्मति भी उठाना चाहता हूं—आप लोग देखें, वे क्या कहते हैं—

"उर्दू का व्याकरण ठीक हिन्दी व्याकरण से मिलता है, उर्दू हिन्दी से भिन्न नहीं है"।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र

The Grammr of Urdu is unmistakably the same as that of Hindi, and it must follow there-fore that the Urdu is a Hindi and an Aryan dialect.

उर्दू के बड़े प्रसिद्ध कवि वली और सौदा की भाषा तथा हिन्दी के अति प्रसिद्ध कवि तुलसीदास और बिहारीलाल की भाषा में कुछ अन्तर नहीं है, दोनों ही आर्य्य भाषा है। इस लिये हिन्दी और उर्दू को अलग मानना बड़ी भारी भूल है। "

मिस्टर बीम्स

...Such words. however, in no way altered or influenced the language itself, which, when its inflectional or phoneetic elements are considered, remains still a pure Aryan dialect, just as pure in the pages of Wali and Souda, as it is in those of Tulsidas or Biharilal. It betrays, there-fore, a radical misunderstanding of the whole learnings of the question and of whole Science of Philology to speak of Urdu and Hindi as two distinct languages.

"जो भाषा आज हिन्दुस्तानी कहलाती है, उसी का नाम हिन्दी उर्दू और रेखता भी है। इसमें अरबी, फ़ारसी, संस्कृत वा भाषा के शब्द हैं।

डाक्टर गिल क्राइस्ट

The language...at present best known as the Hinustanee, is also frequently denominated Hindi, Urdu and Rekhata. It is compouded of the Arabic, Persian

and Sankrit, or Bhasha which last appears to have been in former ages the current language of Hindustan.

जो कुछ मैंने ऊपर दिखलाया, उससे पाया गया कि हिन्दी उर्दू में कोई ऐसा भेद नहीं है जो दोनों को अलग करता हो—वास्तव में उर्दू हिन्दी ही है। यह अपनी अपनी इच्छा है कि कोई किसी को उर्दू कहे और कोई किसी को हिन्दी। मैंने जो कुछ प्रतिपादन किया है उसका उद्देश यह नहीं कि किसी नाम का बायकाट किया जावे—वरन् उद्देश यह है कि विभेद नीति का उन्मूलन हो। एक ही भाषा जब दो नामों से पुकारी जाती है, तब उसके विषय में परस्पर कलह वांछनीय नहीं। जिसकी इच्छा हो वह उसे संस्कृतगर्भित लिखे, जिसकी इच्छा हो उसमें फ़ारसी अरबी के शब्दों का प्रयोग करे—किन्तु यह समझता रहे कि दोनों भाषाएँ एक हैं। यदि दोनों नामों के स्थान पर हिन्दुस्तानी नाम रख लिया जावे, तो और अच्छा, यदि कोई भाषा भी ऐसी निकल आवे, जो हिन्दुस्तानी नाम का विभेद मिटा कर सार्थक करे तो सोने में सुगन्ध—हिन्दुस्तानी और हिन्दी वास्तव में दोनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं।

यह आशा करना कि उर्दू कविता मुसलमानों के और हिन्दी कविता हिन्दुओं के धार्मिक भावों का दर्पण न हो, विडम्बना है। इस बात का उद्योग करना कि हिन्दू और मुसलमान अपने अपने महापुरुषों, शूरवीरों, देश प्रेमिकों, कर्णधारों, महात्माओं, जीवन दाताओं के आदर्शों का उल्लेख न करें, उनका स्मरण करके उन पर भक्ति-पुष्पाञ्जलि न चढ़ावें, पागलपन है। जो सभ्यता किसी जाति की जीवन सामग्री है वह अनादृत नहीं हो सकती। जो उदाहरण, उपाख्यान जाति-संगठन के साधन हैं उनसे जीती-जागती जाति मुख नहीं मोड़ सकती। अतएव इन बातों को लेकर हिन्दी उर्दू के भेद राग अलापना उचित नहीं। मानवता का आदर्श, जातीयता का मन्त्र, देश प्रेम का पाठ, सत्यता का महत्व, सहृदयता का सूत्र, दोनों साहित्यों में ही मिलेगा। हमारी एकतानुरागिणी दृष्टि उसी पर होनी चाहिये। साहित्यगत न्यूनताएं और विशेषताएं दोनों में

उपयोगी विषयों का आदान प्रदान दोनों का दोनों के साथ होना चाहिये । फूल चुनना दोनों का काम है, काँटों से उलझना उलझन है।

उर्दू का साहित्य बड़ा सुन्दर है, उसकी नाज़ुक ख़्याली, तराश ख़राश, बन्दिश, उसका महाविरा, मुबालिग़ा इस्तेआरा मारके का है। हिन्दी भाषा के कवियों को मुख्यतः खड़ीबोली की कविता करनेवालों को उन्हें देखना चाहिये। वे बड़े काम की चीज़ें हैं, उनसे बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है—उनकी रंगत में रंग कर हम अपनी कविता की रंगतें कुछ और की और कर दे सकते हैं। महाविरों का सुन्दर और सार्थक प्रयोग करने में उर्दू वालों का कमाल है, हम लोग इस बारे में बे तरह ठोकरें खाते हैं। हमारी यह कमी पूरी हो सकती है, यदि कम से कम हम उर्दू से प्रेम करना सीख जायें। उर्दू अशआरों की चासनी अक्सर हिन्दी लेखकों के लेखों पर चढ़ी रहती है, क्यों ? इसलिये कि उनको पढ़कर दिल में गुदगुदी ही नहीं पैदा होती ज़बान भी चटख़ारे भरने लगती है, मौक़े पर हृदय के भावों के प्रकट करने में भी वे कमाल रखते हैं । क्या ये साधारण गुण हैं ? हमें इन्हें ग्रहण करना चाहिये । बहुत कुछ कहना है, किन्तु स्थान का संकोच है—चन्द चुने अशआर सुन लीजिये—

यह तसवीर चेहरा उतर क्यों रहा है ।
खिचे किससे हो क्या है नक़शा तुम्हारा ॥ नसीम

दिल के फफोले जल उठे सीना के दाग़ से ।
इस घर में आग लग गई घर के चिराग़ से ।

वह शब को मेरी क़ब्र पै क्या चाल चल गये ।
सदहा चिराग़ नक़शे क़दम पासे जल गये ॥ फसाहत

पड़े हैं सूरते नक़शे क़दम न छेड़ो हमें ।
हम और ख़ाक में मिल जायेंगे उठाने से ॥

यह मजनूं है नहीं आहू है लैला ।
पहन कर पोस्तीं निकला है घर से ॥

जिसे तू सींग समझे है, यह हैं खार।
लगे हैं पांव में निकले हैं सर से। नसीर

हिन्दी सादगी में लासानी है, इस बारे में उर्दू उस से बहुत कुछ सीख सकती है। उर्दू हिन्दी नज़ाद है, मगर फ़रियाद यह है कि वह तर्ज़ मआशिरत फ़ारस का दिलदादः है—क्या हिन्दुस्तान वतने मालूफ नहीं ? हिन्दी इस रंग में शराबोर है, उर्दू को देखना चाहिये कि इस रंगत में कुछ नैरंगियां हैं या नहीं ? उर्दू के साक़ी व पैमाना, बुलबुल व कुमरी, सरो व शमशाद, शमा व फ़ानूस, जवानाने चमन व उरूसाने गुलशन, नरगिस व सम्बुल, फ़रहाद व मजनूं, मानी व बहज़ाद, ज़बाने सुराही व ख़न्दये कुलकुल वग़ैरा: सरमायये नाज़ हैं—आम तौर से वह इन्हीं पर फ़िदा है, शाज़ व नादिर की बात दूसरी है। हज़रत आज़ाद इन्हीं की तरफ़ इशारा करके फ़रमाते हैं- "इनमें बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो ख़ास फ़ारिस और तुर्किस्तान के मुल्कों से तबयी और ज़ाती तअल्लुक़ रखती हैं, इसके अलावा बाज़ ख़यालात में अकसर उन दास्तानों या क़िस्सों के इशारे भी आ गये हैं, जो ख़ास मुल्क फ़ारस से इलाक़ा रखते हैं" "इन ख़यालों ने और वहाँ की तशबीहों ने इस क़दर ज़ोर पकड़ा कि उनके मशाबेह जो यहाँ की बातें थीं, उन्हें बिल्कुल मिटा दिया" क्या इसकी तलाफ़ी न होनी चाहिये, इसपर इन्शा परदाज़ाने उर्दू अगर मुनासिब समझें ग़ौर फरमावें। मैं चन्द उर्दू हिन्दी नज़में मौसिमे बहार की दर्ज ज़ैल करता हूं। उनको बाहम मिलाकर ख़यालात की कसौटी पर कसना चाहिये। बाद को इल्तिजा अगर हक़ बजानिब हो मंजूर की जावे।

करे है वा लबे गुंचा दरे हज़ार सख़ुन।
चमन में मौजे तबस्सुम की खोलकर ज़न्जीर।
कुछ इनबिसात हवाये चमन से दूर नहीं।
जो वाहो गुंचये मिनक़ार बुलबुले तसवीर।
असर से बादे बहारी के लहलहाते हैं।
ज़मीं पै हम सरे सुम्बुल हैं मौजे नक़्शे हसीर॥ ज़ौक॥

हैं सभी पेड़ कोंपलों से पुर। है नया रस गया सबों में भर।
आम सिरमौर बन गया सबका। मौर का मौर बाँधकर सिर पर।
पेड़ प्यारे पलास सेमल के। फूल पा लाल, लाल लाल हुये।
हैं बहुत ही लुभावने लगते। लाल दल से लसे हुए महुए।
है लुनाई बड़ी लताओं पर। है चटकदार रँग चढ़ा गहरा।
लह बड़े ही लुभावने पत्ते। लहलही बेलि है रही लहरा।
गूंजते गूंजते उमग में आ। हैं बहुत चौंक चौंक कर अड़ते।
चाव से चूम चूम कलियों को। मनचले भौंर हैं मचल पड़ते।
पा गये पर बहार सा मौसिम। क्यों न अपनी बहार दिखला लें।
लहलही बेलि चहचहे खग के। डह डहे पेड़ डह डही डालें।

साहित्य

"सहितस्य भावः साहित्यं" जिसमें सहित का भाव हो उसे साहित्य कहते हैं। कुछ और सम्मतियां भी साहित्य के विषय में सुनिये।

"परस्पर सापेक्षाणाम् तुल्य रूपाणाम् युगपदेक क्रियान्वयित्वम् साहित्यम्।" श्राद्ध विवेक

"तुल्यवदेक क्रियान्वयित्वं बुद्धि विशेष विषयित्वं वा साहित्यम्।" शब्द शक्ति प्रकाशिका

'मनुष्य कृत श्लोक मय ग्रन्थ विशेषः साहित्यम्"।

शब्द कल्पद्रुम

सहृदय विद्वान् श्रीमान् पण्डित राम दहिन मिश्र काव्य तीर्थ ने साहित्य का विलक्षण अर्थ किया है, वे कहते हैं—

"जो हित के साथ वर्त्तमान है वह हुआ सहित और उसका जो भाव है वही हुआ साहित्य, अर्थात् जो हमारे हितकारी भाव हैं वे ही साहित्य हैं।" साहित्य मीमांसा।

कवीन्द्र रवीन्द्र कहते हैं "सहित शब्द से साहित्य शब्द की उत्पत्ति है, अतएव धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में एक मिलन का भाव दृष्टिगत होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ मिलन है, यही नहीं, वरन् वह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का,

अतीत के साथ वर्त्तमान का, दूरके सहित निकटका, अत्यन्त अन्त-रंग योग साधन साहित्य व्यतीत और किसी के द्वारा सम्भवपर नहीं। जिस देश में साहित्य का अभाव है, उस देश के लोग परस्पर सजीव बन्धन से बंधे नहीं, विच्छिन्न होते हैं।" साहित्य

श्राद्धविवेक और शब्द शक्ति प्रकाशिका ने साहित्य की जो व्याख्या की है, कवीन्द्र का कथन एक प्रकार से उसकी टीका है, वह व्यापक और उदात्त है। कुछ लोगों का विचार है कि साहित्य शब्द काव्य के अर्थ में रूढ़ि है—शब्द कल्पद्रुम की कल्पना कुछ ऐसी ही है, परन्तु ऊपर की शेष परिभाषाओं और अवतरणों से यह विचार एक देशी पाया जाता है। साहित्य शब्द का जो शाब्दिक अर्थ है, वह स्वयं बहुत व्यापक है, उसको संकुचित अर्थ में ग्रहण करना संगत नहीं। साहित्य समाज का जीवन है, वह उसके उत्थान पतन का साधन है, साहित्य के उन्नत होने से उन्नत, उसके पतन से समाज पतित होता है। साहित्य वह आलोक है जो देश को अन्धकार रहित, जाति-मुख को उज्ज्वल, और समाज के प्रभा-हीन नेत्रों को सप्रभ रखता है। वह सबल जाति का बल, सजीव जाति का जीवन, उत्साहित जाति का उत्साह, पराक्रमी जाति का पराक्रम, अध्यवसायशील जाति का अध्यवसाय, साहसी जाति का साहस, और कर्तव्यपरायण जाति का कर्तव्य है।

वह धर्म भाव जो भव भावनाओं का विभव है, वह ज्ञान गरिमा जो गौरव कामुक को सगौरव करती है, वह विचार-परम्परा जो विचार शीलता की शिला है, वह धारणा जो धरणी में सजीव जीव धारण का आधार है, वह प्रतिभा जो अलौकिक प्रतिभा से प्रति-भासित हो पतितों को उठाती है, लोचन हीन को लोचन देती है और निरवलम्ब का अवलम्बन होती है। वह कविता जो सूक्ति समूह की प्रसविता हो संसार सारवत्ता बतलाती है, वह कल्पना जो कामद कल्पलतिका बन सुधाफल फलाती है, वह रचना जो रुचिर रुचि सहचरी है, वह ध्वनि जो स्वर्गीय ध्वनि से देश को ध्वनित बनाती है। वह सजीवता जो निर्जीवता संजीवनी है, वह

साधना जो समस्त सिद्धि का साधन है, वह चातुरी जो चतुर्वर्ग जननी है, वह चारु चरितावली जो जाति चेतना और चेतावनी की परिचालिका है—जब हमारे साहित्य का सर्वस्व थी, उस समय हम पर पवित्र वेदों का आविर्भाव हुआ, हमने अनुपम उपनिषदों की रचना की, दर्शनों के दर्शन कराये, सूत्रों को रचकर समाज को एक सूत्र में बांधा, आदर्श चरित के आदर्श रमणीक वाल्मीक रामायण को बनाया, और अशेष ज्ञान भाण्डार महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ को निर्मित कर भारत का मुख उज्ज्वल किया।

हमारे त्रिदेवों में त्रिलोकपति की सृजन, पालन, संहार सम्बन्धिनी त्रिशक्ति का अद्भुत विकास है। ब्रह्मदेव चतुर्मुख अथवा चतुर्वेद रचयिता, ललाट फलक लिपि विधाता, और समस्त विधि विधान सर्वस्व हैं। उनकी शक्ति वीणा झङ्कार जीवनमृत जीवन संचारिणी, और उनकी वाग्देवी विविध विद्या स्वरूपा है। भगवान् विभु चतुर्भुज हैं, चार हाथों से समस्त लोक का लालन पालन करते हैं, वे क्षीरनिधि निकेतन हैं, इसी लिये स्तनपायी जीव मात्र को प्रति दिन क्षीर पान कराते हैं, वे विश्वम्भर हैं, इसी लिये उनकी विश्वम्भरी शक्ति ब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त का प्रति पल पालन पोषण करती है। भगवान् भूतनाथ की मूर्ति बड़ी भावमयी है, वह बतलाती है, संसार हित के लिये अवसर आने पर गरल पान कर लो, परन्तु जो कुसुमशायक बनकर मर्मवेधी बाण प्रहार करता है उसका संहार अवश्य करो, लोक लाभ के निमित्त आकाश निपतित कठोर जलपात शिर पर वहन करो, पर उरगों की उरगता निवारण करने से मत चूको। शक्ति कितनी ही प्रचण्ड हो, दो क्या उसको दश भुजायें क्यों न हों, परन्तु अपने साधन बल से उसे भी अंग भुक्त किये बिना मत छोड़ो। हमारा साहित्य जब इन मर्म की बातों को मर्म्मभरी भाषा में बतलाता था, और जब हममें उसके समझने की मार्मिकता थी—उस समय हम पृथ्वी को दूहते थे, समुद्र को मथकर चौदह रत्न निकालते थे, पंच भूत पर शासन करते थे, व्योमयानों द्वारा आकाश में उड़ते थे, समुद्र पर पुल बनाते थे, पहाड़ को कानी

उंगली पर नचाते थे, देह होते विदेह थे, राजप्रासाद में रहकर गृह संन्यासी थे, काया कल्प करते थे, और राज त्यागी होकर भी कृपापात्र को राज पद पर प्रतिष्ठित कर देते थे। अध्यात्म शक्ति इतनी प्रबल थी कि असीम पयोधि जल को गण्डूष जल समझते थे, पर्वत को नतमस्तक कर देते थे, और चक्रवर्ती भूपाल के रत्न मण्डित मुकुट को पद रज द्वारा आरंजित बनाते थे।

कहते व्यथा होती है कि कुछ कालोपरांत हमारे ये दिन नहीं रहे—हममें प्रतिकूल परिवर्त्तन हुए और हमारे साहित्य में केवल शांत और श्रृंगार रस की धारा प्रबल वेगसे बहने लगी। शान्त रस की धारा ने हमको आवश्यकता से अधिक शांत और उसके संसार की असारता के राग ने हमें सर्वथा सारहीन बना दिया। श्रृंगार रस की धारा ने भी हमारा अल्प अपकार नहीं किया, उसने भी हमें कामिनी कुल श्रृंगार का लोलुप बनाकर समुन्नति के समुच्च श्रृंग से अवनति के विशाल गर्त्त में गिरा दिया। इस समय हम अपनी किंकर्तव्य विमूढ़ता, अकर्मण्यता, अकार्य्यपटुता को साधुता के परदे में छिपाने लगे—और हमारी विलासिता, इन्द्रिय परायणता, मानसिक मलिनता, भक्ति के रूप में प्रकट होने लगी। इधर निराकार की निराकारता में रत होकर कितने सब प्रकार बेकार हो गये, उधर आराध्य देव भगवान् वासुदेव और परम आराधनीया श्रीमती राधिका देवी की आराधना के बहाने पावन प्रेम पंथ कलंकित होने लगा। न तो लोकपावन भगवान श्रीकृष्ण लौकिक प्रेम के प्रेमिक हैं, न तो बंदनीया वृषभानुनन्दिनी कामनामयी प्रेमिका, न तो भुवन अभिराम वृन्दावन धाम अबैध विलास वसुंधरा है, न कल कल वाहिनी कलिन्द-नन्दिनी-कूल काम केलि का स्थान। किन्तु अनधिकारी हाथों में पड़कर वे वैसे ही चित्रित किये गये हैं। कतिपय महात्माओं और भावुक जनों को छोड़ कर अधिकांश ऐसे अनधिकारी ही हैं, और इसी लिये उनकी रचनाओं से जनता पथच्युत हुई। केहरि-पत्नी के दुग्ध का अधिकारी स्वर्ण पात्र है, अन्य पात्र इसको पाकर अपनी अपात्रता प्रकट करेगा। मध्यकाल

से लेकर इस शताब्दी के आरम्भ तक का हिन्दी-साहित्य उठाकर आप देखें, वह केवल विलास का क्रीड़ा क्षेत्र और काम वासनाओं का उद्गार मात्र है। संतों की बानी और कतिपय दूसरे ग्रन्थ अवश्य इसके अपवाद हैं। ऐसा ग्रन्थ जो हिन्दू जाति का जीवन सर्वस्व, उन्नायक, और कल्पतरु है, जो आदर्श चरित का भाण्डार, और सद्भाव रत्नों का रत्नागार है, जो आज दश करोड़ से भी अधिक हिन्दुओं का सत्पथ प्रदर्शक है, यदि है तो रामचरित मानस है, और वह गोस्वामी जी के महान् तप का फल है। कुछ ग्रंथ हिन्दी भाषा में नीति और सद्विचार सम्बन्धी और हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

न वह साहित्य साहित्य है, न वह कल्पना कल्पना जिसमें जातीय भावों का उद्गार न हो। जिन काव्य, ग्रंथों को पढ़कर जीवनी शक्ति जागरित नहीं होती, निर्जीव धमनियों में गरम रक्त का संचार नहीं होता, हृदय में देश प्रेम-तरंगें तरंगित नहीं होतीं, वे केवल निस्सार वाक्य समूह मात्र हैं। जो भाव देश को, जाति को, समाज को स्वर्गीय विभव से भर देते हैं, उनमें अनिर्वचनीय ज्योति जगा देते हैं, उनको स्वावलम्बी, स्वतंत्र, स्वधर्म्मरत, और स्वकीय कर देते हैं, यदि वे भाव किसी उक्ति की सम्पत्ति नहीं, तो वह मौक्तिक हीन शुक्ति हैं। जिसमें मनुष्य जीवन की जीवन्त सत्ता नहीं, जो प्रकृति के पुण्य पीठ की पीठ नहीं, जिसमें चारु चरित चित्रित नहीं, मानवता का मधुर राग नहीं, सजीवता का सुन्दर स्वांग नहीं, वह कविता सलिलरहित सरिता है। जिसमें सुन्दरता विकसित नहीं, मधुरता मुखरित नहीं, सरसता विलसित नहीं, प्रतिभा प्रतिफलित नहीं, वह कवि रचना कुकवि वचनावली है। जो गद्य अथवा पद्य जाति की आंखें खोलता है, पते की सुना राह पर लगाता है, मर्म्मवेधी बातें कह सावधान बनाता है, चूकें दिखा चौकन्ना करता है, चुटकियां ले सोतों को जगाता है, वह इस योग्य है कि सोने के अक्षरों में लिखा जावे, वह अमृत है जो मरतों को जिलाता है। हिन्दी में ऐसे गद्य पद्य

विरल हैं। उर्दू में कलामे अकबर में यह कमाल नज़र आता है— देखिये—

बे परदा नज़र आईं कल जो चन्द बीबियां।
अकबर ज़मी में गैरते क़ौमी से गड़ गया॥
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ।
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों के पड़ गया॥
पाकर ख़िताब नाच का भी ज़ौक़ हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया॥
हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं॥
किस तरह समझें कि क्या यह फ़िलसफ़ा मरदूद है।
क़ौम ही को देखिये वह मुरदा है मौजूद है।

इस रंग में वा अक़बाल अक़बाल भी अच्छा कहते हैं, उनकी भी दो एक बातें सुन लीजिये।

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा॥
यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाकी नामों निशां हमारा॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा॥

सौभाग्य की बात है कि दृष्टि कोण बदला है, परम कमनीय कलेवरा शृंगार रस की कविता सुन्दरी कवि मानस समुच्च सिंहासन से धीरे धीरे उतर रही है और उस पर लोकोत्तर कान्तिवती जातीय राग रंजिता कविता देवी सादर समासीन हो रही हैं। ललित लीला निकेतन वृन्दावन धाम अब भी विमुग्धकर है, किन्तु सुजला सुफला शस्यश्यामला भारत वसुन्धरा आज दिन अधिक आदरवती है। तरल तरंगमयी तरणि तनया उत्फुल्लकरी है, किन्तु प्रवहमान देश प्रेम पावन प्रवाह समान सर्वप्रिय नहीं। भगवान

मुरली-मनोहर की मधुमयी मुरलिका आज भी मोहती है, मोहती ही रहेगी, किन्तु अब हम उसके माधुर्य्य में देश प्रेम का पुट, ध्वनि में जातीयता की धुन और सुरीलेपन में सजीव स्वर लहरी होने के कामुक हैं। प्रेम-प्रतिमा राधिका देवी की आराधना आज भी होती है, किन्तु पुष्पाञ्जलि अर्पण कर बद्धाञ्जलि हो अब यही प्रार्थना की जाती है, माता तू जिसको हृदयेश्वरी है उससे गम्भीर भाव से कह दे—भारत भूतल फिर भाराक्रान्त है।

प्रिय हिन्दी संसार के उदीयमान कवि वृन्द! हम अत्यन्त लालायित दृष्टि से आज़ आप लोगों का वदनारविन्द अवलोकन कर रहे हैं—हमारे आशा-स्थल आप लोग हैं, हम किस किस का नाम लें, आप लोगों में से अनेक मर्म्मस्पर्शी कविता करनेवाले हैं—आप लोगों का कविता-क्षेत्र में पदार्पण अभिनन्दनीय है। आप लोग मानस नन्दन कानन में विहर कर ऐसे मन्दार कुसुम चयन करें जिसके आमोद से हमारा साहित्य-संसार आमोदित हो जावे, और चिन्तासूत्र में भाव के अनूठे रत्न गुँफित करके वह मनोरम हार प्रस्तुत करें जो भारत माता के गले का अभूतपूर्व अलंकार हो। परमात्मा आप की कल्पना को अलौकिक आलोकमयी, आप की प्रतिभा को देशानुराग-रञ्जिता और आप की कविता को जातीयता ज्योतिष्मती करे, जिससे भारत माता पुत्रवती हो, और आप के कीर्तिकलाप के आलाप से दिगन्त ध्वनित हो उठे।

सम्मेलन

सम्मेलन का अर्थ है किसी उद्देश्य से समान विचारवालों का एकत्रित अथवा सम्मिलित होना। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं इसी प्रकार के अन्य सार्वजनिक कार्य्यों के भली प्रकार सम्पादित और मिलित शक्ति से परिचालित होने के लिये सम्मेलन बहुत अच्छा साधन है। परस्पर विचार परिवर्तन, सहयोग और संसर्ग जनित सहानुभूति का भी वह हेतु है। हमारा आज का सम्मेलन इसका सुन्दर उदाहरण है। चौदह वर्ष के अल्प

काल में उसके प्रभाव का देशव्यापी होना इन्हीं भावों का फल है। साहित्य का व्यापक अर्थ लेकर सब प्रकार के साहित्यसेवी इसमें सम्मिलित होते हैं, यह इसकी सफलता का दूसरा कारण है। मदरास प्रान्त जैसे हिन्दी अपरिचित प्रदेश में, उसका प्रचार करना सम्मेलन का आदर्श कार्य है। उसके सत्कार्य्यों का उल्लेख प्रायः समाचारपत्रों में होता रहता है, और सूत्रों से भी आप लोगों को इस विषय में बहुत कुछ ज्ञात होगा। अतएव मैं केवल अपना वक्तव्य सुनाऊंगा, और वह भी थोड़े में, क्योंकि समय और स्थान दोनों का संकोच है।

हम लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं—बनाना नहीं चाहते, वरन् जो वास्तविक स्वत्व उसका है, वह उसे देना चाहते हैं। परन्तु बहुत से वास्तविक स्वत्व भी योग्यता के अभाव में अप्राप्य ही रह जाते हैं, विकसित होना प्रसून समूह का वास्तविक स्वत्व है, किन्तु विकास-योग्यता की कमी कितनों को अर्द्ध विकसित ही रखती है। यदि हमको राष्ट्रीयता के उच्च मञ्च पर हिन्दी को बिठाना है तो उसे सर्वगुणसम्पन्न बनाना, सुप्रयोग परिजात पुष्प से सजाना, सरलता अलंकार से अलंकृत करना, और सर्व प्रियता के कर कमलों से मान का पान दिलाना होगा। हिन्दी-साहित्य का सब विभाग अभी अधूरा है, परिश्रम करके उसको पूरा करना होगा। पुरातत्त्व, इतिहास, अर्थ शास्त्र, रसायन, विज्ञान, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, प्राणिशास्त्र, उद्भिद् विद्या इत्यादि की ओर अभी पूरी तौर पर दृष्टि भी आकर्षित नहीं हुई है। जिन क्षेत्रों में कार्य्य हो रहा है, उन क्षेत्रों में भी अधिक तत्परता और मनोनिवेश की आवश्यकता है। नाट्य कला, व काव्य कला को जितना समुन्नत होना चाहिये उतना समुन्नत वह आज भी नहीं हुई। हम यूनिवर्सिटियों में हिन्दी को सर्वोच्च कक्षाओं में प्रवेश कराना चाहते हैं—किन्तु क्या वह सर्वांगपूर्ण है? इधर उद्योग हो रहा है, किन्तु और अधिक उद्योग अपेक्षित है।

अंगरेजी बड़ी उन्नत भाषा है, उसका भाण्डार बहुमूल्य है और अशेष रत्न समूह का आकर है। योरोप की कतिपय अन्य भाषाएँ भी श्रीसम्पन्न हैं। भारतीय भाषाओं में संस्कृत, बंग भाषा, मरहठी और गुजराती ने बड़ी उन्नति की है। संस्कृत तो संस्कृत ही है, किन्तु बंग भाषा और मरहठी भी सौभाग्यवती हैं। हम लोगों को चाहिये कि जिस उद्यान से हमको मनोरम कुसुम समूह मिले, वहीं से हम उसे संग्रह करें, जिस भाण्डार से हमको रत्न राजि की प्राप्ति हो, वहीं से हम उसे लें, और उनके द्वारा हिन्दी देवी को अलंकृत करें। हां, मराल समान नीर-क्षीर-विवेकी होना चाहिये, क्षीर के धोखे हम नीर कदापि न ग्रहण करें। मधुकर समान कुसुम-रस-ग्राही हों, किन्तु कंटकों से बचते रहें।

खेद की बात है कि संस्कृत के धुरंधर विद्वान् आज भी हिन्दी भाषा के प्रेमी नहीं हैं, अंगरेज़ी के कृतविद्यों में भी अधिकांश ईर्षा पथ के पथिक हैं। आज भी अनेक हिन्दू संतान उर्दू फ़ारसी के ही एकान्त भक्त हैं, यहां तक कि हिन्दी को अपनी मातृ भाषा भी नहीं मानते। कोई बंगाली, गुजराती, महाराष्ट्र ऐसा न मिलेगा, जो बंगला, गुजराती और मरहठी को अपनी मातृभाषा न मानता हो, किन्तु हमीं लोगों में कुछ ऐसे सज्जन हैं, जिनकी आंखें अब तक नहीं खुली हैं। हमारे राजा महाराजाओं में से अनेक ऐसे हैं, कि जिनकी दृष्टि अब तक इधर नहीं फिरी, यह मर्म्मवेधी व्यथा है। हैदराबाद के अधीश्वर ने वहाँ उर्दू यूनिवर्सिटी खोल दी। वे अनेक उर्दू विद्वानों का समादर करते हैं, केवल उर्दू सेवा के लिये उनको बड़ी बड़ी मासिक वृत्तियां देते हैं। किन्तु इस प्रकार की सेवा हिन्दी देवी की आज तक हमारे किसी महाराज ने नहीं की। अनेक बड़े बड़े धनपात्रों की भी यही दशा है। दृष्टिकोण परिवर्तन की आवश्यकता है। कैसे समुचित दृष्टि इन महानुभावों, और महिपालों की हम हिन्दी देवी की ओर आकर्षित करें—यह एक मार्मिक प्रश्न है।

हिन्दी का प्रचार बहुत कुछ हुआ है। जिस समय मैंने हिन्दी देवी के कमनीय चरण कमल के समीप आसीन होकर उनकी सेवा

आरम्भ की थी, उस समय घोर अंधकार था। कहीं कहीं कोई क्षीण-प्रभ नक्षत्र दृष्टिगत होता था, अथवा किसी विशेष विभाग का तिमिर किसी ज्योतिर्मान तारक द्वारा विदूरित हो रहा था। किन्तु इस समय हिन्दी संसार आलोकमय है, तथापि कहीं कहीं अब भी अंधकार घनीभूत है। वहां भी प्रकाश फैलाने की आवश्यकता है। संस्कृत के जितने विद्यार्थी हैं, उनके लिए दूसरी भाषा की भांति हिन्दी पढ़ना और कालेजों के हिन्दू छात्रों का सेकण्ड लैंगवेज (Second Language) संस्कृत के अभाव में हिन्दी होना आवश्यक है; हिन्दी प्रधान प्रान्तों में नगर नगर नागरी प्रचारिणी सभाओं का खुलना, व्यापार वृत्ति के हिंदुओं का समस्त कार्य हिन्दी भाषा में होना, इस प्रान्त की कचहरियों में अधिक संख्या में हिंदी आवेदनपत्रों का दिया जाना, अथवा दस्तावेज़ों का हिन्दी में लिखा जाना, जनता में हिन्दी उपयोगिता का भाव फैलाना, प्रत्येक नगर अथवा ग्राम के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों में हिन्दी पुस्तकालयों का खोला जाना, हिन्दी भाषा के मासिक पत्रों और समाचार पत्रों को उत्तेजन देना और उनका प्रचार बढ़ाना, हमारा प्रधान कर्तव्य है। यह कर्तव्य कैसे कार्य्य में परिणत हो, यह विषय भी विचारणीय है।

सम्मेलन की दृष्टि इन सब बातों पर है, वह जी जान से हिन्दी भाषा की समुन्नति और प्रचार कार्य्य में लग जाना चाहता है, किन्तु आप लोग जानते हैं कि प्रत्येक कार्य धन-जन की अपेक्षा रखता है। जब तक आप लोग प्रचुर धन और योग्य जनों द्वारा सम्मेलन की उपयुक्त सहायता न करेंगे, तब तक वह वांछनीय कार्यों और उद्योगों के करने में असमर्थ रहेगा। आशा है, आप लोग इस निवेदन पर उचित दृष्टि देंगे।

एक बड़े महत्व के विषय की ओर मुझको आप लोगों की दृष्टि और आकर्षण करना है। आज हम लोग यहां हिन्दी भाषा को समुन्नत करने, उसका प्रचार करने, उसकी उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि करने के विचार से एकत्रित हैं। किन्तु आप लोग जानते हैं कि हिन्दू आधार है—हिन्दी आधेय, हिन्दू प्रसून है—हिन्दी विकास,

हिन्दू मयंक है—हिन्दी कौमुदी, हिन्दू सलिल है—हिन्दी लहरी, हिन्दू मधु है—हिंदी माधुरी। अतएव हिन्दी जीवन के लिये हिन्दू जाति की सजीवता वांछनीय है। किन्तु यही हिन्दूजाति आज जर्जरित है, प्रतिदिन उच्छिन्न हो रही है, तिरस्कृत, लांछित, पद-दलित, और असम्मानित है, और उसका भविष्यत् गगनतिमिराच्छन्न हो रहा है। आप लोग इधर दृष्टि आकर्षित कीजिये, और यह समझिये कि हिन्दू जाति के अस्तित्व और उन्नति पर ही हिन्दी की समस्त भलाइयां निर्भर हैं। अतएव आप सज्जनों का विशेषतः उत्साहशील युवक वृन्द का यह उद्योग होना चाहिये कि उत्तेजित कामनाओं के वश होकर कामधेनु की रक्षा से मुंह न मोड़ा जावे, और कल्पना के आधार पर कल्पतरु को निर्मूल न किया जावे। अन्त में, हिन्द, हिन्दू और हिन्दी की मंगल कामना करते हुए इन कतिपय पंक्तियों के साथ मैं इस व्याख्यान को समाप्त करता हूँ—

अमरावती समान बने पुर पंक्ति हमारी।
अमर निकर से रहें परम प्रमुदित नरनारी॥

सकल कल्पना कलित कला पादप बन जावे।
अखिल कामना कामद कामदुघा पद पावे॥

चित चिंता हो जाय चारु चिंतामणि जैसी।
बने भावना भावमयी भव भामा ऐसी॥

पा गुरुता गौरवित देवगुरु लौं गुरु जन हों।
साहस में सब परम साहसी उमा-सुअन हों॥

सुछवि निकेतन मंजु मीनकेतन जैसे हों।
सुरपुर सुख से सुखी लोग सुरपति ऐसे हों।

शची सदृश मतिमती सती शुचि रुचि मणिमाला।
हों कमनीया काम-कामिनी जैसी बाला॥

नंदनवन ऐसे सकल बन उपवन बनें मनोज्ञतम।
पाकर प्रभूत सुविभूति हो भारत भूतल स्वर्ग सम॥

दोहा

पालक प्रिय तरु अंक में कलित ललित कर केलि ।
फैल फैल फूले फले सुफलद हिन्दी-बेलि ॥

"हरिऔध"

भाषण समाप्त होने को ही था कि बड़ोदा-नरेश श्रीमान् सयाजी राव गायकवाड़ ने पधार कर सम्मेलन की शोभा बढ़ायी। सभापतिजी का भाषण समाप्त होते ही श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने श्रीमान् बड़ौदा नरेश के स्वागत में एक छोटी किन्तु सारगर्भित वक्तृता की, जिसमें श्रीमान् के हिन्दी-अनुराग के लिए उपयुक्त शब्दों में प्रशंसा की गई । टण्डनजी ने यह भी कहा कि श्रीमान् ने बम्बई में भी सम्मेलन में पधार कर इसको गौरवान्वित किया था और उस समय जो आर्थिक सहायता दी थी उससे सुलभ-साहित्य ग्रन्थ-माला प्रकाशित हो रही है, जिसमें १८ ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं।

उत्तर में श्रीमान् ने कहा—सज्जनों ! मेरे लिये आपने जो शब्द कहे उसके लिये मैं आपका बहुत आभार मानता हूं । मैंने अपने राज्य में हिन्दी को स्थान दिया उसके सम्बन्ध में आपने मुझे बहुत कुछ कहा है। मेरा विचार है कि, ऐसी एक जबान होनी चाहिये जिसको सब समझ सकें। इसके अनुसार ही मैंने हिन्दी को स्थान दिया। हिन्दुस्थान में बहुत भाषाएँ हैं, परन्तु जितनी कम भाषाएँ होंगी, उतना ही उसका हित है। मैं आपका बहुत उपकार मानता हूं।

इसके बाद श्री० बड़ोदा-नरेश श्रीसभापतिजी से सदालापपूर्वक अभिवादन कर पधार गये। इसके अनन्तर तीन लड़कों ने एक गीत गाया। पहले दिन की कार्यवाही इस प्रकार समाप्त हुई ।

दूसरा दिन

दूसरे दिन का कार्य १ बजे दिन से आरम्भ हुआ। गत रात्रि को विषय-निर्धारिणी-समिति में कुल सात प्रस्ताव उपस्थित हुए थे, जिनमें सम्मेलन द्वारा उपाधि दिए जाने का प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। सम्मेलन में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए वे अन्यत्र दिये गये हैं।

मंगलाप्रसाद पारितोषिक

प्रस्तावों के बाद श्रीमान् पंडित गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाको उनके सर्व-श्रेष्ठ मौलिक ग्रन्थ "भारतीय प्राचीन लिपि माला" के लिये बारह सौ रुपये का श्रीमंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया* ।

सम्मेलनकी स्थायीसमितिका वार्षिक-विवरण† पढ़े जाने के बाद दूसरे दिन का कार्य समाप्त हुआ ।

---

* जो ताम्रपत्र श्रीमान् ओझाजी को पारितोषिक के साथ दिया गया है, उसकी प्रतिलिपि अगले पृष्ठ पर देखिए ।

† स्थायी समिति का वार्षिक विवरण सम्मेलन से पुस्तकाकार प्रकाशित हो गया है। जो सज्जन उसे पढ़ना चाहें, वे कार्यालय से -) का टिकट भेज कर मगा सकते हैं ।

श्रीमान् पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा को दिये गये ताम्रपत्र की प्रतिलिपि

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १९८०-८१ का

श्रीमंगलाप्रसाद पारितोषिक

[रु० १२००]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के चौदहवें वार्षिक अधिवेशन पर

श्रीमान् रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

को

उनकी रचना "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" के लिए

सादर दिया गया

स्थान दिल्ली
मिति फा० कृ० ४—८०

अयोध्यासिंह उपाध्याय
सभापति

तीसरा दिन

रात को कवि-सम्मेलन एक बजे तक जमा रहा। रसिक कवियों ने काव्य रस के छींटे दे दे कर जागरण व्रत किया। रात के जागरण से थके हुए प्रतिनिधि कल सवेरे कपड़ा मार्केट में ६ बजे पहुँचे और वहाँ विषय-निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन हुआ। उसी समय स्थायी समिति का भी निर्वाचन हुआ।

मध्यान्होत्तर ३ बजे सम्मेलन-कार्य प्रारम्भ हुआ। आज सेठ जमनालालजी बजाज, सेठ गोविन्ददासजी आदि प्रतिष्ठित देश भक्त भी पधारे थे। प्रकाशकों का शुद्ध छपाई की ओर ध्यान खींचा गया। जयपूर राज्य में हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये वहां डेपुटेशन भेजने का भी निश्चय किया गया। इसी प्रकार साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के कार्य-क्रम को अधिक साहित्यक बनाने के लिये तीन सज्जनों की एक समिति बनाई गई। यह समिति स्थायी समिति के सामने ज्येष्ठ के अंत तक अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करेगी। इसके बाद हिन्दी-संग्रहालय के संबन्ध में श्रीयुत पं० माधोराव सप्रे ने एक प्रभावशाली भाषण दिया। पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने "हिन्दी संग्रहालय" के लिए अपील करते हुए कहा कि कांग्रेस ने हिन्दोस्तानी भाषा में कार्यक्रम रखने का निश्चय कर साहित्य-सम्मेलन पर भारी दायित्व डाला है। उसको निबाहने के लिए ज़रूरी है कि हम हिन्दी-साहित्य को संग्रह की सहायता से पुष्ट करें।

ठीक इसी समय महामना मालवीयजी पधारे। संग्रह के संबंध में अपील करते हुए आपने कहा कि हिन्दू जाति में बड़ी भारी कमी यह है कि वह उत्साहहीन है। जो थोड़ा बहुत उत्साह है वह क्लीब है। आप ने यह भी कहा कि हमें हिन्दी भाषा की उन्नति में अंग्रेजों का अनुकरण करना चाहिये। हमें इस भाषा को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाना चाहिये। प्रयत्न यह होना चाहिये कि हिंदी सारे एशिया की भाषा बने, परन्तु इस स्वप्न को पूरा करने के लिए ज़रूरी है कि हम संस्कृत, फ़ारसी तथा चायना आदि एशिया की भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी

में अनुवाद करें। दस हज़ार उत्साही सेवक प्रण करलें कि वह नागरी-प्रचारिणी व सम्मेलन की ओर से प्रकाशित पुस्तकों को अवश्य लें। अन्त में, आपने यह अपील की कि हिन्दी-संग्राहलय के काम में उत्साह से लगिए। तदनन्तर पं० इन्द्रजी ने कहा कि हमने अभी संग्रहालय के डेपुटेशन के मेम्बरों से निवेदन किया है कि वे अभी इस काम को न छेड़ें। फिर किसी मौके पर पधारें।

इस समय जो दान मिले हैं, वे इस प्रकार हैं—

५००) श्रीयुत जुगलकिशोरजी बिडला, ५००) श्रीयुत लक्ष्मीनारायण जी और २५०) श्रीयुत बा० मेलारामजी ने प्रदान किया। इसके बाद प्रधान मन्त्री जी ने स्थायी समिति के निर्वाचन को उपस्थित किया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

आगामी सम्मेलन को श्रीमान् पं० नरदेवशास्त्रीजी ने देहरादून में निमंत्रित किया। पं० देवरत्नजी शर्मा ने आप का अनुमोदन किया। सम्मेलन ने निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया।

अन्त में, स्वागतकारिणी के प्रधान मन्त्री सेठ केदारनाथ गोइनका ने सब अभ्यागतों को, स्वयं सेवकों को तथा दर्शकों को धन्यवाद दिया। सभापतिजी के स्वागतकारिणी को धन्यवाद दे चुकने पर पं० इन्द्रजी ने सभापतिजी को धन्यवाद दिया। इसके अनन्तर सम्मेलन निर्विघ्न सानंद समाप्त हुआ।

दिल्ली-कवि-सम्मेलन

फाल्गुन कृष्ण ४ संवत् १९८० को ८½ बजे संध्या से दिल्ली-कृष्ण-थियेटर हाल में कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सभापति का आसन कविवर पंडित नाथूरामजी शंकर शर्मा 'शङ्कर' ने ग्रहण किया। सम्मेलन के सभापति कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय के अतिरिक्त मान्य मिश्रबंधु, पं० पद्मसिंहजी शर्मा, पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, सनेहीजी, मौलाना आरिफ़हसबी, बा० महाराज बहादुर बर्क़ी, पं० गिरिधर शर्मा नवरत्न, म. म. पंडित हरनारायण शास्त्री, पं० रामजीलाल शर्मा, बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन, पं० रामनरेश

त्रिपाठी, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० रूपनारायण पांडेय, सेठ केदारनाथजी गोयनका, प्रो० रामदास गौड इत्यादि बहुत से कवि और सहृदयजन मंचपर मौजूद थे। मंच और हाल खचाखच दर्शकों से भरा था। महात्माजी का वह संदेश, जो सम्मेलन में २३-२-१९२४ को पढ़ा गया और जिसमें उन्होंने 'हिन्दी-उर्दू के कवि-सम्मेलन' पर संतोष प्रकट किया था, जनता को आकृष्ट करने में बड़ा सहायक हुआ। सम्मेलन १ बजे रात तक होता रहा। इतनी सफलता और संगठन के साथ कवि-सम्मेलन का होना—उर्दू के गढ़ में एक गौरव की बात है। उर्दू-हिन्दी की अनेक कविताएँ पढ़ी गईं, जिनको सुन कर जनता अत्यन्त हर्षित हुई—हिन्दी कविताओं का ऐसा अच्छा प्रभाव शायद ही उर्दू वालों पर कहीं और जगह पड़ा हो। महाराज बहादुर बर्क़-देहलवी एक ख़ास कवि हैं। उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि हिन्दी भाषा को शीघ्र ही सीखकर हिन्दी में कविता करनी चाहिए। कविता पढ़नेवालों में पं० गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही,' पं० रूपनारायणजी पांडेय, पं० श्यामविहारीजी मिश्र, स्वयं सभापति कविवर शंकर शर्म्मा, पंडित व्रजनारायणजी वैद्य, पं० मोहनलालजी महत्तो, पंडित अनूप शर्म्मा पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, स्वामी नारायणानन्दजी, पं० गिरिधर शर्म्मा नवरत्न, मौलाना आरिफ़हसवी, बा० महाराज बहादुर बर्क़, पं० क्षेमानन्दजी 'राहत' इत्यादि कवि गण थे। अनेक महानुभावों को कविता पाठ करने का अवसर नहीं मिला। कवि-सम्मेलन की सफलता के साथ पं० उदित मिश्रजी का नाम न लेना अन्याय होगा। मिश्रजी की नम्रता, उद्योगपरता और विशेष लगन का प्रभाव है जो कवि-सम्मेलन इतना सफल हुआ। कुछ चुनी हुई कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

सन्त बसन्त है

(सोरठा)

बेलि वृक्ष सुख मान, उमगे मोद अनन्त है ।
पत्र पुष्पफल दान, करता सन्त बसंत है ॥

छूत अछूत क्यों ?

(षट्पदी छन्द)

समझ धर्म का मर्म प्रेम भरपूर पसारो ।
करते रहो सुकर्म जाति पर जीवन वारो ॥
आपस में कर मेल, भूल भ्रम भेद भगादो ।
हिलमिल खेलो खेल, सुकृत की ज्योति जगादो ॥
हितकारी "शंकर" को भजो, कहते हैं गुरुलोग यों ।
मत शुद्धता एकता को तजो, पकड़ो "छूत अछूत क्यों" ?

हिन्दी हमारी ।

(भुजङ्गप्रयात वृत्त)

अविद्या जगादी सुविद्या सुलादी ।
पढ़े फ़ारसी आर्यभाषा भुलादी ॥
कुधी हिंद के हिन्दुओं ने न मारी ।
कहेंगे भला क्यों न "हिन्दी हमारी" ॥

ऋतुराज की

(घनाक्षरी)

तोरण पताकाधारी उन्नत वितान तने,
बगरी विचित्रता सजावट के साज की ।
प्रेमी कविता के सभ्य सज्जन विराज रहे,
उलही अनूठी आभा सुकवि समाज की ॥
कोश मिला मोद का साहित्य-सुरपादप से,
रंजना रिझावेगी किसे न कहो आज की ?

"शङ्कर" युधिष्ठिर की राजधानी देहली में,
मानो मन मानी छवि छाई "ऋतुराज की" ॥

(२)

मान मनमाना मिलता है खलमंडल को,
कौन करता है सेवा सज्जन-समाज की ।
होके माला माल मूढ़ मिट्ठू मौज मारते हैं,
लोहू चतुरों का चूसती है चिन्ता नाजकी ॥
गाजती है गन्दी तुकबन्दी कोरे तुक्कड़ों की,
गूंजती है कविता न कविकुल-ताज की ।
मानो ढाक फूले हैं न "शङ्कर" रसाल बौरे,
भूतल पै छूंछी छवि छाई 'ऋतुराज की" ॥

होली है

(घनाचरी)

"शङ्कर" त्रिशूल रुद्ररोष का चलाती हुई,
चण्डी मारकाट करती न कहां डोली है ।
पालती प्रजा को लाद लाद कर भार भारी,
लोभ लीला लूट की तुलाएँ धर तोली है ॥
ठूंसी ठोस नीति भूखे शासन की गोद भरी,
पेट फाड़ न्याय ढोल की न पोल खोली है ।
गोरी सरकार काला भारत न भूले तुझे,
छोड़ दिये गांधीजी हया की हद "होली" है ॥

(२)

कोविद कहाने को कवित्व शक्ति भूल भरीं,
केशव की तुलसी की सूर की टटोली है ।
देव की बराबरी बिहारी के न हाथ लगी,
जानकारी दोनों की लगाय तक तोली है ।
दूषण दिखा दिये पुराने नये कवियों के,
खोज खोज कोरे तुक्कड़ोंकी पोल खोली है ।

लादी समालोचना-गधी पै समालोचकों ने,
धूलि भरपूर होलू "शंकर" की "होली है" ॥

पाकर कदम सेव पी पर न रूसा कर

दोहा

लतिका फूलों से लदी, दिखलाती तरु पांति।
रूसी रमणी से सखी, कहती है इस भाँति ॥

(रूप घनाक्षरी)

बतियां कटीली हठ कीकर न काहूबेर,
रोष बगला नचीर सेवा सफरी की वर।
मान सत्यानाशी ने उखारी जीवतीकी जड़,
प्यार कमरख न प्रधान मृदु फल पर।
रम्भा मंजुघोषा को लताड़ रसभरी बाल,
अम्बा बन वंश उपजामन की नीम धर।
नारिकेलि क्यों न सेवती है तज फूट वेलि,
पाकर कदम सेव पीपर न रूसा कर।

नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर'

(२)

वतन में भी ये गुरबत है कि गोया बेवतन हम हैं।
जमा है रंग जिसमें ग़ैर का वह अंजुमन हम हैं ॥
चुने हैं फूल जिससे दुश्मनों ने वह चमन हम हैं।
करें फरियाद कैसे बेज़ुबाँ हैं बेदहन हम हैं ॥
हमारी राह में बनबन के काँटा आसमाँ खटका।
कि खटका बन के हमको रात दिन है बाग़बाँ खटका ॥
कहाँ वह दिन कि कुल आलम में जब शोहरत हुई अपनी ?
कहाँ वह इल्मो-फ़न है, हाय क्या दौलत हुई अपनी ?
तिजारत क्या हुई अपनी वह क्या सनअत हुई अपनी ?
किसी का इसमें शिकवा क्या कि खुद ग़फलत हुई अपनी ॥

हुए ग़ैरों के बस खुद मुल्क की ख़िदमत में ख़ामी की।
बड़े ही शौक़ से हैं बेड़ियाँ पहनी गुलामी की॥

मनों के बस में होकर हैं लगाये मन विदेशी पर।
लुटाये देते हैं ठग ठग के सारा धन विदेशी पर॥
ख़रीदारों ने बेचा धर्म्म इस पुरफ़न विदेशी पर।
लंडूरे क्या उड़ें जब तक न जाएं बन विदेशी पर॥

नहीं परदे के परबस यों कोई दुनिया के परदे में।
बिगुल जब बज रहा हो तो छिपें जा जा के परदे में॥

अभी कुछ बम बरसते थे न थीं कुछ गोलियाँ चलतीं।
फ़क़त इतना ही होता चरखे चलते चरख़ियां चलतीं॥
चलन खद्दर का चलता और गांधी-टोपियाँ चलतीं।
मियाँ बनते न बीबी मर्द बन कर बीबियाँ चलतीं॥

दिखा देते जमी अन्याय को सत् बल की टक्कर से।
वो गिरता मुंह के बल चकरा के चरख़े ही के चक्कर से॥

क़सम खाते हैं यह सब क़ौम के सरदार गांधी हैं।
अहिंसा और आज़ादी के तो अवतार गांधी हैं॥
मुकुट सिर के हमारे हैं हृदय के हार गांधी हैं।
वो यकता हैं जमाने में नहीं दो चार गांधी हैं॥

ये सब सच, किसलिए फिर काम में यह ढील होती है।
ज़रा से हुक्म की भी तो नहीं तामील होती है॥

घिरीं थीं देश में चारों तरफ़ जब बदलियाँ ग़म की।
न होगा संग दिल ऐसा न जिसने आँखें हों नम की॥
नमक छिड़का गया ज़ख़मों पे जब हाजत थी मरहम की।
चला फख़्रे-वतन किसमत यरोदा जेल की चमकी॥

कहाँ चलते हुए पहले करो तुम काम खद्दर का।
निकाला कुछ न मुंह से निकला जब तो नाम खद्दर का॥

ग़ज़ब है फिर भी बन कर हम जो मुल्को-क़ौम के दुश्मन।
विदेशी वस्त्र बेचें और कुछ दिल में न हो उलझन॥
वो नूरुद्दीनख़ाँ हों या हों अपने पांडे पतिराखन।
कलंकित जाति को करते हैं ये अच्छे नहीं लच्छन॥

विदेशी वस्त्र बाज़ारों में लाकर पाटते हैं वे।
जड़ें अपनी ही अपने हाथों ही से काटते हैं वे॥

गवाँ कर देश का धन पाप का व्यापार करते हैं।
ज़रा सोचें तो दिल में आप, क्या सरकार करते हैं!
छुरी किस पर चलाते हैं ये किस पर वार करते हैं।
उसी का खून करते हैं जिसे सब प्यार करते हैं॥

बढ़ेगी और उलझन क्या खुलेंगी आपकी गांठें।
नरक होगा भुगतना बँध रही हैं पाप की गांठें॥

हम अपने मोटे गाढ़े को समझ कर गुलबदन पहनें।
ज़रूरत क्या रहे तनज़ेब की फिर क्यों चिकन पहनें॥
सितम हैं बेड़ियाँ जिसके लिए फ़ख़्रे वतन पहनें।
विदेशी पर मरें वे मर के ग़ैरों का कफ़न पहनें॥

ये मर जाने की बातें हैं अजी शर्मिन्दगी कैसी?
कि जब बेग़ैरती इतनी है तो फिर जिन्दगी कैसी॥

जिन्हें ग़ैरत है कुछ वह तो स्वदेशी पर निछावर हैं।
जलाके मख़मली पोशाकें अपनी, पहनें खद्दर हैं॥
नज़र अपनी इन्हीं पर है यही उम्मीदों के घर हैं।
हमारी क़ौमे बेपर के अगर कुछ हैं तो ये पर हैं॥

न आयेंगे कभी ये दाम में ऊंची उड़ानों से।
है दिल में क़ौम के हिम्मत तो ऐसे ही जवानों से॥

'त्रिशूल'

सत्याग्रह-गीत

मैं अमर हूं, मौत से डरता नहीं;
　　सत्य हूं, मिथ्या डरा सकती नहीं ॥
मैं निडर हूं, शस्त्र का क्या काम है ?
　　मैं अहिंसक हूँ, न कोई शत्रु है ॥ १ ॥
शस्त्र लेना निर्बलों का काम है।
　　सत्य का तो शस्त्र केवल प्रेम है ॥
प्रेम से मैं भूमि स्वर्ग समुद्र को
　　एक कर दूंगा हृदय के रूप में ॥ २ ॥
फांस लो दुख में, पिसूंगा तो सही,
　　किन्तु अंजन आंख का बन जाऊंगा ॥
दृष्टि होगी सौगुनी संसार की,
　　तुम कहां पाओगे छिपने की जगह ॥ ३ ॥
चाहते जो खाक करना ही मुझे,
　　आग में धर कर तपा कर देख लो ॥
शुद्ध सोना सा कढ़ूंगा जब कभी,
　　दाम पहले से बहुत बढ़ जायगा ॥ ४ ॥
काट लो सिर, दर्द सिर का लो मिटा।
　　भार कंधे का हमारा भी हटे ॥
हूं दिये की लौ, इसे मत भूलना।
　　फिर उजाला और भी हो जायगा ॥ ५ ॥
सत्य कहने से न रुकती जीभ है।
　　काँपते क्यों हो ? इसे ही काट लो ॥
मैं कलम हूं, एक मेरी जीभ से
　　क्या करोगे, जब बढ़ेंगी सैकड़ों ॥ ६ ॥

खूब चारों ओर कांटे दो बिछा।
मर मिटूं मैं काढ़ लो जी की कसक ॥

किन्तु आकर देख जाना एक दिन—
मैं मिलूंगा फूल सा हंसता हुआ ॥ ७ ॥

क्रोध ने जीता तुम्हें है सब तरह—
क़ैद में तुम क्रोध की हो हर घड़ी ॥

किन्तु मैं जीते हुए हूं क्रोध को।
तब कहो मैं किसलिये तुम से डरूं ? ॥ ८ ॥

कौन हो तुम ? मौत का मैं दूत हूं।
क्या करोगे ? मौत से दूंगा मिला ॥

है कहाँ वह जन्म भर की संगिनी !
मित्र ! लो तुम प्राण यह उपहार में ॥ ९ ॥

रामनरेश त्रिपाठी

प्यारी उर लागै ना

डंका दे निसान पर चढ़े बीर बंका दल,
बढ़े हैं निसंका नेक प्राण मोह पागै ना।

बरछा चलावै कोऊ बाण को लगावै कोऊ,
वार को बचावै कोऊ मारे कोई भागै ना।

एतै एक जंगी करवाल लेय नंगी बढ़ै,
नासै शत्रु संगी को तनक अनुरागै ना।

सेना काटि हाथी काटि हौदा काटि काटे शत्रु,
ताकी वीरताई काके, प्यारी उर लागै ना।

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'

"ऋतुराज की"

फूल उठे शुचि सुमन, सौरभित परम मनोरम।
भूल उठे बहु बौरयुक्त पादप अति उत्तम॥
गूँज उठे मदमत्त, मधुप चञ्चल मधु पी कर।
कूज उठे खगवृन्द, सरस डाली डाली पर॥
अब नवल सरसता प्रकृति ने, सरसाई निज साज की।
बन, उपबन, कुञ्ज, निकुञ्ज में, छाई छवि "ऋतुराज की" ॥ १ ॥

किंशुक, कुन्द, कनेर, प्रफुल्लित सुमन सुहाते।
माणिक, मुक्ता, कनक, कान्ति अति हीन बनाते॥
पत्र, फूल, फल सहित, झुकी लतिका जगती तल।
पट, भूषण, कुचभार, नमित युवती लगती कल॥
करते सुविशाल रसाल द्रुम, समता हैं गजराज की।
जिनपर विहंग गाते ललित, कीर्ति कलित "ऋतुराज की" ॥ २ ॥

फूले पुष्प पलास, मनोहर लगते लोहित।
पीली सर्षप खिली, देख होता मन मोहित॥
सिन्धुवार के सुमन, स्वेत अति शोभा पाते।
हरित पल्लवित बल्लि, नील नीलोत्पल भाते॥
इस भाँति छटा लहरा रही, नूतन विपिन समाज की।
यह मानो पँचरङ्गी ध्वजा, फहराती "ऋतुराज की" ॥ ३ ॥

शुचि पत्र पतन, स्नान, ओस कण, पट लतिका चय।
अङ्गराग रज पुष्प, राग मधु, यावक किसलय॥
भूषण सुम, मुखवास, सुरभि कुन्तल मधुकर व्रज।
दर्शन अञ्जनयुक्त, नयन दल श्यामल नीरज॥
गति मन्द वात, वच विहग रुत, हास अमित कोरक विदर।
पटुता हित, मधु मय रति सजे, शुचि षोड़श हित पञ्चशर ॥ ४ ॥

बन केसर पट पीत, रुचिर श्यामल तमाल तन।
अम्बुज आनन ओप, सुमन बन माल हरे मन॥

लतिका ललित लवङ्ग, सङ्ग शोभित गोपीजन।
बहु बन जन्तु विलास, विविध कुल पावन गोधन॥
अलि गुंज नाद वंशी रही, उन्नतिकर रतिराज की।
यह वर विहार व्रजराज है, या बहार "ऋतुराज की" ॥५॥

विविध भांति के सुमन, अङ्गपट वंश लकुट कर।
अरुण पुष्प रज तिलक, भाल सौरभ शुचि यशधर॥
पत्र पतन कर नष्ट द्वेष मति, निज स्वदेश जन।
नव पल्लव मन देश-भक्ति, उपजाई पावन॥
पिकरव स्वराज्य-उपलब्धि हित, उत्साहित कारक बचन।
अलि वृन्द सुजन स्वागत निरत, आये ऋतुपति तिलक बन ॥६॥

भारत भू उद्यान, सुमन सत्याग्रह शुचितम।
खिला प्रसारित किया, जिन्होंने यश सौरभ सम॥
पतन पत्र कर त्याग, बृटिश बन्दीग्रह निजबल।
भारतीय द्रुम लता मध्य, विकसाये नव दल॥
नित बजै बधाई विहग रव, भारत के शिरताज की।
बन गान्धी आये अति विमल, मूर्ति नवल "ऋतुराज की" ॥७॥

हे कुसमाकर सरस, माङ्गलिक हो तब आगम।
पावें सब सुख शान्ति, दीन भारत-वासी हम॥
मिटें दुःख, दल होंय अङ्कुरित आशा शुचितम।
मन की कलियां खिलें, फलें फूलें लतिका सम॥
बल बुद्धि शुद्धि विद्या विपुल, बढ़े भक्ति व्रजराज की।
इस हिन्दी का विस्तार हो, लख शोभा "ऋतुराज की" ॥८॥

उपवन समान है सज्जित भव्य भवन,
बनी द्रुम बल्लरी उपमा सब साज की।
सकल सुसभ्य जन शोभित सुमन खिले,
मकरन्द मनोकामना हिन्दी के राज की॥
गान अलिगुंज, ध्वनि भाषण विहंग वृन्द,

कलिका की चटक बजैं ताली समाज की।
देखो ब्रजराज आज साहित्य-सम्मेलन ने,
पाई निज शोभा महाराज "ऋतुराज की" ॥ १ ॥

ब्रज नारायणाचार्य वैद्य

आंसू

मैंने सोचा था न कहूंगी,
उनसे अपने मन की बात।
कह कर ही क्या करना है,
वह सुनते नहीं किसी की बात ॥
अपना दुःख दबा दूंगी मैं,
छाती पर पत्थर देकर।
हँस हँस कर बोलूँगी उनसे,
कर में उनका कर लेकर ॥
किन्तु हाय! क्या कहूं? भेदिये टपक पड़े आंसू!!!

क्षेमानन्द राहत

धोखा

वह राजा है मैं दरिद्र हूं, इसका कुछ न विचार किया।
होकर प्रेमोन्मत्त देख छवि, मन ही मन में प्यार किया ॥
बड़ी देर तक मुझे देखता वह रहा।
फिर हँस कर नीरव वाणी में यों कहा ॥
अरे छोड़ भी दे मुझे।
यह क्या भाई! है तुझे ॥
हृत्तन्त्री झनझना उठी, पर मंत्रमुग्ध सा खड़ा रहा।
आंखों ने मेरे बदले में रो रो कर दुख वृत्त कहा ॥

तब उसका मुख कमल हँसी से खिल गया।
मेरा रोना उसी हँसी में मिल गया॥

× × × ×

छूने पर वह निकली छाया।
कैसा बेढब धोखा खाया॥

मोहनलाल महत्तो गयावाल

चौदहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, दिल्ली में

स्वीकृत

प्रस्ताव

१—हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और परम हितैषी पं० गोविन्द नारायण मिश्र, मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, पं० प्यारेलाल मिश्र और पं० प्रतापनारायण बाजपेयी की मृत्यु पर यह सम्मेलन हार्दिक शोक और उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करता है।

सभापति द्वारा

२—भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा ने अपनी संशोधित नियमावली में इस आशय का जो एक नियम स्वीकृत किया है कि, महासभा की कार्रवाई जहाँ तक हो हिन्दुस्तानी भाषा में की जाय, इस पर यह सम्मेलन संतोष प्रकट करता है और राजनीतिक नेताओं से अनुरोध करता है कि वे भारतीय जनता की भावी उन्नति और वास्तविक स्वराज्य की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा के स्थान पर सब राष्ट्रीय और राजनीतिक काम-काज राष्ट्रभाषा हिन्दी में करना प्रारंभ कर दें।

प्रस्तावक—श्री रामदासजी गौड़
श्री चाँदकरणजी शारदा

३—(क) यह सम्मेलन हिन्दीभाषा-भाषी समस्त व्यापारियों से अनुरोध करता है कि वे अपना हिसाब-किताब इत्यादि कार्य हिन्दीभाषा और देवनागरी लिपि में किया करें।

(ख) यह सम्मेलन हिन्दी भाषा-भाषी समस्त राजा, महाराजा, जमींदार तथा कानून-व्यवसायियों से अनुरोध करता है कि वे अपने प्रबन्ध न्यायालय सम्बन्धिनी लिखा-पढ़ी आदि कार्य हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में किया करें।

प्रस्तावक—श्री गोस्वामी छबीलेलालजी
समर्थक—श्री बा० द्वारिकालालजी गुप्त

४—(क) जिन महानुभावों के पास हस्त लिखित पुस्तकें, हिन्दी के ताम्रपत्र, दानपत्र तथा अप्राप्य ऐतिहासिक पुस्तकें एवं वस्तुएँ हों, उनसे यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि वे हिन्दी-संग्रहालय को सर्वांगपूर्ण बनाने तथा उन वस्तुओं की रक्षा के लिये उन्हें प्रदान करने की उदारता दिखावें।

(ख) कानपुर के तेरहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में हिन्दी-संग्रहालय के स्थापित होने के सम्बन्ध में जो मन्तव्य हुआ था उसकी ओर यह सम्मेलन पुनः समस्त हिन्दी-भाषा-भाषियों का ध्यान आकर्षित करता है और अनुरोध करता है कि वे इस महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक कार्य की शीघ्र पूर्त्ति के लिए धन की उचित सहायता करें।

प्रस्तावक—श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन
अनुमोदक—पं० गिरिधर शर्म्माजी 'नवरत्न'

५—यह सम्मेलन व्यवस्थापिका सभाओं और डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों के हिन्दीभाषा-भाषी सदस्यों से अनुरोध करता है कि वे समस्त जनता की सुविधा का ध्यान कर इन संस्थाओं की कार्रवाई हिन्दी भाषा में कराने का विशेष प्रयत्न करें।

प्रस्तावक—श्री पं० इन्द्रजी
अनुमोदक—श्री रामप्रसादजी हुरकट

६—जयपुर राज्य की जनता की सुविधा की ओर ध्यान देकर यह सम्मेलन जयपुर की राज्य-सभा से अनुरोध करता है वह अपने यहां की राज्य-भाषा और लिपि हिन्दी कर दे। इस प्रस्ताव के

सम्बन्ध में जयपुर राज्य में जाकर वहां के अधिकारियों से बातचीत और इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने का उद्योग करने के लिए यह सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों का एक प्रतिनिधि-मंडल नियुक्त करता है—

श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टंडन
" सेठ जमुनालालजी बजाज
" कुँवर चाँदकरणजी शारदा
" सेठ गोविन्ददासजी (संयोजक)

७—यह सम्मेलन हिन्दी-भाषी प्रान्तों, डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों के शिक्षा-विभागों, देशी नरेशों, तअल्लुकेदारों, रईसों तथा व्यापारियों से प्रार्थना करता है कि वह सम्मेलन से उत्तीर्ण व्यक्तियों को अपने यहाँ स्थान देने में प्रधानता दें।

सभापति द्वारा

८—यह सम्मेलन राष्ट्रभाषा के परम सहायक महात्मा गान्धी जी के कारागार से मुक्त होने पर हर्ष प्रकट करता हुआ उनका स्वागत करता है और ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करता है कि वह उनको शीघ्र पूर्ण नीरोग करे, जिससे वे पूर्ववत् लोक-हितकार्य में तत्पर हो सकें।

सभापति द्वारा

६—राजपूताना शेखाबाटी के खेतड़ी-नरेश ने अपने न्यायालयों में उर्दू के स्थान पर हिन्दी को स्थान दिया है, इसके लिए यह सम्मेलन प्रसन्नता प्रकट करता है और श्रीमान् खेतड़ी नरेश को धन्यवाद देता है।

सभापति द्वारा

१०—अनेक प्रकाशक हिन्दी-साहित्य के ग्रन्थों के पाठ और छपाई की शुद्धता पर ध्यान नहीं देते और उन्हें सम्पादन की भूलों और क्षेपकों से भ्रष्ट कर देते हैं, जैसे रामचरितमानस आदि में,

जिससे साहित्य का बड़ा अपकार होता है, इसलिए यह सम्मेलन इसकार्य को अनुचित समझता है और प्रकाशकों, तथा टीकाकारों से प्रार्थना करता है कि वे भविष्य में अपने ग्रन्थ निर्दोष रूप से प्रकाशित कर साहित्य की सेवा करें।

प्रस्तावक—श्री भगवानदासजी हालना
अनुमोदक—श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी

११—यह सम्मेलन हिन्दीभाषाभिलाषी उत्साही युवकों से सानुरोध प्रार्थना करता कि वे राष्ट्रभाषा के प्रचारार्थ उद्योग करने पर कटिबद्ध हों और भिन्न भिन्न प्रान्तों में जाकर हिन्दी का प्रचार करें, और साथ ही साथ वहां महत्वपूर्ण विशेषताओं का अध्ययन करके हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रयत्न करें।

इसके साथ ही हिन्दी-प्रेमी धनिक वर्ग तथा वयोवृद्ध सज्जनों से इस सम्मेलन का अनुरोध है कि वे इस कार्य में यथेष्ट सहायता प्रदान करें।

प्रस्तावक—श्री पं० क्षेमानन्दजी राहत
अनुमोदक—श्री पं० हरिहरजी शर्म्मा

१२—यह सम्मेलन, सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों को और अधिक साहित्यिक और उपयोगी बनाने की दृष्टि से तथा उनके अधिवेशनों के साधारण कार्यक्रम की योजना बनाने के लिए निम्न-लिखित तीन सज्जनों की एक उपसमिति का संगठन करता है—

१—पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, कलकत्ता
२—पं० रामजी लालजी शर्मा, प्रयाग
३—प्रो० रामदासजी गौड़, काशी (संयोजक)

यह उपसमिति उपनियम बनाकर ज्येष्ठ संवत् १९८१ के अन्त तक स्थायीसमिति के सम्मुख उपस्थित करे।

प्रस्तावक—श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी
अनुमोदक—श्री प्रो० रामदासजी गौड़

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

चौदहवें वर्ष की स्थायी समिति

के

पदाधिकारी

सभापति—श्रीयुत पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, आजमगढ़
उपसभापति—श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
" — " पं० माधवरावजी सप्रे, बी. ए. तात्यापारा रायपुर
प्रधानमंत्री — " पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग
परीक्षामंत्री — " अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
प्रचारमंत्री — " पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग
अर्थमंत्री — " पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, बी. ए. एल. एल. बी. प्रयाग
प्रबन्धमंत्री — " पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी, प्रयाग
आयव्यय परीक्षक—" बाबू लालबिहारीलालजी, बी. ए. सतना

गत सम्मेलनों के सभापति

१—श्रीयुत पं० मदनमोहन मालवीय, प्रयाग
२— " स्वर्गीय पं० गोविन्द नारायण मिश्र, काशी
३— " स्वर्गीय पं० बदरीनारायण चौधरी (प्रेमघन) मिर्जापुर
४— " स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल, कांगड़ी,
५— " पं० श्रीधर पाठक, प्रयाग
६— " बाबू श्यामसुन्दरदास बी. ए. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
७— " पांडेय रामावतार शर्मा एम. ए. पटना कालेज, पटना
८— " महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी, सत्याग्रहाश्रम अहमदाबाद

९—श्रीयुत पं० मदनमोहन मालवीय (दूसरी बार)
१०— " स्वर्गीय पं० विष्णुदत्त शुक्ल बी. ए., जबलपुर
११— " बाबू भगवानदास एम. ए. सिगरा-काशी
१२— " पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, सीतारामघोष स्ट्रीट कलकत्ता
१३— " बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग
१—भूतपूर्व प्रधानमंत्री प्रोफेसर ब्रजराज, एम. ए. बी. एस. सी. एल. एल. बी. प्रयाग

सदस्य

संयुक्त प्रान्त

१—श्रीयुत प्रोफेसर गोपालस्वरूपजी भार्गव एम. एस. सी., प्रयाग
२— " पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
३— " पं० इन्द्र नारायणजी द्विवेदी, किसान सभा, प्रयाग
४— " पं० लक्ष्मीधरजी बाजपेयी, प्रयाग
५— " बाबू संगमलालजी एम. ए. एल. एल. बी प्रयाग
६— " पं० देवीप्रसादजी शुक्ल बी. ए. प्रयाग
७— " पं० कृष्णकान्तजी मालवीय, प्रयाग
८— " वियोगी हरिजी, प्रयाग
९— " पं० राजमणिजी त्रिपाठी-पड़रौना, जिला गोरखपुर
१०— " श्रीनिवासजी चतुर्वेदी, एम. ए. हेडमास्टर नानक चन्द हाई स्कूल मेरठ
११— " पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, देहरादून
१२— " शालग्रामजी वर्मा बी. एस. सी., हेडमास्टर कायस्थ पाठशाला अलीगढ़
१३— " धर्मेन्द्र नाथजी आचार्य, गुरुकुल वृन्दावन
१४— " पं० छबीले लालजी गोस्वामी, वृन्दावन
१५— " पं० पद्मसिंहजी शर्मा-चाँदपुर-बिजनौर
१६— " पं० विश्वेश्वर दयालुजी चतुर्वेदी, आगरा

१७—श्रीयुत ठाकुरप्रसादजी शर्मा, फ़ीरोज़ाबाद, आगरा
१८— " रामदासजी गौड़, पियरी कलां, काशी
१९— " लाला भगवानदीनजी, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
२०— " पं० रामनारायणजी मिश्र, बी. ए. सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल काशी
२१— " भगवन्नारायणजी भार्गव, बी. ए. एल. एल. बी. झाँसी
२२— " बाबू भगवानदासजी हालना, हाथरस
२३— " श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, एम. ए. एल. टी. प्रिंसिपल, कन्याकुब्ज कालेज, लखनऊ
२४— " दुलारेलालजी भार्गव, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ
२५— " पं० गणेशविहारीजी मिश्र, गोलागंज, लखनऊ
२६— " पं० भगीरथप्रसादजी दीक्षित, ना० प्र० स०, काशी
२७— " पं० शिवनारायणजी मिश्र, प्रताप प्रेस, कानपुर
२८— " पं० राम प्रसादजी मिश्र बी. ए. कानपुर
२९— " मोतीलालजी जैन, मुज़फ्फरनगर
३०— " पं० रघुवर दयालजी मिश्र, C/o रामदास गौड़, पियरी कलां, काशी

बिहार और उड़ीसा

१—श्रीयुत बदरीनाथजी वर्मा, विहार-विद्यापीठ, दीघाघाट-पटना
२— " पं० राधाकृष्णजी झा एम. ए. पटना कालेज, पटना
३— " राय बहादुर रामरण विजय सिंहजी, खड्ग विलास प्रेस, पटना
४— " पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री, सम्पादक शिक्षा, पटना
५— " सूर्य प्रसादजी महाजन, श्री मन्नूलाल लाइब्रेरी, गया
६— " कालिकाप्रसादजी, हेडमास्टर जिला स्कूल, मुंगेर
७— " कुमार गंगानन्द सिंह एम. एस. ए., श्रीनगर-पूर्निया
८— " मौलवी लतीफहुसैन, कदम्बकुंज, मुजफ्फरपुर
९— " रामधारीप्रसाद, धर्मशाला रोड, मुजफ्फरपुर

१०—श्रीयुत साँवलिया बिहारी लालजी वर्मा, मथुरा भवन, छपरा
११— " मौलवी मीर मुहम्मद मूनिस, मुहल्ला गंज नं० २ बेतिया
१२— " शिव पूजन सहायजी, २३ शङ्करघोष लेन, कलकत्ता
१३— " रामानन्द सिंहजी वकील, छपरा
१४— " वैष्णव पुरुषोत्तमदासजी, तिर्हुत-पुस्तक-भंडार मुजफ्फरपुर

मध्यप्रदेश

१—श्रीयुत पं० नर्मदाप्रसादजी मिश्र बी. ए., दीक्षितपुरा, जबलपुर
२— " राय साहब पं० रघुबरप्रसादजी द्विवेदी, हितकारिणी हाईस्कूल, जबलपुर
३— " सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा
४— " पं० लोचनप्रसादजी पांडेय, बालपुर, चन्द्रपुर, बिलासपुर
५— " सैयद अमीर अलीजी "मीर", धर्मजयगढ़ सी. पी.
६— " पं० कामता प्रसादजी गुरु, जबलपुर
७— " पं० गंगा प्रसादजी अग्निहोत्री, सम्मेलन-पुस्तकालय, बलदेवबाग, जबलपुर
८— " राय बहादुर हीरालाल जी बी. ए., कटनी, जबलपुर
९— " सत्यदेवजी विद्यालंकार, वर्धा
१०— " पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी, जबलपुर
११— " पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, होशंगाबाद

बंगाल

१—श्रीयुत पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे, सम्पादक भारतमित्र कलकत्ता
२— " पं० बैजनाथजी चतुर्वेदी, ३७ ए. एजरास्ट्रीट कलकत्ता
३— " बाबू घनश्याम दासजी बिड़ला, १३७ केनिंग हाउस कलकत्ता
४— " बाबू गोकुलचन्दजी रईस, ३० बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

५—श्रीयुत पं० झाबरमल्लजी शर्मा ८/१ रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता

६— " बाबू महादेवप्रसादजी सेठ, मतवाला आफिस, कलकत्ता

७— " पं० अम्बिका प्रसादजी बाजपेयी, स्वतंत्र कार्यालय मछुआ बाजार स्ट्रीट—कलकत्ता

८— " पं० नन्दकुमार देव शर्मा, पो० बाक्स ६७०४ बड़ा बाज़ार, कलकत्ता

९— " बाबू यशोदानन्दजी अखौरी, भारतमित्र कार्यालय, कलकत्ता

१०— " बाबू गंगाप्रसादजी भोतिका, १८१ हेरिसन रोड, कलकत्ता

११—" पं० माधव शुक्ल जी, ९४ तूलापट्टी, कलकत्ता।

१२—" बाबू गोबर्धनदासजी कावरा, बोगरा, बंगाल

मध्यभारत और राजपूताना

१—श्रीयुत रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा, अजमेर

२— " पं० गिरधर शर्माजी नवरत्न, झालरापाटन

३— " बाबू चाँदकरणजी शारदा, अजमेर

४— " पं० लज्जारामजी मेहता, बूँदी

५— " गुलाबरायजी एम. ए. प्राईवेट सेक्रेटरी, महाराज छतरपुर—बुन्देलखंड

६— " डाक्टर सरजू प्रसादजी छावनी, इन्दौर

७— " ठाकुर कल्याणसिंहजी शेखावत, बी० ए०, भरतपुर

८— " सूर्यकुमारजी वर्मा, लश्कर, ग्वालियर

९— " लालचन्दजी सेठी वाणिज्य-भूषण, झालरापाटन

१०— " रामकरणजी आसोपा, जोधपुर

११— " पं० सिद्धनाथ माधवजी लोंढ़े, देवासगेट, उज्जैन

पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रान्त

१—श्रीयुत लाला लाजपतरायजी, लाहौर
२— ,, महात्मा हंसराजजी, लाहौर
३— ,, देवराजजी, कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर
४— " पं० नेकीरामजी शर्मा, भिवानी, पंजाब
५— " पं० गिरधरशर्माजी चतुर्वेदी, सनातनधर्म कालेज—लाहोर
६— " पुत्तनलालजी विद्यार्थी, स्टोर आडिट, मोगलपुरा, लाहौर
७— " पं० चेतरामजी, कन्या महा विद्यालय, जालन्धर
८— " जयचन्द्रजी विद्यालंकार, राष्ट्रीय विद्यालय, लाहोर

दिल्ली

९— " लाला चन्द्रभानजी एम. ए. एल. एल. बी, दिल्ली
१०— " लाला डिप्टीमल जी बी० ए० "अर्जुन" कार्यालय दिल्ली,

बम्बई

१—श्रीयुत पं० हरिभाऊजी उपाध्याय, हिन्दी नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद
२— " पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी,सत्याग्रहाश्रम,अहमदाबाद
३—श्री १०८ स्वामी शंकराचार्यजी करवीरमठ, कोल्हापुर
४—श्रीयुत मास्टर आत्मारामजी, एजुकेशनल इन्स्पेक्टर, बड़ोदा
५— " सेठ श्रीनिवासदासजी, मालिक श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
६— " नाथरामजी प्रेमी, संचालक हिन्दीग्रन्थरत्नाकर, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई
७— " बालकृष्णजी, प्रिंसिपल, राजाराम कालेज, कोल्हापुर

मद्रास

१—श्रीयुत पं० हरिहर शर्म्माजी, हिन्दी-प्रचार कार्यालय, मदरास
२— " संजीवी कामत, वकील चेम्बर्स, मद्रास हाईकोर्ट, मद्रास
३— " पं० हृषीकेश शर्माजी, हिन्दी-प्रचार कार्यालय, वेजबाडा

स्थायी सदस्यों द्वारा चुने गये

(नियमावली के नियम १८ (इ) के अनुसार)

१—श्रीयुत सेठ गोविन्द दासजी, रईस, जबलपुर
२— " बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त, रईस, नगवा, काशी
३— " बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
४— " पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग

विशेष

१—श्रीयुत केदारनाथजी गोयनका, मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली

सम्पादकीय

बृहत्संग्रहालय

दिल्ली-सम्मेलन के अवसर पर कई महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों के साथ एक यह भी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है कि—

"(क) जिन महानुभावों के पास हस्तलिखित पुस्तकें, हिन्दी के ताम्रपत्र, दानपत्र तथा अप्राप्य ऐतिहासिक पुस्तकें एवं वस्तुएँ हों उनसे यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि वे हिन्दी-संग्रहालय को सर्वांगपूर्ण बनाने तथा उन वस्तुओं की रक्षा के लिये उन्हें प्रदान करने की उदारता दिखावें।

(ख) कानपुर के तेरहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हिन्दी संग्रहालय के स्थापित होने के सम्बन्ध में जो मन्तव्य हुआ था उसकी ओर यह सम्मेलन पुनः समस्त हिन्दीभाषा-भाषियों का ध्यान आकर्षित करता है और उनसे अनुरोध करता है कि वे इस महत्व पूर्ण और आवश्यक कार्य की शीघ्रपूर्ति के लिये धन की उचित सहायता करें।"

कोई भी प्रस्ताव यदि काम में लाया जाय तो महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। यों तो नित्य ही किसी न किसी सभा-समिति में एक न एक प्रस्ताव पास हुआ ही करता है। किसी में अल्पाधिक मतविरोध होता है और कोई सर्वसम्मति से सहर्ष स्वीकृत कर लिया जाता है। पर उनमें से कितने प्रस्तावों के अनुसार कार्य किया जाता है, इसका उत्तर देने में हमें संकोच, लज्जा और निराशा का सामना करना पड़ता है। हम अन्य देशवासियों को यहाँ तक कह

डालने के लिये मौका देते हैं कि हिन्दुस्तानी तो आरम्भशूर और लम्बी लम्बी डींग हाँकनेवाले हुआ करते हैं; उनमें कार्य करने की शक्ति और कर्त्तव्यमार्ग पर डटे रहने का साहस नकारात्मक सा है। हमें अपने क्लीवत्व के कारण सब कुछ चुप चाप सुनना पड़ता है। सारांश यह कि यदि हम प्राणपण से अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यपथ पर आरूढ हो जायँ तो क्या मजाल कि कोई हमारी तरफ उँगली भी उठा सके।

वृहत्-संग्रहालय सम्बन्धी प्रस्ताव गतवर्ष कानपुर-सम्मेलन में स्वीकृत हुआ था। सम्मेलन की ओर से इस सम्बन्ध में धनसंग्रह करनेके लिये तुरन्त एक डेपुटेशन भी बाहर गया था। पहले तो कार्य बड़ी तेजी के साथ उठाया गया, पर पीछे कुछ कारणों से उसमें ढीलापन आ गया। हम अपनी कमजोरियाँ भली भाँति जानते हैं। दुर्भाग्यवश हमारी हिन्दीभाषा-भाषी जनता ने अभी तक राष्ट्रभाषा और तत्सम्बन्धी गूढ रहस्योंपर पर्याप्त विचार नहीं किया है। कुछ हमारी परतंत्रता का भी कारण हो सकता है। यदि आज यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव किसी अन्य स्वाधीनचेता और आत्माभिमानी देश के सम्मुख रक्खा जाता तो तुरन्त ही तन, मन और धन से लोग इस काम में जुट जाते। अस्तु; आज गतवर्ष का प्रस्ताव फिर दोहराया गया है। अब जितनी जल्दी हो सके हम लोगों को संग्रहालय-सम्बन्धी प्राचीन एवं अर्वाचीन वस्तुओं के एकत्रित करने में जी-जान से लग जाना चाहिये। क्या यह हमारे लिये लज्जा का विषय नहीं है कि हमारे यहाँ के प्राचीन लुप्तप्राय ग्रन्थ इंगलैण्ड और जर्मनी में जा विराजें, वहाँ उनपर टीका और भाष्य हों, सुलभ और शुद्ध संस्करण प्रकाशित हों, और हम केवल इतना ही कहकर संतोष करलें कि हमारे महर्षियों ने सभी विषयों पर अपूर्व ग्रन्थ लिखे थे, पर क्या करें अब उनका कुछ पता ही नहीं चलता? धन को जमीन में गाड़ देने की तरह हमारे यहाँ बाबा आदम के जमाने से एक यह भी प्रथा चली आ रही है कि पुस्तक किसी को दिखानी न चाहिये भले ही वह बस्ते में बँधी बँधी "दामकार्पणमस्तु" हो जाय।

सम्मेलन ने बृहत्संग्रहालय सम्बन्धी जो यह कार्य हाथ में लिया है वह स्वराज्य-सम्बन्धी किसी भी प्रश्न से कम महत्व का नहीं है। प्रत्येक स्वाधीन और जीवित जाति का प्राण तदीय साहित्य है। उसकी रक्षा करना, उस जाति का प्रधान कर्त्तव्य है। इस विचार से यदि भारतवर्ष स्वतंत्रता-देवी के चरणों की उपासना करना चाहता है, तो उसे सबसे पहले साहित्य-मन्दिर की स्थापना करनी होगी। इसी पवित्र मन्दिर में वह स्वतंत्रता-देवी की प्राणप्रतिष्ठा, उपासना और साक्षात्कार कर सकेगा। हमें आशा है कि समस्त हिन्दीभाषा-भाषी जनता अल्पकाल में ही संग्रहालय-भवन के निर्माण एवं उसमें सुरक्षित रखने के लिये संग्रहालय-सम्बन्धी वस्तुओं के संग्रह करने में एक अपूर्व और अनुपम आदर्श उपस्थित करेगी।

हिन्दी में कार्यवाही

दिल्ली-सम्मेलन के अवसर पर एक यह भी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है:—

"यह सम्मेलन व्यवस्थापिका सभाओं और डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों के हिन्दीभाषा-भाषी सदस्यों से अनुरोध करता है कि वे समस्त जनता की सुविधा का ध्यान कर इन संस्थाओंकी कार्रवाई हिन्दीभाषा में कराने का विशेष प्रयत्न करें।"

यह प्रस्ताव कम महत्व का नहीं है। इसपर तो हमें सबसे पहले विचार करना चाहिए। इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करने में अब हमें सुविधा भी काफी है, क्योंकि इन दिनों, सौभाग्य से, व्यवस्थापिका सभाओं और डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों में अधिकांश वही सदस्य हैं जो देश की दुरवस्था को दूर करने के लिये सर्वस्व त्याग देने पर उतारू हो गये हैं। स्वराज्यवादियों का सब से पहले अपनी संस्थाओं में यही कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे हिन्दी भाषा में स्वयं वहाँ की सब कार्रवाई करें और दूसरों से भी करावें। यदि वे जर्जरित जनता का भाग्य-निर्णय करने का दम भरते हैं, तो उनके कानों तक उन्हीं की भाषा द्वारा सन्देश पहुँचावें, और उनकी शिकायतों को उन्हीं के शब्दों में सुनने के लिये तैयार हों।

हर्ष का विषय है कि कुछ सदस्यों ने इस आवश्यक प्रश्न पर ध्यान दिया है। अभी कुछ दिन हुए, प्रयाग के माननीय सदस्य श्रीयुत सङ्गमलालजी अग्रवाल ने युक्तप्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में हिन्दी में बोलने की शपथ ली थी। उनका साहस सराहनीय है। किन्तु इस हर्षजनक सूचना के साथ ही हमें दुःख का भी अनुभव करना पड़ता है। यदि श्रीसंगमलालजी का साथ समस्त हिन्दी भाषा-भाषी सदस्य देते, तो कोई कारण नहीं था कि नौकरशाही को उनके सामने न झुक जाना पड़ता, और कौन्सिल में हिन्दी भाषा की तूती न बोलने लगती। अस्तु; अब हमारे देशभक्त सदस्यों का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे ऐसे ऐसे महत्व के प्रश्नों पर प्राण-पण से डट जावें, और जब तक अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त न कर लें, तब तक एक पैर भी पीछे न हटें।

हम आशा करते हैं कि सम्मेलन में स्वीकृत उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं और डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों के हिन्दीभाषा-भाषी सदस्य अपनी अपनी संस्थाओं की कार्रवाई जनता की सुविधा के लिये हिन्दीभाषा में कराने का विशेष रीति से प्रयत्न करेंगे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

उस दिन सन्ध्या समय अहल्याबाई घाट (दशाश्वमेध) पर आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने एक सभा में, जिसमें बंगाली सभ्य अधिक थे, देश सम्बन्धी कई आवश्यक अंगों पर बोलते हुए हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने के अर्थ निम्नलिखित भाषण किया था—

"......जब सुदूरवर्त्ती मद्रास प्रान्तवाले हिन्दी सीखते हैं, तब अन्य प्रान्तवालों को हिन्दी सीखने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि मद्रास के अतिरिक्त और सब प्रान्तों की भाषाएँ संस्कृतमूलक हैं, अतः परस्पर मिलती-जुलती हैं। महात्मा गान्धी ने जब कलकत्ते में पहले पहल हिन्दी सीखने और चरखा चलाने की चर्चा की, तब देश

के प्रमुख नेता गण हंसे थे, किन्तु पीछे मेरी समझ में आया कि महात्माजी ने बिलकुल ठीक कहा था। अंग्रेज हमारी दिल्लगी उड़ाते थे कि तुम्हारी कोई एक भाषा ही नहीं; महात्माजी का यह विचार बिलकुल ठीक है कि यदि लोग हिन्दी बोलना सीख लें, तो वह अभाव दूर हो जाय। बड़ौदा, गुजरात, बम्बई आदि में सर्वत्र लोग हिन्दी समझते हैं। अंग्रेज़ी भारत की भाषा नहीं हो सकती। कोकनाडा कांग्रेस में जितने आदमी जमा होते थे, उनमें केवल २ या ३ प्रतिशत अंग्रेजी समझ सकते थे। अंग्रेजी व्याख्यान दुभाषियों द्वारा समझाने पड़ते थे। यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा होती तो हम लोगों का इस आपत्ति का सामना न करना पड़ता। इसलिये मेरे विचार में भारतवर्ष भर की एक भाषा हिन्दी ही होनी चाहिये।"

महामना आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का उपर्युक्त विचार प्रत्येक राष्ट्रसेवी को हृदयंगम करना चाहिये। अब इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं रहा है कि बिना एक भाषा की सार्वभौमिकता के देश के भिन्न-भिन्न विचारों और भावों का एकीकरण नहीं हो सकता। और वह भाषा बाईस करोड़ लोगों के बोलचाल की भाषा हिन्दुस्तानी या हिन्दी हो सकती है। अङ्गरेजी भारत की राष्ट्रभाषा हो जायगी, यह केवल दुराशा का स्वप्न है। हर्ष का विषय है कि हमारे देश के प्रमुख कर्णधारों ने अन्य आवश्यक अंगों के साथ साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर भी अपना ध्यान आकृष्ट किया है। हमारी राय में तो यह भाषा-सम्बन्धी प्रश्न सबसे प्रथम और अनिवार्य प्रश्न होना चाहिये। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे हिन्दी पढ़े-लिखे भाई श्रीमान् राय के अनुपम शब्दों पर समुचित ध्यान देकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर समासीन करने के लिये अग्रसर होंगे ?

दिल्ली-सम्मेलन की कुछ विशेषताएँ

दिल्ली के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पर प्रायः सभी हिन्दीपत्रों ने कुछ न कुछ लिखा है। इस वर्ष का सम्मेलन कई दृष्टियों से सफल हुआ है। सम्मेलन में इस वर्ष कई सुयोग्य और लब्धप्रतिष्ठ

हिन्दी के विद्वान् तथा लेखक सम्मिलित हुए थे। पुरातत्व के प्रकांड पंडित श्रीमान् पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा, कविकुल कंठाभरण कविता-कामिनी-कान्त श्रीमान् पं० नाथूराम शंकर शर्मा "शंकर", हिन्दी के अनन्य उपासक पं० माधवरावजी सप्रे, साहित्य के प्राणपणसेवी श्रीयुत पं० गणेशविहारीजी मिश्र और पं० श्यामविहारी जी मिश्र, उद्भट आलोचक पं० पद्मसिंह जी शर्मा, सरस हास्यावतार पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, महामहोपाध्याय पंडितवर्य हरिनारायणजी शास्त्री, साहित्य विहारी पं० गिरिधर शर्माजी नवरत्न प्रभृति महारथियों का सम्मलन में सम्मिलित होना अपूर्व सौभाग्य का विषय था। सम्मेलन के सर्वस्व श्रीमान् टण्डनजी, कविवर पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, श्रीयुत चतुर्वेदी द्वारका प्रसादजी शर्मा, श्रीयुत पं० रामजी लालजी शर्मा, श्रीमान् रामदासजी गौड़, और पंडित रामरत्नजी अध्यापक तो घर के ही हैं, अतएव उपर्युक्त सूची में इन सज्जनों का नाम लिखना उचित नहीं था। अस्तु; इस साहित्य-मर्मज्ञ-मंडली के पधारने से सम्मेलन की शोभा कई गुनी बढ़ गई थी।

सभापति महोदय भी अंगुलियों पर गिने जानेवाले विद्यावयोवृद्ध आजन्म-साहित्य-सेवियों में से थे। आपका भाषण एक प्रकार से सुललित गद्य काव्य का रूप था। उपाध्यायजी ने हिन्दी, साहित्य और सम्मेलन इन तीनों शब्दों पर बहुत ही युक्तियुक्त विवेचन अभिव्यक्त किया है। यद्यपि मतभेद के लिये आपके भाषण में कतिपय स्थल मिलेंगे, तथापि कई दृष्टियों से वह अपूर्व और अनुपम कहा जा सकता है।

इस अधिवेशन में प्रस्ताव थोड़े, किन्तु महत्वपूर्ण, स्वीकृत हुए हैं। वृहत्संग्रहालय-सम्बन्धी, व्यवस्थापिका सभा आदि संस्थाओं में हिन्दीद्वारा कार्यवाही सम्बन्धी, और राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्बन्धी प्रस्ताव बहुत ही आवश्यक और महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। सम्मेलन को और अधिक साहित्यिक बनाने के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है और जिसके अनुसार तीन सज्जनों की

एक समिति बनाई गई है, वह हिन्दी-साहित्य-सेवियों के बड़े काम का कहा जा सकता है। क्या ही अच्छा हो, यदि हिन्दी-प्रेमी सज्जन इन प्रस्तावों को एक ही वर्ष के भीतर कार्यरूप में परिणत कर दिखावें।

उर्दू के सुदृढ़ गढ़ दिल्ली में हिन्दी-कवि-सम्मेलन का होना भी एक स्मरणीय बात है, और कविराज शंकरजी के सभापतित्व में उसका होना सोने में सुगंध कहना चाहिए। पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, सनेहीजी और पं० रामनरेशजी त्रिपाठी की कविताएँ बड़ी ही प्रभावोत्पादिनी थीं। सभापति महोदय की समस्या-पूर्त्तियां तो बेजोड़ ही थीं। उर्दू कवियों की कविताएँ भी बहुत अच्छी थीं। यदि पुरानी कविताएँ न पढ़ कर कविगण नयी नयी रचनाएँ सुनाते तो सम्मेलन और भी सफल माना जाता।

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश का सम्मेलन में पधारना एक विशेष सौभाग्य की बात थी। श्रीमान् बंबई-सम्मेलन में भी पधारे थे। श्रीमान् का हिन्दी-प्रेम सराहनीय है। क्या हमारे अन्य देशी-नरेश श्रीमान् बड़ौदा-नरेश का अनुकरण न करेंगे ?

इस वर्ष सम्मेलन में प्रतिनिधियों की संख्या संतोषप्रद नहीं रही। यदि हिन्दी-भक्त प्रतिनिधिगण उदासीनता व शिथिलता छोड़कर अधिक से अधिक संख्या में सम्मेलन में सम्मिलित होते, तो निःसंदेह सम्मेलन सर्वांग सफल कहा जा सकता। क्या हम आशा नहीं कर सकते कि भविष्य में हिन्दी-हितैषी आशातीत संख्या में, हिन्दी-प्रेम प्रकट करने के लिये, सम्मेलन में उपस्थित हुआ करेंगे ?

यदि हम अनन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमान् सेठ केदारनाथजी गोयेनका और पंडित उदित मिश्रजी का यहाँ सप्रेम स्मरण न करें, तो हमें कृतघ्नता का पात्र बनना पड़ेगा। स्वागत-कारिणी-समिति के यही दो अनमोल रत्न हैं। गोयेनकाजी का हिन्दी-प्रेम, सेवा-भाव और कार्य-तत्परता तो विशेष रूप से सराहनीय थी।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ

हिन्दी-संसार इसे भली प्रकार जानता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं द्वारा हिन्दी का कितना प्रचार हो रहा है।

सम्मेलन की तीन परीक्षाएँ हैं; प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा।

मध्यमा में पास होनेवाले सज्जन को 'विशारद' और उत्तमा में उत्तीर्ण होनेवाले को "साहित्य-रत्न" की उपाधि प्रदान की जाती है।

इसके अतिरिक्त प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं में ऊँचे नम्बर पानेवालों को अनेक स्वर्ण-पदक तथा रजत-पदक भी प्रदान किये जाते ह।

सन् ७१ से यह परीक्षाएँ प्रारंभ हुईं। शीघ्र ही हिन्दी-जगत् में इनका प्रचार हो गया। इस समय ७० केन्द्र हैं, जिनमें से २ सुदूरवर्ती ब्रह्म प्रदेश और ३ मद्रास प्रान्त में हैं। अनेक नये केन्द्र बनाने के लिये हमारे पास पत्र हैं जिन पर विचार हो रहा है।

परीक्षाओं की सर्वप्रियता दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। जनता में पूर्ण सम्मान तो था ही—अनेक देशी राज्य और म्युनिस्पिल बोर्डों ने इन्हें प्रधानता दी है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का ध्यान भी आकर्षित हुआ है।

इन्दौर (महाराष्ट्र) राज्य ने अपने शिक्षकों के लिये सम्मेलन का विशारद होने पर वेतन-वृद्धि का नियम कर दिया है। कोटा राज्य ने सम्मेलन के उपाधिधारियों को शिक्षा-विभाग में ऊँचे पद दिये हैं। हाल ही में जबलपुर-म्युनिस्पिलेटी और बाँदा ज़िला-बोर्ड ने अपने शिक्षकों को सम्मेलन-परीक्षा पास करने के लिये उत्तेजित किया है। अनेक बोर्ड ऐसा करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

सम्मेलन इस कार्य को और भी विशद रूप दे रहा है। प्रान्तीय तथा देशी राज्यों के शिक्षा-विभागों से लिखा पढ़ी हो रही है कि हमारा इस काम में हाथ बटावें और सम्मेलन-उपाधि-धारियों को योग्य पद प्रदान करें तथा वेतनादि में वृद्धि करके उचित सम्मान करें। आशा है, इसमें हमें सफलता होगी।

हिन्दी-साहित्य-प्रेमी नवयुवकों से प्रार्थना है कि वे सम्मेलन-परीक्षाओं में सम्मिलित होकर योग्यता और ख्याति के साथ ही साथ मातृभाषा-प्रेम का परिचय देने के अवसर को हाथ से न जाने दें। नये केन्द्र खोलने तथा परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये शीघ्रता से पत्र भेजें। आगामी परीक्षाएँ अक्तूबर मास में होंगी और आषाढ़ शुक्ला १५ शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि है। एक आने के टिकट में परीक्षाओं की विवरण पत्रिका मँगा कर पूरा हाल पढ़िये।

आपका—
अध्यापक रामरत्न
परीक्षा मंत्री

पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन मुलतान में होना स्थिर हुआ है। सम्मेलन के साथ ही कवि-सम्मेलन भी होगा। सम्मेलन मई के अन्तिम सप्ताह में होना निश्चय हुआ है। अधिवेशन की स्वागत-समिति बन गयी है। धन एकत्रित किया जा रहा है। सम्मेलन को हर प्रकार से सफल बनाने की चेष्टा की जा रही है। निबन्धों की सूची व कवि-सम्मेलन की समस्याएं निम्नलिखित हैं। आशा है कि इस अधिवेशन को सफल बनाने में प्रान्तीय भाई हर प्रकार से सहायता देंगे।

निबन्ध-सूची

(१) स्वराज्य और राष्ट्रभाषा (२) पञ्जाबी साहित्यका दिग्दर्शन (३) पञ्जाब की प्रकाशित हिन्दी-कविता (४) पञ्जाब में प्रचलित लिपियां (५) पञ्जाबी बोलियों का दिग्दर्शन (६) राष्ट्रीयोन्नति में साहित्यका स्थान (७) पञ्जाब और सिन्ध में प्रचलित खण्डे अक्षर उनके भिन्न भिन्न रूप, प्रत्येक रूप का प्रचार-क्षेत्र आदि और लिपि विषयक समस्या (८) टाकरी लिपि की विद्यमान स्थिति (यह लिपि

पञ्जाब के पहाड़ों में चलती हैं) (१०) पञ्जाबी युवकोंका साहित्यिक जीवन (११) पञ्जाबी स्त्रियों का साहित्यिक जीवन (१२) हरियाना प्रदेशमें हिन्दी की स्थिति (हरियाना, रोहतक, गुड़गांव, हिसार) (१३) पञ्जाब के शिक्षणालयों में हिन्दी (१४) पञ्जाबी जनता में प्राचीन साहित्य (१५) आर्य समाज और हिन्दी (१६) गुरुगोविन्दसिंह की कविता (१७) पश्तो भाषा (१८) बलोची बोलियां (१९) काश्मीर की बोलियों का दिग्दर्शन (२०) मुलतान का इतिहास (२१) यौधेया (जोहियों) का इतिहास (२२) आर्यभाषा और आर्यलिपि (२३) पञ्जाब की साहित्यिक निर्जीवता ।

समस्याएं—१ धार तलवार २ शीतल छाया ३ भर प्याला ।

नोट—ता० २० मई तक समस्या-पूर्तियाँ व निबन्ध निम्नलिखित पते से आ जाने चाहिये ।

मन्त्री, हितकारी पुस्तकालय
मुलतान नगर ।

सम्बद्ध संस्थाओं के मंत्रियों को सूचना

प्रिय महाशय,

आपकी संस्था हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से सम्बद्ध है। उसका पूरा विवरण कृपया यथासम्भव शीघ्र कार्यालय को भेज दीजिये। निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अवश्य आने चाहियें—

१—वर्त्तमान पदाधिकारी कौन कौन है ?

२—गत वर्ष संस्थाने क्या क्या काम किया ?

३—इस वर्ष कौन सा कार्य हाथ में है ?

४—वर्ष की समाप्ति के दिन संस्था के पास धन कितना था ?

५—संस्था का कोई निजी पुस्तकालय है या नहीं ? है तो उसमें कितनी पुस्तकें हैं, और वह किस दशा में हैं ?

६—आपकी संस्था को किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता है या नहीं ? है तो किस प्रकार की ?

७—क्या आपकी संस्था अपने ज़िले की अदालतों में हिन्दी अर्जी लेखक रखने का प्रबन्ध करेगी ? यदि हां तो कबसे ? नहीं तो क्यों ?

(यह प्रश्न केवल संयुक्त प्रान्त की संबद्ध संस्थाओं के लिये हैं)

८—आपकी संस्था ने गतवर्ष हिन्दी-प्रचार के लिये अपने नगर या ज़िले में क्या किया ? यदि कुछ नहीं, तो हिन्दी-प्रचार के सम्बन्ध में किस प्रकार की सहायता आपको सभा ले और दे सकती है ?

निवेदक—

रामनरेश त्रिपाठी

प्रचारमंत्री

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित पुस्तकें पौने मूल्य पर मिल सकेंगी—

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

लालाजी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पंथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथास्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठ संख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुल जी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। हिन्दू-धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥=)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२९.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ९; वैशाख १९८१

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)

प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्ण १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है, जो भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाक व्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य२=) है । २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें पत्रिका के सम्पादक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से और प्रबन्ध संवन्धी पत्र 'मन्त्री' हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के पते से आना चाहिए।

५—कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने, प्रकाश करने वा न करने का अधिकार सम्पादक को है।

आवश्यक सूचना

६—"आज से सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी।

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) रुपया सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तक लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ़ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं। अतः सर्व साधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहां नहीं मिलतीं।

निवेदक—

संयोजक

पुस्तक-प्रकाशन-समिति

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग।

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थ रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर उनसे लिखाये और प्रकाशित कराये जायँगे। अब तक इस माला ने निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव है, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कष्ट को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने टिप्पणी और शब्दार्थ लिख दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और साहित्यिक आनंद लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दर्शक तथा स्फुटक कवित्तों का संग्रह किया गया है। वह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८४, मूल्य ॥~)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ; उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गंभीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भांति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी मध्यमा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

३—भारतगीत

लेखक—श्री पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठकजी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय विघूर्णित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन संचार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है इसकी प्रस्तावना साहित्य मर्मज्ञ श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास
(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है अब तक हिन्दी में भारतवष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। इस पुस्तक में भारतवर्ष के उन पृष्ठों का दर्शन मिलेगा जहाँ से सभ्यता का सर्व प्रथम उदय हुआ था, जहां से आध्यात्मिक शान्ति का सदेश सारे संसार में पहुँचाया गया था। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक स्वीकृत हुई है। सजिल्द पृष्ठ संख्या ४०६, मल्य केवल १॥)

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियां दी थीं, कि निःसंदेह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खंडन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी संकलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राण नहीं तो क्या है ? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस संबंधी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का चित्र देखना हो, तो इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। कठिनता दूर करने के लिए इन कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलंकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है। प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिंगल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिंगल शास्त्र के गूढ़ रहस्य सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उदाहरण भी उत्तम हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह। प्रथमा परीक्षा में स्वीकृत। मूल्य ।)

९—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का चित्राङ्कण किया किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान पतन का क्रम इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि उच्च विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुंदर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ५४८, मूल्य २।)

१२—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस. सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की है। संग्रह सामयिक और उपादेय हुआ है। यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत हुई है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

१३—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सागर में से २५० पद-रत्न संग्रह किये गये हैं। जहां तक हो सका है, कई प्रतियों से इनका पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। उसे पार ही कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की खूबी भी काफ़ी तौर से दर्शायी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएं भी लिखी गयी हैं। उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत। एण्टिक काग़ज़ पर संस्करण सजिल्द पृष्ठ संख्या ४२५ मूल्य २)

१४—विहारी-संग्रह

संपादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की बिहारी सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटासा संग्रह तैयार किया गया है। जहां तक संभव हुआ है इसमें एक दम शृंगारी दोहों का समावेश नहीं किया गया है, केवल ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना

किसी संकोच के प्रथमा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ।)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

संपादक—श्री वियोगी हरि

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार संकलन किया गया है। इस संग्रह की चार विशेषताएं हैं:—

(१) सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्य-नारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया है, कोई प्रसिद्ध ब्रजभाषा का कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गई हैं जिससे साधारण पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

(४) प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवन चरित और उसकी कविता की सूक्ष्म आलोचना भी की गई है।

संक्षेप में, प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को आद्यन्त इस ब्रज-माधुरी-सार का अवलोकन करना चाहिये। पृष्ठ संख्या ६३२, मूल्य सजिल्द संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

संपादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसीकृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक इस भाग में समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दियागया है। पृष्ठ संख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और सजिल्द का १।) रु०

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११ } वैशाख, संवत् १९८१ { अङ्क ९

अनन्यता

रह्यौ कोऊ काहू मनहि दियैं।
मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियैं॥
जे अवतार कदम्ब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हियैं।
तेऊ उमगि तजत मर्जादा, बन विहार रस पियैं॥
खोये रतन फिरत जे घर घर, कौन काज इमि जियैं।
हित हरिवंस अनतु सचु नाहीं, बिन या रसहि लियैं॥

—श्री गो० हित हरिवंश

हिन्दी में अन्ध-परम्परा

[ले०—श्रीयुत पं० गुरुप्रसाद पांडेय, बी. ए. एल-एल. बी. 'साहित्यरत्न']

हिन्दी की वर्त्तमान हर्षवर्द्धिनी उन्नति ने हिन्दी के प्रेमियों के हृदय में बड़ी बड़ी आशाएँ उत्पन्न कर दीं है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का जटिल प्रश्न, जो किसी समय केवल कल्पनामात्र समझा जाता था, अब सुगम तथा सम्भव सा समझ पड़ने लगा है। यह हिन्दी की निरवरत उन्नति का ही फल है कि भारतवर्ष के विविध विश्वविद्यालय अपने यहाँ पृथक् हिन्दी-विभाग खोलने के लिये वाध्य हुए हैं। हिन्दी के अच्छे लेखकों की परिमार्जित अभिव्यञ्जन-शक्ति, तथा सरस, सरल आकर्षक शैली हिन्दी की भावी उन्नति की सूचिका है। विविध विषयों के अध्ययन के लिये इस समय हिन्दी में अभिव्यञ्जन-शक्ति (Power of Expression) के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। अभिव्यञ्जन-शक्ति की निर्वलता के ही कारण विश्वविद्यालयों के विधाता इसको अध्ययन-मार्ग बनाने में कुछ संकुचित होते हैं। उनका संकुचित होना किसी अंश तक ठीक भी है, क्योंकि हिन्दी में अभिव्यञ्जन-शक्ति के विकास की अभी बड़ी आवश्यकता है। यह विकास सुष्ठु रूप तभी धारण कर सकता है, जब हिन्दी के पथ-प्रदर्शक बड़ी सावधानी से काम करें, और साधारण लेखक उन प्रतिष्ठित पथ-प्रदर्शकों का यथासम्भव अनुकरण करें। ऐसा न करने से उन्नति के स्थान अवनति ही होने का भय है।

आजकल हिन्दी का विकास तो अवश्य हो रहा है, उसके शब्दों तथा वाक्यों के भाण्डार की वृद्धि तो हो रही है, किन्तु इस विकास के साथ ही साथ "अंधाधुन्ध" का साम्राज्य भी बढ़ता हुआ दृष्टिगत होता है। यह "अंधाधुन्ध" एक भाँति से नैसर्गिक ही है, क्योंकि क्षेत्रों में उप्त अनाज के पौधों के साथ नाना भाँति के अनपेक्षित पौधे उग ही आते हैं। उनका निराकरण कृषक का कर्तव्य है। हिन्दी

में इस समय नये नये शब्द तथा मुहाविरों की दुकान सी खुल गयी है। लोग विना विचार किये हुए जो कुछ मन में आता है लिख मारते हैं। प्रतिष्ठित विद्वान् ऐसे अशुद्ध वाक्यों तथा मुहाविरों की अशुद्धता को भली भाँति समझते हुए भी उनकी अवहेलना करते हैं, किन्तु इस अवहेलना का भावी प्रभाव कदापि अच्छा न होगा। हिन्दी-साहित्य के मलिन तथा कलुषित हो जाने का भय है। व्याकरण के सर्व-सम्मानित नियमों का उल्लंघन कर लेखक-गण हिन्दी के सौन्दर्य को कदापि नहीं बढ़ा सकते। नियमबद्ध सदाचार ही हिन्दी की वास्तविक उन्नति का पोषक है, व्यभिचार से उत्पत्ति चाहे अधिक हो जाय, किन्तु निर्बल, कलुषित तथा सौन्दर्यहीन होने के कारण ऐसी उत्पत्ति अनुत्पत्ति से भी गिरी-गुजरी है। अभी थोड़े ही दिन हुए, हमें एक स्थान पर "विद्वानोपयोगी" तथा "स्त्रियोपकारिणी" ये दो शब्द पढ़ने को मिले। इन शब्दों की आकृति को देखकर हृदय को वास्तविक खेद हुआ। हम नहीं जानते कि ऐसी भद्दी, ग्राम्य अशुद्धियों के लिये सुशिक्षित लेखक कहाँ तक क्षम्य हैं। उपरितन शब्दों में संधियों की जो अशुद्धियां की गई हैं, वे एक बालक को भी लज्जित करने के लिये काफ़ी हैं, विद्वानों की क्या बात। हिन्दी जानने तथा लिखने के लिये संस्कृत भाषा के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है, और यद्यपि हम हिन्दी को संस्कृत की भाँति जटिल नहीं बनाना चाहते, तथापि शुद्ध हिन्दी के लिखने में साधारण संस्कृत के नियमों का पालन अनिवार्य सा प्रतीत होता है। "विद्वानोपयोगी" के स्थान पर यदि "विद्वदुपयोगी" होता तो कोई आपत्ति न होती। इसी प्रकार दूसरे शब्द में भी "स्त्री" शब्द को "स्त्रिय" शब्द मान लिया है। ऐसी अशुद्धियां बहुधा शीघ्रता तथा असावधानता के कारण हो जाती हैं, किन्तु जब हिन्दी के उदीयमान लेखक ऐसी अक्षम्य अशुद्धियां करेंगे, तो हिन्दी की अभिव्यञ्जन-शक्ति की उन्नति कैसे हो सकेगी? व्याकरण की महत्ता को बढ़ाना, वास्तव, में भाषा को कठिन बनाना है, किन्तु व्याकरण के नियमों से रहित कर देना भी उसको कलुषित हो जाने के लिये

द्वार खोल देना है। आजकल हिन्दी में कितने ऐसे मुहाविरे देखने में आते हैं, जो सर्वथा अशुद्ध हैं, और जिनको पढ़कर सहसा हँसी आ जाती है। दुर्भाग्यवश लेखकों की असावधानता से ऐसे अशुद्ध शब्दों, वाक्यों तथा मुहाविरों का प्रचार प्रचण्ड रूप धारण कर रहा है। उत्साह के कारण लेखकों का ध्यान बहुधा रचना के भावों की ओर प्रेरित हो जाता है, और साहित्यिक गुणों की ओर उनकी दृष्टि कम आकर्षित होती है, इसी कारण भावों के अच्छे रहते हुए भी आधुनिक रचनाओं में अनेक साहित्यिक दूषण दृष्टिगत होते हैं। शुद्ध हिन्दी लिखना इतना सरल काम नहीं, जितना लोग समझते हैं। शुद्ध हिन्दी लिखने की योग्यता प्राप्त करने के लिये वर्षों का पुस्तकावलोकन तथा अभ्यास भी अपर्याप्त है। आजकल हिन्दी के प्रेमियों में बहुधा यह देखा जाता है, कि वे जहाँ दो चार लेख लिखने योग्य हो गये, अपने को हिन्दी का प्रकाण्ड पण्डित समझने लगते हैं। वे समझते हैं कि हिन्दी-साहित्य के अनुशीलन की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है, हिन्दी-साहित्य में धरा ही क्या है! ऐसे नवोत्साहियों की अवहेलना-पूर्ण तुच्छ दृष्टि ही के कारण हिन्दी में कितने अनभिलषित पदों तथा शब्दों का प्रचार बढ़ता जा रहा है।

हिन्दी की आशा-जनक उन्नति को देखकर यह विश्वास होता है कि थोड़े ही दिनों में यह विश्व-विद्यालयों में शिक्षण-माध्यम बना दी जायगी, और शिक्षण का समस्त कार्य इसी द्वारा किया जाने लगेगा। अपनी निरन्तर उन्नति के कारण अब यह एक पृथक् भाषा हो गयी है, और अंग्रेजी में इसको वर्नाक्यूलर कहना अशुद्ध है, क्योंकि "इङ्गलैण्ड" में वर्नाक्यूलर शब्द का प्रयोग स्थान स्थान पर बोली जानेवाली बोलियों के लिये किया जाता है, किसी विशेष भाषा के लिये नहीं। हिन्दी अब केवल कतिपय प्रान्तों में व्यवहार की जानेवाली "बोली" ही नहीं रह गयी, इसने एक विशद गौरवान्वित भाषा का रूप धारण कर लिया है, अतएव अब इसमें मनचाही अंधाधुन्ध की मात्रा जहाँ तक हो सके कम होनी चाहिये।

अंधाधुन्ध के निवारण के लिये हमें दो चार प्रश्नों पर ध्यान देना अत्यन्तावश्यक है:—

(१) जो अशुद्ध शब्द तथा वाक्य हिन्दी में प्रचलित हो गये हैं, उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, अथवा उनको वैसा ही बना रहने देना चाहिए ?

(२) हिन्दी-वाक्यों की रचना में संस्कृत व्याकरण का कहां तक सहारा लेना उचित है ?

(३) हिन्दी-वाक्यों की रचना में अँगरेजी तथा अन्य भाषा के व्याकरणों का कहां तक सहारा लेना चाहिए ?

श्रीयुत पं० अक्षयवट मिश्र ने गत कार्तिक मास की "माधुरी" के सुमन-संचय विभाग में "हिन्दी में अंध-परम्परा" शीर्षक का एक छोटा सा लेख छपाकर विद्वानों का चित्त प्रस्तुत प्रश्नों की ओर आकर्षित किया है। श्रीयुत मिश्रजी ने इस लेख में जो भाव प्रकट किये है, उनसे यह विदित होता है, कि मिश्र जी हिन्दी के लिये संस्कृत-व्याकरणों की महत्ता उतनी ही अधिक समझते हैं जितनी संस्कृत के लिये। मिश्र जी के लेख के पढ़ने से यह मालूम होता है कि वे हिन्दी के एक स्वतंत्र भाषा होने के अधिकार को ही मिटा देना चाहते हैं। उनकी इस प्रकार की दलालों से कि "यदि संस्कृत में ऐसा नहीं होता, तो हिन्दी में कैसे हो सकता है" यह स्पष्ट विदित होता है कि मिश्रजी हिन्दी को संस्कृत की "लौंडी" बनाना चाहते हैं। मिश्रजी का कथन है कि हिन्दी में 'इस काम को कोई भी नहीं कर सकता' ऐसा लिखना अशुद्ध है क्योंकि "कोई" शब्द में संस्कृत का 'अपि' (कोई = कोऽपि) विद्यमान है, और ऐसे स्थान पर "भी" शब्द का फिर से प्रयोग करना व्यर्थ है।

ऐसे अवसरों पर हमें यह विचार करना चाहिये कि इस प्रकार के विद्रोहात्मक आक्रमण करके हम कहां तक अपनी भाषा को उन्नत कर सकते हैं। व्युत्पति के अनुसार चाहे मिश्रजी का कहना किसी अंश तक ठीक भी हो, किन्तु अब ऐसे वाक्य हिन्दी भाषा के

प्रचलित इडियम (Idiom) हो गये हैं, और उनका वहिष्कार करना सर्वथा अनुचित तथा असम्भव है। "कोई" अब एक अनिश्चय वाचक सर्वनाम होगया है और इसमें "भी" उपस्थित है, इसका अब किसी को ध्यान तक नहीं रह गया है। सच पूछिये तो हिन्दी का "कोई" अब संस्कृत के "कश्चित्" के बराबर है, कोऽपि के नहीं। जो मुहाविरे हिन्दी में प्रचलित हो गये हैं, और जिनका गौरव प्रतिष्ठित लेखकों ने अपनी परिमार्जित लेखनी द्वारा बढ़ा दिया है, चाहे वे संस्कृत व्याकरण के विरुद्ध ही क्यों न हों, उनका हिन्दीभाषा से वहिष्कार करना असम्भव है, और उनके वहिष्कार करने का प्रयत्न सदैव निष्फल होगा। यदि सम्पूर्ण हिन्दीभाषा संस्कृत के व्याकरण ही के अनुसार होती; तो संस्कृत और हिन्दी में भेद ही क्या होता? हिन्दी संस्कृत के अधीन नहीं है, यह स्वयं एक स्वतंत्र और जीवित भाषा है; यह संस्कृत व्याकरण के नियमों से प्रभावित हो सकती है, किन्तु संस्कृत व्याकरण का साम्राज्य इसके ऊपर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह संस्कृत की पुत्री है, तथापि इसको संस्कृत की परिचारिका समझना नितान्त भ्रांति पूर्ण होगा। संस्कृत भाषा के सूक्ष्म तथा गूढ़ व्याकरण के नियमों से यह कदापि बाँधी नहीं जा सकती, और इसको बाँधने की चेष्टा करना भी हितकर न होगा। किसी जीवित भाषा का सब से बड़ा प्रामाणिक व्याकरण उसके मुहाविरों का प्रचलित प्रयोग है। यदि ये मुहाविरे व्याकरणानुसार अशुद्ध हैं, तो व्याकरण को ही अपने रूप को परिवर्त्तित करना होगा। व्याकरण सदैव भाषा का अनुयायी रहा है, भाषा उसकी अनुगामिनी कभी न थी, और न होगी। ऐसे अवसरों पर हमें श्रीहर्ष का निम्नलिखित श्लोक याद आता है:—

भङ्क्तुं प्रभु व्याकरणस्य दर्पं
पद प्रयोगा ध्वनि लोक एष:;
शशो पदस्यास्ति शशीति चोक्तो
मृगो यदस्यास्ति मृगीति नोक्तः॥

अर्थात् पद-प्रयोग के मार्ग में व्याकरण के दर्प को तो यह लोक ही तोड़ डालता है। चन्द्र के पेट में शश है, इसीलिये उसको "शशी" कहते हैं, किन्तु उसके (पेट में) मृग के रहते हुए भी कोई उसे "मृगी" नहीं कहता:—यद्यपि व्याकरणानुसार शुद्धता से उसको "मृगी" कह सकते हैं।

हिन्दीभाषा में कितने ही ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जिनका प्रयोग हिन्दी के उच्च कोटि के लेखक करते है, किन्तु जो संस्कृत के व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं। उदाहरण के लिये हम "पुनीत" "मनोकामना" "तत्कालीन" इत्यादि शब्दों को लेते हैं। संस्कृत के व्याकरण के अनुसार ये शब्द कदापि शुद्ध नहीं हैं, किन्तु प्रचार-बाहुल्य से अब हिन्दी में इनको कोई अशुद्ध कहने का साहस तक नहीं करता। सारांश यह कि जो शब्द अथवा वाक्य हिन्दी भाषा में प्रचलित हो गये हैं, उनका बहिष्कार करना अब असम्भव है, चाहे वे संस्कृत के जटिल व्याकरण के अनुसार अशुद्ध ही क्यों न हों। अब, हमें दूसरे प्रश्न की विवेचना करनी चाहिए।

मिश्र महोदय ने लिङ्गों पर विचार करते हुए अपने लेख में ऐसी बातें कही हैं, जिनको पढ़कर सहसा हँसी आ जाती है। वास्तव में, उनके लिङ्गविषयक विचारों में बड़ा मनोरञ्जन भरा है आप कहते हैं कि "जिन शब्दों के लिये पाणिनि तथा कोशकार चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि ये शब्द पुलिङ्ग हैं, उन्हीं शब्दों को कुछ हिन्दीवाले स्त्रीलिंग लिख देते हैं। सचमुच मिश्र जी ! बड़े गज़ब की बात है, ज़माना बड़ा बुरा लगा है ! पाणिनि तथा कोशकारों का अपमान आप कैसे सह सकते हैं ? हिन्दी की चाहे उन्नति हो या न हो, उसको संस्कृत की लौंड़ी ही बन कर चलना चाहिए !!

पाणिनि के सूत्र तथा कोशकारों के वाक्य संस्कृत भाषा के लिये हैं, हिन्दी के ऊपर उनकी सत्ता कदापि नहीं जम सकती। यदि हिन्दी के लेखक उनका अनुकरण करने लगें, तो उनको "देवता अच्छी हैं" और "दाराएँ अच्छा हैं" इत्यादि अत्यन्त हास्यास्पद

वाक्यों का प्रयोग करना होगा। हिन्दी में हम लिखते हैं कि "उनका व्यय बढ़ गया किन्तु आय कम हो गयी।" संस्कृत में बिल्कुल इसका उल्टा ही प्रचार है, वहाँ "आय" और "व्यय" दोनों पुलिङ्ग हैं। संस्कृत-कोशकारों ने तो समस्त चेतनाओं के आधार "ब्रह्म" को भी नपुंसकत्व के गर्त में ढकेल दिया है, बेचारी हिन्दी की इतनी हिम्मत कहां कि "ब्रह्म" का अपमान करे !

संस्कृत तथा हिन्दी के लिंग-विचार में समता कदापि नहीं हो सकती। इसका प्रथम कारण यह है कि हिन्दी में नपुंसक लिंग होता ही नहीं है और जो शब्द संस्कृत में नपुंसक-लिंग हैं वे हिन्दी में स्त्री-लिङ्ग तथा पुंल्लिंग में प्रथानुसार विभाजित हो जायेंगे; दूसरे जो शब्द हिन्दी में अब प्रचलित हो गये हैं, उनके लिङ्गों में व्यतिक्रम करना बुद्धिमत्ता से परे होगा। किन्तु जो नवीन शब्द अब संस्कृत से लिये जांय, उनका, जहां तक सम्भव हो, उसी लिंग में प्रयोग करना चाहिए, जिसमें कि उसका प्रयोग संस्कृत में किया जाता है। अब ऐसा ही करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसा ही करने से हिन्दी की राष्ट्रीयता स्थापित हो सकती है, नहीं तो मदरासी, गुजराती, तथा बङ्गाली इत्यादि भिन्न भाषाभाषी मनुष्यों को हिन्दी के सीखने में बड़ी असुविधा होगी।

हिन्दीभाषा पर केवल संस्कृत व्याकरण का ही प्रभाव नहीं पड़ा हैं, यह उर्दू, फारसी, अरबी, तथा अँगरेजी इत्यादि अन्य भाषाओं के व्याकरणों से भी प्रभावित हुई है। यही कारण है कि हिन्दी में बहुत से ऐसे वाक्य दृष्टिगत होते हैं, जो संस्कृत के व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं, किन्तु जिनको अशुद्ध समझना अशुद्ध है। मिश्र महोदय ने "पेटी में से दस रुपये निकाल लो" ऐसे वाक्यों में "में" और "से" के एकत्र आ जाने पर भी अपनी नाराजगी प्रकट की है। उनका कथन है कि "में" "से" दोनों विभक्तियों का एक संग आना अयुक्त है। यह भी उनकी विचार-संकीर्णता है। कदाचित् वे "पेटी से दस रुपये निकाल लो" और "पेटी में से दस रुपये निकाल

लो" का अन्तर ही नहीं समझते ! ऐसे वाक्य उर्दू, फारसी, अङ्गरेजी, फ्रैंच इत्यादि सभी जीवित भाषाओं में प्रचलित हैं, और उनके प्रचार का कारण इन भाषाओं का विकास है। अङ्गरेजी में Double Preposition के प्रयोग का बड़ा प्रचार है और व्याकरणानुसार वह शुद्ध भी है। अंगरेजी में He came from on high तथा He was selected from among the best" इत्यादि कितने ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है जहां पर दो Preposition आते हैं। संस्कृत-व्याकरण के अनुसार भी "में" तो विभक्ति का चिन्ह है और "से" पृथक् एक अव्यय है। मिश्रजी का यह कहना कि यहां पर विभक्ति में विभक्ति लगाई गई है भ्रांति-पूर्ण है। हम केवल अपने मनोगत भावों को भली भांति प्रकट करने के लिये ही ऐसे सूक्ष्म अन्तर वाले वाक्यों का प्रयोग करते हैं। भाषा के विकास के लिये ऐसे वाक्य अनिवार्य हैं। अंगरेजी भाषा में Carlyle तथा Emerson ने न जाने कितने शब्द गढ़ डाले, और यह भी कहा जा सकता है कि इन अशुद्ध शब्दों के प्रयोग के बिना वे कदापि अपने हृद्गत भावों को ससंतोष न प्रकट कर सकते। इसी युक्ति से "चातुर्यता" शब्द का भी समर्थन किया जा सकता है। वास्तव में "चातुर्य" के स्थान में साधारणतः "चातुर्यता" का प्रयोग करना अशुद्ध है, किन्तु कई स्थलों पर इसका प्रयोग क्षम्य कहा जा सकता है, जैसे "कविता में" अथवा ऐसी जगह जहां पर दुहरी संज्ञा वक्ता अथवा लेखक के सूक्ष्म हृद्गत भावों के प्रकाश के लिये आवश्यक है, और जहां "चातुर्य" शब्द भावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। जैसे जहां "चातुर्य" में चेतनत्व का आरोपण है, वहां इससे भाववाचक संज्ञा बनाने में "चातुर्यता" का कहना अशुद्ध न होगा।

संस्कृत-व्याकरण के घनिष्ठ प्रेमी विद्वान् हिन्दी की सार्वलौकिकता (catholicity) को ईर्षा की दृष्टि से देखते हैं। उनको यह बात असह्य है कि हिन्दी भाषा उर्दू, मराठी, अंगरेजी, फारसी, बङ्गाली, गुजराती, फ्रैंच, इत्यादि भाषाओं के शब्दों तथा व्याकरण के नियमों

से प्रभावित हो। कदाचित् उनकी इच्छा यह है कि 'हिन्दी' केवल संस्कृत की ही आभारी बने। किन्तु हमारे विचार में यह उनकी हृदय-संकीर्णता है। हिन्दी की उपमा उस नदी से दी जा सकती है जो निकली तो एक पहाड़ से है, पर जिसके जल की वृद्धि और बहुत सी नदियों के मिलने से हुई है। हिन्दी का सम्बन्ध संस्कृत भाषा के साथ और भाषाओं की अपेक्षा अवश्य अधिक है, किन्तु अन्यान्य भाषा के व्याकरणों ने भी इस पर बड़ा प्रभाव डाला है। इसीलिये इसमें प्रचलित वाक्यों की शुद्धि तथा अशुद्धि हम केवल संस्कृत-व्याकरण पर ही दृष्टि डाल कर नहीं कर सकते, इसके लिये हमें कई भाषाओं के व्याकरण पर दृष्टि डालनी चाहिये।

मिश्र महोदय के लेख से यह प्रतीत होता है कि वे व्याकरण विशेषतः संस्कृत-व्याकरण के अंध-प्रेमी हैं, किन्तु आश्चर्य यह है कि जिस लेख में उन्होंने लेखकों के (कल्पित) व्याकरण-विरुद्ध हिन्दी लिखने पर नाक भौं चढ़ाई है, उसी लेख में आप ने ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया है, जो हमको सर्वथा व्याकरण-विरुद्ध मालूम होते हैं। आप लिखते हैं:—"हिन्दी में जो अन्ध-परम्परा-चल निकली है, व्याकरण तथा व्युत्पत्ति-क्रम से सर्वथा अशुद्ध प्रयोगों का प्रचार बढ़ रहा है, उसके संशोधन और निवारण का कोई उपाय नहीं किया गया।"

चतुर पाठक-वृन्द आप के उपर्युक्त वाक्य से ही आप की हिन्दी की विद्वत्ता तथा आपके एक मात्र मौलिक विचारों के मूल्य का अनुमान कर सकते हैं, अधिक लिखने की आवश्यता नहीं।

रस के छींटे

[ले०—श्रीयुत पं० मदनलाल चतुर्वेदी]

(१)

धेनु चराय घरै हरि आवहिं ।
तन कारी कामरि सोहति ज्यों नीरद पै नीरद छवि छावहिं ॥

उत घनस्याम स्याम मुख पै इत सन्ध्या-गोरज छाई ।
असद खिले जनु नील कौंल पै सुमन रेनु बगराई ॥

मोर मुकुट माथे पै लहरत छटा चौगुनी कीन्हीं ।
मनों राहुडर, आस त्यागि शिव, स्याम सरन ससि लीन्हीं ॥

पीत पटा कटि तट फहरत जनु नूरनदी लहरानी ।
कैधौं पावस निरखि बीजुरी बारिद सों लपिटानी ॥

कुञ्जगली ह्वैकैं निकरे नित मूरि चैन की पायें ।
ज्यों मदकल मधु छकन मधुवृत मालतितें उड़ि आयें ॥

तरनि-बिम्ब त्यों होत तिरोहित पहुँचे घरै कन्हाई ।
लखि व्रज-बनिता मनसिज अर्चति साध पुजावन धाई ॥

बनि या न्याय अहो व्रजठाकुर ! तो पद करौं बसेरो ।
माधव मीत मदन हू तेरो भयो चहतु है चेरो ॥

(२)

केहि विधि कहा कहौं ।
किते जाउँ कहुँ ठौर न दीसै काकी सरन गहौं ॥

प्रीति प्रतीति सिरानी सजनी, ग्यात न, काहे जिऔं ।
मोहन मोह न; मोहन के बिनु विषके घूँट पिऔं ॥

टूक टूक जो पै हिय होतो जरि बरि होती खेह ।
अपुढारे घनस्याम सान्ति हित बरसावत मृदु मेह ॥

हिय की हौस बिलीन भई हिय परी निबिरि तमकूप ।
भलीभाँति छिन चाह भरे चख देखि न पायो रूप ॥

आनँद-लता मुरझि पियरानी तन बिरहागि तयो।
कहत मदन कवि साध न पूजी योंहीं जनम गयो॥

(३)

दीसै करेजो वियोगिनी को ब्रजलालजू राग के रंग में राँची।
कामरी कृष्ण पै रंग चढ्यो रवि देखि लजानी छिनेक कौं प्राची॥
आँगन में मदिरा मद में भरी कै कोऊ साँचहूं नाची पिसाची।
कै नभमण्डल में बड़ी धूम सों एते सबार हीं फाग सी माची॥

(४)

देखि कुँई बिगसी बिहँसी छिन में चहीं जान सुधाकर सींची।
मन्द पर्‌यो चकई चित चाव उठी हियसिंधु वियोग की बीची॥
रोये पखेरू, उलूक हँसे, दिन पीत पर्‌यो मृत मीत मरीची।
साँझ ललामी चिता चिटकी निसि धूम उठ्यो शमशान प्रतीची॥

(५)

देखो दूरि व्हाँ पै घन सर में सरोज खिले,
नीलकण्ठजू की तहाँ सोभा सरसाति है।
तिनकी जटा तें सुरसरि को प्रवाह होत,
प्रबल प्रवेग फेन फेंकि हहराति है॥
क्रीड़ा जल कीबे काज तामें ऋतु माधव में,
क्रौञ्च औ बलाकन की श्रेणी उतराति है।
सेत औ असेत कौंल काहू ने चढ़ाये सीस,
तिनहीं की पाँति मानो बही चली जाति है॥

हमारे 'कवि' और उनकी रचनाएँ

[ले०—श्रीयुत रामनाथलाल 'सुमन']

मैं ने अपने पिछले 'प्राइवेट' पत्र में (जो अब त्रिपाठी जी की 'ज़बर्दस्ती' से 'पब्लिक' हो चुका है !) कविता के सम्बन्ध में कुछ बातों की चर्चा की थी—देखता हूं कि उनका हमारे होनहार कलेजों पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है, अतएव मेरे लिये अब यह लाज़िमी सा हो गया है कि मैं बेदर्दी से मसले हुए इन पगले हृदयों की 'मरहम पट्टी' सम्बन्धी बातों पर कुछ और विस्तार के साथ लिखूँ। इसी विचार से उपर्युक्त शीर्षक लेखमाला का प्रथम अंश सहृदय-सज्जन-समाज के सम्मुख समुपस्थित है।

मैं पहले लिख चुका हूँ और फिर भी लिखता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में जो लोग 'कवि' के नाम से पुकारे जाते हैं, उनके दो भेद किये जा सकते हैं। पहले विभाग में वे सब कवि हैं, जो सामयिकता के प्रवाह में बहे जा रहे हैं। साधारणतः जनता की रुचि राष्ट्रीयता की ओर अधिक होने के कारण ही इस श्रेणी के लोग कवि और सो भी प्रसिद्ध कवि के रूप में विख्यात हो रहे हैं। 'त्रिशूल', पं० लक्ष्मीधर वाजपेई, पं० रामचरित उपाध्याय और पं० रूपनारायण पाण्डेय इत्यादि इसी श्रेणी के कवियों में हैं। इनकी जो कुछ प्रसिद्धि हुई है वह राष्ट्रीय रचनाओं के ही कारण हुई है, परन्तु कविता की खरी कसौटी पर परखने के पश्चात् इनमें शायद ही कोई 'कवि' निकले। इस श्रेणी के कवियों का जो कुछ आदर है, वह समय की करतूत है, इस विषय में उनका कुछ अपना नहीं है। यह ठीक है कि आजकल इस श्रेणी के कवियों का आदर अधिक है, पर याद रखना चाहिये, यह आदर उनको उनकी कवि-प्रतिभा पर नहीं मिला है, वह उन्हें उनकी राष्ट्रीय भावनाओं के कारण प्राप्त

हुआ है। अतएव केवल प्रसिद्धि (प्रसिद्धि भी नहीं, वरन् 'पापुलयारिटी') के तराजू पर रखकर कवियों की नाप-जोख करना आजकल परम दुष्कर है, असंभव है। अभी दो वर्ष पहिले की बात है कि देश के एक अच्छे नेता होने पर भी श्रद्धेय पं० मदनमोहन मालवीय के व्याख्यान देते समय लोग उनका हँसी मज़ाक उड़ाते थे, उनकी निन्दा करते थे, यहां तक कि कहीं कहीं 'शेम शेम' की आवाज़ भी सुनाई पड़ जाती थी, परन्तु उसी समय एक साधारण शक्ति का आदमी भी जब पूरे जोश के साथ सामायिक राष्ट्रीय भावनाओं की ताईद करता था, तो लोग बड़े चाव से उसकी बातें सुनते थे। अब क्या इतने ही से यह मान लिया जाय कि मालवीयजी की अपेक्षा वह छोटा आदमी अधिक शक्तिशाली था ? नहीं, यह बात नहीं है, उसमें जो शक्ति थी वह समय के प्रवाह की तीव्रता थी, उसका निजी बल वा सामर्थ्य नहीं था। यही बात इस श्रेणी के कवियों पर भी लागू हो सकती है। समय की जो गति है, उसके प्रवाह में जो अपना अस्तित्व लोप कर देने को तैयार हैं, वे धारा में बहकर अधिक दूर भले ही निकल जांय, पर उस दूरी के तै करने में उनका अपना कोई गौरव नहीं, वह तो समय का खेल है। इस प्रकार जो कविताएँ आज प्रसिद्धि पा रही हैं, वे काल की गति के पलटते ही कहीं की न रह जायँगी। कल जो 'भारत भारती' घर घर में पूजी जाती थी, आज वह बच्चों की राष्ट्रीयता से भी पीछे पड़ गई है। अहिंसात्मक असहयोग के इस युग में अहिंसा का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थों की क़दर हो सकती है, पर कल वह ज़माना भी आ सकता है, जब देश का हृदय कराल काल के निष्ठुर रक्तताण्डव से नाच उठे; वैसे समय में इस समय के ऐसे लेखकों और कवियों की क्या क़दर होगी ? इस श्रेणी के कवियों की जो कुछ स्थिति है, वह अस्थायी है और सो भी उनकी अपनी कमाई नहीं है। आजकल शृंगार रस की अच्छी से अच्छी उक्ति कहनेवाले प्रतिभाशाली 'कवि' (मेरी परिभाषा के अनुसार नहीं) की अपेक्षा साधारण राष्ट्रीय तुकबन्दी करनेवाला,

अधिक आदृत हो सकता है—हो सकता है क्या; होता ही है—पर क्या उसकी इस प्रसिद्धि का उसकी काव्यगत प्रतिभा के साथ कोई सम्बन्ध है? ज़रा भी नहीं, एक रत्ती भर नहीं।

जो लोग हिन्दी-कवियों की जीवनियों का संग्रह करते हैं, उन्हें यह बात अच्छी तरह समझनी-बूझनी चाहिये। इस प्रकार की सामयिक कविताओं को साहित्य के "स्थायी रेकर्ड" में सन्निवेशित करना दोष है, अक्षम्य अपराध है। मैं सामयिक रचनाओं का विरोधी नहीं, समर्थक—गहरा समर्थक—हूं, पर मैं उनके रचयिताओं को 'कवियों' के अटल, अचल आसन पर बैठाना पसन्द नहीं करता। मैं 'त्रिशूल' महोदय को राष्ट्र-प्रेमी की दृष्टि से देख सकता हूं, कवि की दृष्टि से नहीं। 'सनेही' को कवि की पदवी आसानी से मिल सकती है, उनकी रचनाओं में कविता की कुछ 'चीज़ें' होती हैं, पर 'त्रिशूल' की रचनाओं में वह बात नहीं है।

राष्ट्रीय रचनाएँ भी 'स्थायी साहित्य' की चीज़ बनाई जा सकती हैं, बशर्ते कि उनके प्रवाह में कोई अखण्ड विशेषता हो। उर्दू के कवि भी तो राष्ट्रीय कविताएँ लिखते हैं, पर उनकी रचनाओं का एक ख़ास ढंग होता है, उनमें थोड़ा छिपा सौन्दर्य—"मिस्ट्रियस ब्यूटी"—होता है। वे अपना काम भी कर जाती हैं और भविष्य के विकसित साहित्य में अपना स्थान भी बना जाती हैं। ऐसी राष्ट्रीय रचनाएँ स्थायी नहीं हो सकतीं, जिनके शब्दों को इधर-उधर करने से वे गद्य का रूप धारण कर लेती हैं। हिन्दी की राष्ट्रीय रचनाओं में 'एक भारतीय आत्मा' एवं अन्य एकाध कवियों की कुछ कृतियों को छोड़ देने पर जो कुछ बचता है, वह गद्य का रूपान्तर मात्र है।

अब दूसरी श्रेणी को (?) लीजिये। इस श्रेणी के कवियों में बहुतेरे ऐसे हैं जो स्थायी साहित्य की चीज़ें लिखते हैं और उनमें पर्याप्त प्रतिभा भी है। वे नई सूक्तियों का आविष्कार कर सकते हैं, वे अपनी कल्पना के बल से नई उपमाएँ लिख सकते हैं, फिर भी

उनकी प्रतिभा से साहित्य में युगान्तर नहीं हुआ, उसमें कोई मौलिकता—ओरिजिनैलिटी—नहीं आई। मैं हिन्दी-साहित्य के प्रतिभाशाली कवियों से पूछता हूँ कि उनकी रचनाओं में कौन सी विशेषता है, क्या नयापन है? उक्तियों और उपमाओं की नवीनता, साहित्य की 'ओरिजिनैलिटी' नहीं, मस्तिष्क की सूझ है। क्या हिन्दी-साहित्य के प्रवाह में संस्कृत-साहित्य से कोई विशेषता है? यह हो सकता है कि हमारे श्रद्धेय अध्यापक 'दीन' या 'शंकर' ने ऐसी सूक्तियों का आविष्कार किया हो, जो अनूठी हों, जो नई हों, जिन्हे कालिदास और भारवि न लिख सकते हों, पर इतने से आप के साहित्य में क्या विशेषता आ गई? आपका ढंग तो वही है जो संस्कृत साहित्य का है? आप में उससे अधिक कौन सी नवीनता है? साहित्य के प्रवाह में आप का क्या अपनापन है? प्रत्येक साहित्य की अपनी एक धारा होती है, विशेषता होती है, हिन्दी में ऐसी क्या विशेषता है? उसकी रचनाओं का रूप तो वही है न, जो आज से हज़ारों वर्ष पहले स्थिर किया जा चुका है? बंग भाषा की एक विशेषता है, फ़ारसी रचनाओं के ढंग में एक अपनापन है, एक नवीनता है, इसमें क्या है? हमने विश्व के रंग-मंच पर कौन सा अभिनय किया है, जो देववाणी के परिपोषक कवि नहीं कर गये? सौन्दर्य में जैसे नित्य नवीनता होती है, प्रेम में जैसे छटपटाते हुए भावों का विकास दीख पड़ता है, वैसी ही कोई 'चीज़' क्या हमारे साहित्य में है, जिसको विश्व ने दूसरी जगह न देखा हो, न पाया हो? हमारे मस्तिष्क में, हमारी सूझ में नवीनता है, किन्तु कितने कवियों की भावनाओं में नयापन है? कितने ऐसे कवि हैं, जो नया हृदय लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं? हम 'केशव' के समय जो थे, वही अब भी हैं। हमारे साहित्यक प्रवाह में क्या उन्नति हुई है, क्या विकास हुआ है? विश्व रूपान्तर का समूह है विकास, नित्य विकास ही उसका लक्षण है—फिर हमारी गति में क्या विकास हुआ है? हमने नई नई उक्तियों को मस्तिष्क के ख़ज़ाने से निकाल कर समाज के

सामने रखनेवाले कवि तो बहुतेरे पैदा किये, पर 'मीरा' के समान हृदय चीर कर दिखानेवाले कितने विश्व को दिखायें ?

एक मामूली सी उक्ति है:—Poets are born not made अर्थात् कवि प्राकृतिक होते हैं, बनाने से नहीं बनते। इस उक्ति को निष्पक्ष भाव से इस दूसरी श्रेणी के कवियों की रचनाओं पर घटाइये, देखिये, कितने लोग इस कसौटी पर खरे उतरते हैं ? अगर नई सूझ की कविता है तो इस प्रकार की सूझ या मस्तिष्क की दौड़ क्या 'बौर्न' पैदायशी होती है ? मनुष्य जितना ही समझता, बूझता और बढ़ता जायगा, उतना ही उसका अनुभव बढ़ेगा, और उतनी ही उसके अक्लकी दौड़ या इस नई सूझ की शक्ति बढ़ेगी। सूझ की जो शक्ति है, वह 'बौर्न' पैदायशी, प्राकृतिक नहीं होती, वह 'मेड' होती है, वह तो बनाई जाती है, उपार्जित की जाती है। सूझ मस्तिष्क की तीव्रता पर अवलम्बित है, और यह मस्तिष्क विश्व-अनुभव के अनुसार बनाया जाता है, अतएव यह साफ़ है कि अनोखी नई उक्तियों एवं उपमाओं के आविष्कार की शक्ति प्राकृतिक नहीं होती, बनाई जाती है। फिर इस दूसरी श्रेणी के कवियों में कौन सी 'बोर्न' विशेषता है, जिसके कारण वे, अपने को 'कवि' नाम से पुकारे जानेवाले, 'परम पद' पाने का दावा कर सकते हैं ? वे तो 'मेड' हैं, दुनियां में आकर 'कवि' बनाये गये हैं।

मस्तिष्क की शक्ति सदैव उपार्जित की जाती है, 'मेड' होती है; वह दूसरी चीज़ है जो मनुष्य अपने जन्म के साथ ही लेकर इस संसार के पथ पर पैर धरता है—वह मस्तिष्क नहीं, सूझ नहीं, हृदय है। मस्तिष्क की दौड़ में अनुभव के साथ साथ परिवर्तन हो सकता है। पर हृदय में वह बात नहीं हो सकती। इसलिए आज की दुनियां ने इसको अनुभव किया है कि कविता हृदय-राज्य की माधुरी है, मस्तिष्क का ताण्डव नहीं, और इसलिए आजकल हृदय को मस्तिष्क पर प्रधानता दी जा रही है। क्या हमारे विद्वान् साहित्यज्ञ शान्त चित्त से इस पर विचार करेंगे ?

आगरा-कवि-सम्मेलन की समस्या-पूर्तियाँ

कसतूरी तार, रूप-सागर-सिवार-सार,
भादों अंधकार कै प्रवेस वेस धारे हैं।
चिलकारे कारे चोर-मन के मरोरदार,
लाँबे सटकारे सीस सौरभ सँवारे हैं॥
खुले देखैं खोलि देंहि जीवन के फंद बार,
बाँधे चित उनके जिन बँधत निहारे हैं।
भौंरत दिमाकदार प्रेमपुंज बार बार,
मानों मुख कंज पै मलिंद मतवारे हैं॥

—'प्रेमपुंज'

पाइ पाइ पात नये, पादप निहाल भये,
ललित रसाल जाल और बौर धारे हैं।
देखि देखि फूल फूले, लेत लेत रस भूले,
सुरभि सुधार प्यारे, पौनसों दुलारे हैं॥
कारे तनवारे कांधे पीतवर्ण धारे सारे,
चञ्चल निहारे सूधे मारग बिसारे हैं।
इतै उतै डोलैं हौल खलित दलित बोलैं,
ये कलिन्दी कूल के मलिन्द मतवारे हैं॥

—पं० गणेशीलाल सारस्वत

फुट्टैं झुंड तुंडन के भिरत सपट्टन सों,
खूनी खग्ग डील डग्ग मग्ग करि डारैंगे।
युद्धन में क्रुद्ध अनरुद्ध भीम भैरव से,
कुट्ट कुट्ट दंडन सों रुंडन पधारैंगे॥
दुट्ट दुट्ट दपटि चपेटन सों चट्ट करैं,
भट्ट पुंज अरिन के उदर बिदारैंगे।
जुट्ट जुट्ट जुट्टैं गुट्टि टुट्टैंगे उदंड मुंड,
मारैं फेरि मारैं पै ए भारत सुधारैंगे॥

—'प्रेमपुंज'

धारेंगे सुमति-धनु कुमति असह शर,
तानि योग आसन लौं शासन बिदारेंगे।
दारेंगे खलन के दलन सबलन सँग,
अबलन अंग भंग पार सो उतारेंगे॥
तारेंगे स्वदेश तें कलेश कुनरेश लेश,
धनीराम मंत्र शुद्ध खद्दर प्रचारेंगे।
चारेंगे उदधि सातों दधि सम काढ़ि सार,
पाइ अधिकार वीर भारत सुधारेंगे॥

—धनीराम शर्मा "प्रेम"

होली

भाल पै हाल गुलाल मल्यौ सँग कुंकुम रंग रल्यौ बरजोरी।
खंजन से दृग अंजन दै नकबेसर बेसर शोभ अथोरी॥
चूनरी सीस उढ़ाय कै पुंज रु घांघरी बांधि दई कटि डोरी।
बाल कह्यो मुख चूमि कै लाल कौ, फेरिहु आय हौ खेलन होरी॥

—प्रेमपुंज

लहरैं

बसि मानस में नित मानस सों कहु हंस मरुस्थल में बिहरैं।
गुनगाहक राम निसार कवै कविराज दरिद्रन में ठहरैं॥
निज़ तन्त्र रहैं मृगराज सुखी परतन्त्र कदापि न दुःख दरैं।
हरि ज्ञान बिना नर नाहिं लहैं चहुँ कोद प्रमोदन की लहरैं॥

—पं० गणेशीलाल सारस्वत

भावना

[ले०—श्री गुरुप्रसाद टण्डन विशारद]

कोई मोहन-छबि दरसा दे।
घनस्याम-सुधा बरसा दे॥

चंचल नैन मैन की मूरति मंजुल रूप दिखा दे।
विरहाकुल हम दीन जनन को प्रीतम-पंथ लखा दे॥
प्रेम-केलि रस-बेलि नवेली, तामें कुसुम खिला दे।
हृदय मत्त मधुकर को प्यारो प्रेम-पराग पिला दे॥
हम जग-लंपट लोलुप जन की हरिपद-लगन लगा दे।
चटकीलो रंग प्रेम-प्रीति को, तामें अंग रँगा दे॥
होय हितू जो कहूं हमारो हरि को मरम जता दे।
या माधव को अगम रहस कोइ अजहूं आय बता दे॥

पंजाब में हिन्दी-साहित्य-प्रचार

(हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों से निवेदन)

देवनागरी अक्षरों का प्रचार पंजाब में प्रतिदिन बढ़ रहा है। हिन्दी सीखने की इच्छा प्रतिदिन विस्तार पा रही है। किन्तु अभीतक पंजाब में हिन्दी की जो पुस्तकें पढ़ी जाती हैं, वे प्रायः पुराने ढर्रे की और तुच्छ होती हैं। हिन्दी के नवीन जीवित साहित्य का अभी तक पंजाब में यथेष्ट प्रवेश नहीं हुआ। उच्च साहित्य पाने की उत्कट इच्छा ज़रूर मौजूद है, किन्तु पंजाब की जनता का तो कहना क्या, अभीतक शिक्षित समाज को भी हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों से परिचय नहीं हुआ। घरों में स्त्रियाँ हिन्दी पढ़ती हैं। उनमें इतनी आत्मनिर्भरता नहीं होती कि स्वयं अपने लिये वाह्य जगत् की वस्तुएं प्राप्त कर सकें, अपने लिये आप ही श्रेष्ठ साहित्य का चुनाव कर सकें और उसे स्वयं मँगा सकें। उनके पुरुष सम्बन्धी प्रायः हिन्दी से अनभिज्ञ होते हैं। वे केवल

उतनी हिन्दी सीख लेते हैं, जिससे अपनी स्त्रियों और बहिनों के पत्र रुक रुककर पढ़ सकें। उन लोगों के मुंह पर हिन्दी-लेखकों और प्रकाशकों के नाम ही नहीं चढ़ते, उनसे परिचय पाना और उनमें अच्छे बुरे का विवेक कर सकना दूर रहा। स्कूलों में जो बालक हिन्दी सीखते हैं उन्हें यदि आरम्भ से अच्छा साहित्य मिले तो अच्छी हिन्दी सीख जायँ। किन्तु बालक स्वयं अपने लिये पुस्तकों का चुनाव नहीं कर सकते और न उन्हें मंगा सकते हैं। उनके संरक्षकों, अध्यापकों और स्कूलों के प्रबन्धकर्त्ताओं की वही स्थिति है जो घरों में पुरुषों की है। इस स्थिति का फल यह होता है कि पंजाब में हिन्दी का श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने की इच्छा अस्फुट रूप में ही मर जाती है। पंजाब में हिन्दी साहित्य के लिये बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। पंजाब की जनता युक्त प्रान्त, बिहार और मध्यप्रान्त की जनता से अधिक धनी है, वह खर्च करना भी जानती है। यहां मांग है, पर प्रसुप्त माँग है। मांग पैदा करना और प्रसुप्त मांग को जगाना भी व्यापारियों, व्यवसायियों का काम है। इस विचार से हम हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों का ध्यान पंजाब की तरफ आकर्षित करते हैं। जब से पंजाब में हिन्दी-प्रचार का कुछ प्रयत्न होने लगा है, जनता की तरफ से हिन्दी की अच्छी पुस्तकें मंगा देने की आज्ञाएँ हमें लगातार मिला करती हैं। हम भी हिन्दी-प्रचार का ध्यान करते हुए ऐसी आज्ञाओं का कभी निरादर नहीं करते। सब से पहिले हमें एक बड़ी राष्ट्रीय संस्था से पांच सौ रुपये की एक पुस्तक-सूची बना देने की आज्ञा मिली, उसी सूची का फिर पंजाब—युनिवर्सिटी ने भी उपयोग किया। प्रान्तीय सम्मेलन की स्थापना के बाद यह रिवाज और बढ़ गया। कभी किसी सज्जन का पत्र आता है कि हमारे घर के लिये बीस, तीस रुपये की पुस्तकों की सूची बना दो। कभी किसी स्कूल से सौ दो सौ की फेहरिस्त बना देने की आज्ञा आती है। कभी किसी तरफ से जिज्ञासा होती है कि हिन्दी का सर्वोत्तम दैनिक पत्र कौन सा है, मासिक पत्रिकाएँ कौन सी हैं। सम्बद्ध संस्थाओं को इस प्रकार की सहायता देना तो हमारा कर्तव्य ही है। अभी हाल में लाहौर में स्त्रियों के लिए एक फिरता हिन्दी-पुस्तकालय स्थापित किया जा रहा है, जिसके सदस्यों को उनके घरों पर पुस्तकें पहुंचाने का प्रबन्ध किया जायगा। इस पुस्तकालय के लिये भी एक हजार रुपये की पुस्तकें पहिले साल मंगवाने की आशा है। हिन्दी के लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों से हमारा निवेदन है कि जब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आपकी

पुस्तकों, पत्रिकाओं और पत्रों के प्रचार का इस प्रकार प्रयत्न कर रहा है, तब आपका भी कर्तव्य है कि उसकी सहायता करें। इसमें आपको भी लाभ होगा। यदि आप अपनी प्रत्येक पुस्तक, पत्रिका और पत्र की एक प्रति हमारे पास भेजने का नियम बनावें, तो पंजाब में हिन्दी-साहित्य का एक आदर्श केन्द्र स्थापित हो जायेगा, जिससे उसे साहित्य के प्रचार में बड़ी सहायता होगी। केवल सूची पत्रों से पर्याप्त परिचय नहीं मिलता। जिस प्रकार आप अपनी पुस्तकों, पत्रिकाओं और पत्रों के प्रचार के लिये उन्हें सम्पादकों के पास आलोचना के लिये और परिवर्त्तन के लिये भेजते हैं, उसी प्रकार उन्हें इधर भी भेजने की कृपा किया करें।

निवेदक—

जयचन्द्र विद्यालंकार
मन्त्री, पंजाब प्रन्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
लाहौर।

स्थायी समिति का साधारण अधिवेशन

चौदहवीं स्थायी समिति का पहला अधिवेशन मिती फा० शु० १०, सं० १९८० वि० तदनुसार ता० १६-३-२४ ई० को ४ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

१—श्री बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन, प्रयाग
२—श्री पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, बहराइच
३—श्री पं० देवीप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
४—श्री प्रो० व्रजराजजी, प्रयाग
५—श्री प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव, प्रयाग
६—श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
७—श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
८—श्री वियोगी हरि प्रयाग

९—श्री अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
१०—श्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा, प्रयाग
११—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग
१२—श्री पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग

१—नियमानुसार श्री बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया।

श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने प्रस्ताव किया कि इस कार्य-विवरण की स्वीकृति त्रयोदशवर्षीय स्थायी समिति के समय में हो जानी चाहिये थी। गत कार्य-विवरण को वर्त्तमान स्थायी समिति स्वीकृत नहीं कर सकती। इस सम्बन्ध में वादविवाद हुआ और सम्मति ली गई।

निश्चय हुआ कि गत अधिवेशन का कार्यविवरण स्वीकृत किया जाय।

३—नियमावली के नियम ६४ के अनुसार बहुमत से निम्न-लिखित सज्जन परीक्षा-समिति के सदस्य चुने गये—

१—श्री पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, आज़मगढ़
२—श्री पं० माधवरावजी सप्रे, तात्यापारा, रायपुर
३—श्री बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
४—श्री पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग
५—श्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा, प्रयाग
६—श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
७—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग
८—श्री अध्यापक पं० रामरत्न जी, प्रयाग
९—श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
१०—श्री पं० इन्द्रनारायण जी द्विवेदी, प्रयाग
११—श्री प्रो० व्रजराजजी, प्रयाग
१२—श्री प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव, प्रयाग

१३—श्री पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री, पटना
१४—श्री पं० सालिग्रामजी भार्गव, प्रयाग
१५—श्री पं० बाबूरामजी वित्थरिया, बाराबंकी
१६—श्री पं० रामप्रसादजी त्रिपाठी, प्रयाग
१७—श्री बाबू गंगाप्रसादजी, प्रयाग
१८—श्री प्रो० रामदासजी गौड़, काशी
१९—श्री पं० लक्ष्मीधरजी बाजपेयी, प्रयाग

४—पुस्तक प्रकाशन-समिति के चुनाव का विषय उपस्थित हुआ।

(क) इस बात पर विवाद हुआ कि समिति में कितने सदस्य रखे जायं।

बहुमत से निश्चय हुआ कि ९ सदस्यों की समिति बनाई जाय।

(ख) प्रो० गोपालस्वरूप जी भार्गव ने प्रस्ताव किया कि पहले पुस्तक-प्रकाशन-समिति के नियम बना लिए जायं, तब सदस्यों का चुनाव हो।

बहुमत से निश्चय हुआ कि समिति का संगठन नियमों के बनने तक उठा न रक्खा जाय।

(ग) श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने प्रस्ताव किया कि मन्त्री की हैसियत से प्रबन्ध-मन्त्री और परीक्षा-मन्त्री इस समिति के सदस्य हों।

वादविवाद के बाद निश्चय हुआ कि प्रबन्ध-मन्त्री और परीक्षा मन्त्री इस समिति के सदस्य हों।

(घ) बहुमत से निम्नलिखित सज्जन प्रबन्ध-मन्त्री और परीक्षा मन्त्री के अतिरिक्त पुस्तक-प्रकाशन-समिति के सदस्य चुने गये—

१—श्री बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
२—श्री पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र वकील, झाऊलाल का बाज़ार, लखनऊ
३—श्री वियोगी हरि, प्रयाग

४—श्री पं० रामजी लालजी शर्म्मा, प्रयाग
५—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग
६—श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
७—श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
८—श्री परीक्षा-मन्त्री
९—श्री प्रबन्ध-मन्त्री

(घ) श्री प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव ने प्रस्ताव किया कि इस समिति के संयोजक परीक्षा-मन्त्री रहें।

श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने प्रस्ताव किया कि समिति के संयोजक चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा हों।

बहुमत से श्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा संयोजक चुने गये।

५—प्रचार-समिति के सङ्गठन का प्रस्ताव उपस्थित हुआ।

श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने प्रस्ताव किया कि अभी यह विषय स्थगित रखा जाय। पहले मैं कुछ दिनों तक कार्य को देख कर यह अनुभव कर लूँ कि प्रचार-समिति की आवश्यकता है या नहीं, यदि आवश्यकता हुई तो मैं स्वयं प्रचार-समिति के सङ्गठन का प्रस्ताव उपस्थित करूंगा।

श्री पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित ने प्रस्ताव किया कि प्रचार-समिति का संगठन किया जाय।

बहुमत से प्रचार-समिति के संगठन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

निम्नलिखित संख्या में प्रचार-समिति बनाये जाने का प्रस्ताव नीचे लिखे सदस्यों द्वारा उपस्थित हुआ।

श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने प्रस्ताव किया कि २१ सदस्यों की समिति बनाई जाय।

श्री पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित तथा पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल ने प्रस्ताव किया कि ११ सदस्यों की समिति बनाई जाय।

श्री पं० देवीप्रसादजी शुक्ल तथा प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव ने प्रस्ताव किया कि ५ सदस्यों की समिति बनाई जाय।

बहुमत से ११ सदस्यों की समिति बनाये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने प्रस्ताव किया कि ११ सदस्यों की समिति में से ७ स्थायी समिति के सदस्य अवश्य रहें।

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने प्रस्ताव किया कि प्रचार-समिति के चुनाव का कार्य अभी स्थगित किया जाय।

श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने प्रस्ताव किया कि चुनाव का कार्य स्थगित न किया जाय।

बहुमत से चुनाव होने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

निम्नलिखित सज्जन प्रचार-समिति के सदस्य चुने गये--

१—श्री बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
२—श्री पं० गंगाधर रावजी देशपाण्डे, कर्नाटक
३—श्री आनन्दभिक्षुजी, कसिया (गोरखपुर)
४—श्री पं० जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार, लाहौर
५—श्री पं० हरिहर शर्म्माजी, मद्रास
६—श्री प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव, प्रयाग
७—श्री प्रो० व्रजराजजी, प्रयाग
८—श्री पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, बहरायच
९—श्री पं० रामजी लालजी शर्म्मा, प्रयाग
१०—श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
११—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, प्रयाग

६—श्री प्रधानमन्त्रीजी द्वारा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के मन्त्री का वह पत्र, जिसमें उन्होंने प्रथम सम्मेलन के कार्य-विवरण और लेखमाला के प्रकाशित कराने में जो १३४॥।)७३ उनकी सभा का अधिक व्यय हुआ था मांगा है, उपस्थित हुआ।

श्री पं० देवीप्रसादजी शुक्ल ने प्रस्ताव किया कि उन्होंने बहुत दिनों के पश्चात् हिसाब भेजा है, सम्मेलन-कार्यालय में इस रक़म का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, अतः न दिया जाय।

श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने कहा कि जहां तक मुझे स्मरण है, कार्य-विवरण और लेखमाला के मंगाते समय उनसे यह कह दिया गया था कि उपर्युक्त पुस्तकें बिकने पर सभा की रक़म भेज दी जायगी, अतः यह रक़म दी जानी चाहिये।

बहुमत से १३४।।)७½ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को भेज देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

७—गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय लखनऊ का पत्र श्रीप्रधान मन्त्रीजी द्वारा उपस्थित हुआ, जिसमें उन्होंने अपनी पुस्तक-माला को, अवध के लिए, सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री के लिए सोल एजेंट नियत करने के सम्बन्ध में लिखा है।

निश्चित हुआ कि सम्मेलन किसी को अपना सोल एजेंट बनाना नहीं चाहता।

८—श्री प्रधानमन्त्रीजी द्वारा श्रीअवधनन्दन प्रसादजी, हिन्दी प्रचारक, त्रिचिनापल्ली का पत्र, जिसमें उन्होंने स्वर्गीय प्रताप नारायणजी मिश्र-पुस्तकालय के लिए सम्मेलन-द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य दिये जाने की प्रार्थना की है, श्रीप्रचार मंत्रीजी के नोट सहित उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि उक्त पुस्तकालय को सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य दी जाय।

९—श्रीप्रधानमंत्रीजी द्वारा हिन्दी-विद्यार्थी-संघ, सातूर के मन्त्री का वह पत्र जिसमें उन्होंने संघ के लिए सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य मांगी है, श्रीप्रचार-मंत्रीजी के नोट सहित उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि पहले इस पत्र पर श्री पं० हरिहर शर्माजी से सम्मति मांगी जाय, सम्मति आने पर श्री प्रधानमन्त्रीजी उचित समझें तो पुस्तकें दे दें।

१०—श्री प्रधानमन्त्रीजी द्वारा श्री क्षेमानन्दजी राहत का पत्र तथा उनकी पुरुषार्थत्रय अथवा तामिल वेद नामक पुस्तक विचा-

रार्थ प्रस्तुत की गई। निश्चित हुआ कि यह विषय पुस्तक-प्रकाशन-समिति के पास उचित कार्रवाई के लिए भेज दी जाय।

११—श्री प्रधान मन्त्रीजी द्वारा श्रीरामधारी प्रसादजी विशारद मन्त्री बिहारप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, मुजफ़्फरपुर का यह पत्र, जिसमें उन्होंने बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के दिन आगामी स्थायी समिति की बैठक १६-४-२४ ई० को पटना में किये जाने की प्रार्थना की है, उपस्थित किया गया।

वाद-विवाद के बाद बहुमत से १६-४-२४ ई० को स्थायी समिति की बैठक पटना में किये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

१२—निश्चित हुआ कि निम्नलिखित सज्जनों की एक उप-समिति बनाई जाय, जो बजट आयव्यय और प्रबन्धसम्बन्धी उपनियम कार्यालय के लिए बनाकर आगामी स्थायी समिति की बैठक में उपस्थित करे।

१—श्री प्रो० व्रजराज जी, प्रयाग
२—श्री पं० इन्द्रनारायण जी द्विवेदी, प्रयाग
३—श्री प्रो० गोपालस्वरूपजी भार्गव, प्रयाग
४—श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
५—श्री चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसादजी शर्म्मा, प्रयाग

१३—श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने प्रस्ताव किया कि एक उपसमिति संग्रहालय-भवन के निर्माण के लिए बनाई जाय। किन्तु यह विषय इस समिति के विचारणीय विषयों में नहीं था, अतः आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

१४—श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी का प्रस्ताव, जिसमें उन्होंने आसाम में एक वर्ष प्रचार के लिए ३०००) रु० की सहायता चाही है, उपस्थित हुआ। प्रस्ताव के उपस्थित होते ही त्रिपाठीजी ने अपना प्रस्ताव वापिस ले लिया।

१५—श्रीमान् सभापति महोदय ने उपस्थित सदस्यों को श्री प्रचारमन्त्रीजी के त्यागपत्र देने की सूचना दी, तथा त्यागपत्र को

पढ़कर भी सुनाया, और यह भी कहा कि यह पत्र कार्यालय को दिये देता हूं, कार्यालय यह पत्र अगले अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित करे ।

सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई ।

रामजीलाल शर्मा

प्रधान मन्त्री

स्थायी समिति का दूसरा साधारण अधिवेशन

मिति चै० शु० ६-८१ वि० तदनुसार ता० १०-४-२४ ई० को ४ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

१—श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
२— " पं० देवीप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
३— " प्रो० गोपाल स्वरूपजी भार्गव, प्रयाग
४— " बाबू संगमलालजी अग्रवाल, प्रयाग
५— " अध्यापक पं० रामरत्नजी, आगरा
६— " पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग
७— " चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसादजी शर्म्मा, प्रयाग
८— " प्रो० व्रजराजजी, प्रयाग

(१) श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल ने सभापति का आसन ग्रहण किया ।

(२) पिछले अधिवेशन का विवरण पढ़ा गया, और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ ।

(३) भाद्र से पौष सं० ८० तक का, आयव्यय-परीक्षक द्वारा जांचा हुआ, हिसाब उपस्थित किया गया। निश्चय हुआ कि विद्यापीठ खाते का खर्च भवन-निर्म्माण खाते में पड़ना चाहिये । सम्मेलन की

चल सम्पत्ति का हिसाब अलग चिट्ठे में दिखाना चाहिये। आडिटर के नोट के अनुसार हिसाब पास किया जाय।

(४) प्रस्तावक की अनुपस्थिति के कारण संग्रहालय की उप-समिति के निर्वाचन का कार्य स्थगित किया गया।

(५) श्रीयुत पं० रामनरेशजी त्रिपाठी का त्यागपत्र उपस्थित किया गया। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि—

"यह समिति श्रीयुत पं० रामनरेशजी त्रिपाठी को विश्वास दिलाती है कि प्रचार-समिति का संगठन उनपर अविश्वास के कारण नहीं, किन्तु कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया गया है। इसलिए स्थायी समिति उनसे अनुरोध करती है कि वे अपना त्यागपत्र वापस ले लें।"

(६) लाहौर के श्रीयुत पं० जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार का पत्र पढ़ा गया। जिसमें उन्होंने १॥ मास के लिए पंजाब में हिन्दी-प्रचार के लिए एक प्रचारक मांगा है, तथा लाहौर की हिन्दी-सभाओं के सेक्रेटरियों को यह लिखने के लिए अनुरोध किया है कि वे प्रान्तीय सम्मेलन से अपनी अपनी सभाएं सम्बद्ध करें।

निश्चय हुआ कि प्रधानमन्त्रीजी एक प्रचारक पंजाब शीघ्र भेज दें, और पंजाब की सभाओं से अनुरोध करें कि वे अपने प्रान्त के प्रान्तीय सम्मेलन से सम्बद्ध हों।

(७) अध्यापक श्रीयुत पं० रामरत्नजी ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ—

(अ) "युक्त प्रान्तीय कौन्सिल के सभापति ने श्रीमान् बाबू संगम लालजी अग्रवाल को हिन्दी भाषा में नहीं बोलने दिया, उनके इस अनुचित व्यवहार पर यह सम्मेलन घोर असन्तोष प्रकट करता है और निश्चय करता है कि निम्नलिखित तीन सज्जनों का एक डेपुटेशन उक्त कौंसिल के सभापति से मिलकर इस प्रश्न के सम्बन्ध में ऐसी व्यवस्था करावे कि आगे से हिन्दी भाषा में बोलनेवाले किसी सदस्य के सामने यह बाधा उपस्थित न हो।

डेपुटेशन के सदस्य

१—श्री पं० गणेश विहारीजी मिश्र, लखनऊ
२—श्री बाबू हीरालालजी खन्ना, कानपुर
३—श्री प्रो० ब्रजराज जी, प्रयाग (संयोजक)

(इ)—यह सम्मेलन हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त के उन प्रतिनिधियों से, जो जनता की ओर से निर्वाचित होकर कौन्सिलों में गये हैं, अनुरोध करता है कि वे कौंसिलों के अधिवेशनों में सर्वसाधारण की सुविधा के लिए अपने भावों को हिन्दीभाषा ही में व्यक्त किया करें।

रामजीलाल शर्मा

प्रधान मंत्री

पञ्चम विहार प्रादेशिक सम्मेलन

[ले०—श्रीयुत पं० रामरत्नजी अध्यापक]

ता० १९ व २० अप्रैल सन् १९२४ को विहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन बड़ी धूमधाम से समाप्त हो गया। सभापति थे हिन्दी के पुराने सेवक श्रीमान् पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र। मिश्रजी बा० हरिश्चन्द्र के समकालीन कार्य-कर्त्ता हैं। अत्यन्त वृद्ध होने पर भी हिन्दी के लिए आप में काफ़ी उत्साह है।

सभापति के अतिरिक्त प्रान्त के आबालवृद्ध हिन्दी-सेवी सज्जनों का पूरा समारोह था, जिनमें १०० के समीप निर्वाचित प्रतिनिधि थे। स्वागत-समिति के मंत्री प्रो० राधाकृष्णजी झा तथा सहायक मंत्री बा० शार्ङ्गधरजी का उद्योग विशेष प्रशंसनीय रहा। भोजन तथा जलपान का प्रबन्ध संतोषप्रद रहा। प्रान्तीय सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति श्रीयुत शिवनन्दन सहायजी तथा मान्यवर पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी भी उपस्थित थे। ता० १९ के सायंकाल ४ बजे कार्य प्रारम्भ हुआ। विहारभूषण श्रीराजेन्द्र प्रसाद सिंहजी ने स्वागताध्यक्ष की हैसियत से अपना भाषण पढ़ सुनाया। आपने श्री रामधारी प्रसादसिंह, वर्त्तमान

प्रधान मन्त्री का नमूना पेश करते हुए विहार के नवयुवकों से मार्मिक शब्दों में अपील की। मातृ-सेवकों पर दर्दभरे दिल की अपील का अच्छा प्रभाव पड़ा।

सभापतिजी का भाषण पांडित्यपूर्ण था। अनेक उपयोगी बातों के साथ साथ आपने सामयिक आन्दोलन पर अच्छा प्रकाश डाला। छपरा के सहायक हिन्दी प्रेमी वकील श्री साँवलियाविहारी एम. ए. बी. एल., दरभंगा के उत्साही सज्जन श्री मथुराप्रसादजी, पटना के प्रसिद्ध वीर श्री जगतनारायण लालजी एम. ए., श्रीबद्रीनाथजी वर्मा सभासद, शिक्षा-सम्पादक श्री पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री तथा देश-सम्पादक श्रीयुत मथुराप्रसादजी आदि अनेक सज्जनों ने सम्मेलन के उत्सव में अच्छा योग दिया।

ता० २० अप्रैल को मध्यान्ह के तीन बजे से सभा का कार्य आरम्भ हुआ। श्री रामधारी सिंहजी ने गतवर्ष का कार्य-विवरण पढ़ सुनाया। अनेक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए, जिनमें सिंहभूमि में हिन्दी-प्रचार, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार, हिन्दी द्वारा कौमर्स की शिक्षा देनेवाला विद्यालय, हिन्दी उपयोगी ग्रंथ प्रकाशन समिति का संगठन आदि उपयोगी विषय थे।

कार्य चलाने के लिये धन की अपील की गई। परिणाम में कुछ नक़द के अतिरिक्त १२००) के वचन मिले। अनेक लोग स्थायी व साधारण सदस्य हुए। वचन देते समय विहार प्रादेशिक हिन्दी-सेवियों का उत्साह दृष्टव्य था। भगवान करे, कार्यालय में भी इसी प्रकार का उत्साह बना रहे। प्रीति-भोज (प्रीति प्रसाद) के बाद फिर सभा बैठी और सभा-सुसाइटियों के आधुनिक रस्मोरवाज अदा किये गये। धन्यवादों के तांतें बँध गये। श्रीयुत सभापतिजी की अन्तिम वक्तृता में अनेक काम की बातें थीं। आप ने आयुर्वेद में कुछ आविष्कार किये हैं, उनका उल्लेख करते हुए आपने एक उच्च शिक्षा के लिये आयुर्वेद-महाविद्यालय खोलने की आयोजना कह सुनाई, जिसमें हिन्दी-द्वारा पढ़ाने और परीक्षा देने का भी प्रबन्ध रहेगा।

बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

१—यह सम्मेलन मुजफ्फरपुर के प्रसिद्ध रईस, सम्मेलन के जन्मदाताओं में अग्रगण्य, सम्मेलन के उपसभापति श्रीवैद्यनाथ प्रसादसिंहजी, श्रीपंडित प्रतापनारायणजी बाजपेयी, गया के श्रीकृष्णप्रकाश सेनसिंहजी, भागलपुर के श्रीबाबू जगद्धरप्रसादजी, श्रीबाबू मुरलीधरजी सर्राफ तथा दरभंगे के श्रीपंडित राजारामजी शास्त्री के आकस्मिक स्वर्गवास पर शोक तथा उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करता है।

२—यह सम्मेलन उड़ीसा प्रान्त में तथा बिहार के उन भागों में जहां हिन्दी का प्रचार नहीं है हिन्दी-प्रचार के कार्य्य को सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण समझता है। यह सम्मेलन निश्चय करता है कि इस वर्ष कम से कम हिन्दी-प्रचार का कार्य्य आरंभ किया जाय, और इसका प्रबन्ध-भार स्थायीसमिति को दिया जाय।

३—यह सम्मेलन स्थायी समिति से अनुरोध करता है कि वह बिहार प्रांत के प्रत्येक ज़िले के उचित स्थानों में प्रांतीय सम्मेलन से सम्बद्ध हिन्दी की एक एक सभा सुदृढ़ रूप से स्थापित करने का पूर्ण प्रयत्न करे।

४—हिन्दी-साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति के लिये यह सम्मेलन निश्चय करता है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य्य-भार हाथ में लिया जाय। इस उद्देश्य से यह सम्मेलन पांच सज्जनों की एक उप-समिति बनाता है जो अधिक से अधिक आश्विन मास तक इस विषय की एक योजना तय्यार कर प्रधान मंत्री के पास भेज दे। प्रधान मंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि योजना पाने के एक मास के अन्दर वे स्थायीसमिति की एक बैठक कर उसे विचारार्थ उपस्थित करें और स्थायी समिति भी उस स्कीम में यथावश्यक परिवर्त्तनादि कर अधिक से अधिक दो

मास के अन्दर उसको कार्य्यरूप में परिणत करने का उचित उपाय अवलम्बन करे। इस उपसमिति के सदस्य ये होंगे--

१-श्रीअखौरी गोपकिशोरलालजी २-श्रीदुर्गादासजी सोंधी। ३-श्रीबदरीनाथजी वर्मा। ४-श्री रायबहादुर रामरणविजय सिंहजी। ५-श्रीराधाकृष्णजी झा [नियोजक]

५—हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने तथा उसकी सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि बिहार प्रान्त में एक हिन्दी-कमर्शल कालिज स्थापित किया जाय, जिसमें हिन्दी शार्टहैण्ड, टाइपराइटिङ्ग तथा मुनीमी की शिक्षा देने का प्रबन्ध रहे।

अतएव यह सम्मेलन प्रान्त के हिन्दी-प्रेमी धनी मानी सज्जनों से अनुरोध करता है कि वे इस अभाव की पूर्ति के लिए यत्नशील हों।

६—यह सम्मेलन अपने प्रान्त के म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, हाईस्कूल आदि शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वे अपने शिक्षक और छात्रों को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठने के लिए उत्तेजित करें।

७—पटने की सबसे बड़ी हिन्दी संस्था "श्रीरूपकला भगवान प्रसाद लाइब्रेरी" को आर्थिक सहायता देना बन्दकर हिन्दी के प्रति सरकार ने जो अनुदारता दर्शायी है, उसके प्रति यह सम्मेलन अत्यन्त दुःख प्रकट करता है, तथा सरकार से प्रबल अनुरोध करता है कि पूर्व क्रमानुसार उक्त लाइब्रेरी को फिर भी वह अपनी सहायता देना जारी कर दे।

८—इधर कुछ लक्षणों से इस सम्मेलन को भय हो रहा है कि इस प्रदेश में हिन्दी आशानुरूप उन्नति नहीं कर रही है। इस कारण इस सम्मेलन का विचार है कि बिहार प्रदेश में गत दस वर्षों में हिन्दी की अवस्था में उन्नति-अवनति की दृष्टि से क्या परिवर्तन हुए हैं, उनके कारण सहित एक पूरा विवरण तैयार कराया जाय। इसलिये यह सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति नियुक्त करता है, और उसे आदेश करता है कि वह हिन्दीभाषा और

साहित्य की उन्नति और प्रसार के सब साधनों और जरियों (स्कूल, कालिज, कचहरी, समाचारपत्रादि) के सम्यक् रूप में पूरी जांच पड़ताल कर हिन्दी की उन्नति और ह्रास के कारणों के दिग्दर्शन के साथ एक पूरी रिपोर्ट सम्मेलन की अगली बैठक में पेश करे।

सदस्यों के नामः—श्रीबाबू शिवनन्दनसहायजी, श्रीराधाकृष्णजी झा, श्रीबद्रीनाथजी वर्मा, श्रीरायबहादुर रामरण विजय सिंहजी, श्री पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री, श्रीशार्ङ्गधरसिंहजी (संयोजक)

९—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि सम्मेलन की नियमावली में संशोधन किया जाय।

१०—यह सम्मेलन गत वर्ष के पदाधिकारियों और सदस्यों को उनके कार्यों के लिये धन्यवाद देता है।

११—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि आगामी वर्ष सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये काम करने को निम्नप्रकार स्थायी समिति का संगठन हो—सभापति—श्रीकवीन्द्र पण्डित चन्द्रशेखर धर मिश्र। उपसभापति—१. श्रीराजेन्द्रप्रसाद। २. श्रीकवि पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी। ३. श्री रायबहादुर रामरण विजयसिंह। ४. श्रीराधाकृष्ण झा। ५ श्रीश्यामनन्दनसहाय। प्रधान मंत्री—श्री रामधारीप्रसाद विशारद। संयुक्त मन्त्री—श्रीराघवप्रसाद सिंह।

सम्पादकीय

महाराष्ट्र-प्रादेशिक परिषद् में हिन्दी

हाल में, जलगांव में, जो महाराष्ट्र प्रादेशिक परिषद् हुई थी उसमें एक इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है कि महाराष्ट्र प्रान्त में हिन्दी का प्रचार अवश्य किया जाय। अब प्रायः प्रत्येक प्रान्तवासी हिन्दी की सार्वभौमिकता का अनुभव करने लगे हैं। सुदूरवर्ती मद्रास प्रान्त ने, इस विषय में अगुआ बनकर, प्रत्येक प्रान्त के सामने यह महान् आदर्श उपस्थित कर दिया है कि बिना एक भाषा के भावैक्य का होना दुष्कर ही नहीं, वरन् असम्भव है। महाराष्ट्र प्रान्त एक प्रकार से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त से बहुत पृथक् नहीं है। महाराष्ट्र भाषा हिन्दी की एक प्रकार से सहयोगिनी ही है। जब हमारे मद्रासी भाइयों ने हिन्दी को इतनी जल्दी अपना लिया है तो क्या हमारे महाराष्ट्र, गुजराती और बंगाली भाई हिन्दी के अपनाने में विशेष उत्साह न दिखलायेंगे? जिस प्रकार बंगाल की राजधानी सुप्रसिद्ध नगर कलकत्ते में हिन्दी की ध्वजा फहरा रही है, उसी प्रकार क्या हम विशाल व्यापारी नगर बम्बई में हिन्दी-मन्दिर के देखने की अभिलाषा नहीं कर सकते? यदि बम्बई से हिन्दी के कई समाचारपत्र निकलने लगें, तो महाराष्ट्र और गुजराती भाषाभाषी जनता का बड़ा उपकार हो सकता है। कुछ भी हो, हिन्दी की आवश्यकता का अनुभव तो सभी प्रान्त करने लगे हैं। क्या हिन्दी के लिए यह मंगलाशा कम है?

हिन्दुस्तानी-प्रेमी-मण्डल

मद्रास के सुप्रसिद्ध "स्वराज्य" पत्र में निम्नलिखित समाचार प्रकाशित हुआ है—

"हिन्दी और उर्दू के प्रेमियों ने कुम्भकोणम् में "हिन्दुस्तानी-प्रेमी मण्डल" नाम की सभा स्थापित की है। इस सभा का उद्देश यह है कि ऐसा प्रयत्न किया जाय कि जिससे लोग हिन्दुस्तानी भाषा का यथाशीघ्र प्रचार कर उसके द्वारा सम्भाषण और पत्र व्यवहार किया करें। यह कार्य कुम्भकोणम् के हिन्दी-प्रचारक श्रीमान् के० आर० राव के सदुद्योग से हुआ है। इस मण्डल के सभापति श्रीयुत जी. वी० वेंकट रामअय्यर बी. ए. बी. ऐल. और उपसभापति श्रीयुत टी० आर० अनन्ताचार्य, बी. ए. बी. ऐल. बनाये गये हैं। श्रीयुत के० सुन्दरम् मंत्री तथा श्रीयुत आर० दोराय स्वामी कोषाध्यक्ष नियत हुए हैं। श्रीयुत दोराय स्वामी ने हिन्दुस्तानी भाषा के सीखने की आवश्यकता पर एक निबन्ध पढ़ा। यह भी सूचित किया गया कि ४ मई को मण्डल की जो आगामी बैठक होगी उसमें इस विषय का हिन्दी में वादविवाद किया जायगा कि "क्या वायकोम् सत्याग्रह राष्ट्रीय दृढ़ता का विधायक हो सकता है?" सभापति को धन्यवाद देने के बाद सभा विसर्जित हुई।"

हमें उपर्युक्त समाचार पढ़कर बड़ा हर्ष हुआ। हम कुम्भकोणम् की हिन्दी-प्रेमी जनता को जितना धन्यवाद दें उतना थोड़ा है। कुम्भकोणम् के "हिन्दुस्तानी-प्रेमी-मण्डल" ने राष्ट्रभाषा-प्रचार का जो आदर्श उपस्थित किया है उसका अनुकरण मद्रास के प्रत्येक ज़िलेको सादर और सहर्ष करना चाहिए। यदि मद्रास के प्रत्येक नगर और गांव में ऐसा मण्डल स्थापित हो जाय तो बात की बात में हिन्दुस्तानी भाषा राष्ट्रभाषा पद पर समासीन हो जाय।

एस. एस. ऐल. सी. में हिन्दी

मद्रास के सहयोगी "स्वराज्य" के एक संवाददाता ने यह सूचना प्रकाशित करायी है—

"कुम्भकोणम् के वकील, व्यापारी, शिक्षक और प्रतिष्ठित नागरिकों ने हस्ताक्षर करके शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास इस आशय का एक आवेदन पत्र भेजा है कि एस. एस. एल. सी. परीक्षा के पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी वैकल्पिक विषयों में स्थान दिया जाय।"

हमें पूर्ण आशा है कि डाइरेक्टर साहब कुम्भकोणम् की जनता के प्रार्थना-पत्र पर विशेष ध्यान देंगे। जब प्रत्येक विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाओं में हिन्दी को स्थान मिल गया है, और कहीं कहीं उसे शिक्षा का माध्यम बनाने का भी प्रयत्न हो रहा है, तो कोई कारण नहीं कि वह मद्रास की एस. एस. एल. सी. परीक्षा के पाठ्यक्रम में समादृत स्थान न पावे। हमें विश्वास है कि, मद्रास के अदम्य उत्साहशील हिन्दी-प्रेमी एक दिन हिन्दी को वहां के विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाकर छोड़ेंगे।

नवलकिशोर प्रेस का पत्र

दिल्ली-सम्मेलन में पुस्तक-प्रकाशकों के कर्त्तव्य के संबंध का जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है, उस पर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस की ओर से एक पत्र आया है। टिप्पणीसहित पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है—

"सम्मेलन ने जो दोष प्रकाशकों के शिर मढ़ने का प्रयत्न किया है, उसमें समस्त दोष प्रकाशकों का ही नहीं है। प्रस्ताव में रामचरित मानस उदाहरण में रक्खा गया है। उसी के सम्बन्ध में निवेदन है। कथावाचक पंडित लोग जब जनता के आगे मानस की कथा बांचते हैं, तो मानस के साथ संसार भर की दंत कथा मिलाकर श्रोताओं को सुनाते हैं। जैसी कथा श्रोता सुनते हैं, उन्हीं सब बातों से युक्त ग्रंथ की वे खोज करते हैं। उधर पंडित लोग वैसी ही पुस्तक तैयार करके प्रकाशकों से उसके छापने का अनुरोध करते हैं। प्रकाशक भी लेखक और पाठक दोनों की रुचि देखकर तदनुकूल ग्रंथ प्रकाशित करने को विवश होते हैं। यदि पंडित और टीकाकार

अथवा कथावाचक महोदयगण यह "साहित्य का बड़ा अपकार" करना त्याग दें, तो प्रकाशक लोग कभी इस "अनुचित कार्य" को न करें। पर कठिनता यह है कि "रामचरित मानस" को साहित्य-सम्मेलन साहित्य की दृष्टि से देखता है और पंडित लोग उसके द्वारा धर्म्मोपदेश करते हैं, और धर्म्म में हस्तक्षेप करना सम्भवतः साहित्य-सम्मेलन की अधिकार-सीमा से बाहर की बात हो। आपको यह विदित होगा कि "क्षेपक" भारतवर्ष की प्राचीन प्रथा है। महाभारत रामायणादि ग्रन्थों के क्षेपकों की बात तो सभी कोई सुनते हैं, हमको एक बड़े भारी लेखक से विदित हुआ है कि स्वयं वेद भगवान् में, विशेषतः ऋग्वेद में, निरे क्षेपक भरे पड़े हैं, और वे लेखक महोदय आजकल क्षेपकरहित ऋग्वेद का संस्करण निकालने का महा प्रयत्न कर रहे हैं। अस्तु।

आपको यह जानकर कदाचित् संतोष हो कि प्रकाशक लोग भी जनता की रुचि देखा करते हैं और तदनुसार हमारे यहां से शीघ्र ही रामचरितमानस का एक अत्यन्त शुद्ध संस्करण प्रकाशित होने वाला है, जो श्रीअयोध्याजी के निखिल-शास्त्र-निष्णात महात्मा पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज के प्रयत्न से अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार शुद्ध किया गया है। सम्भवतः यह प्रति काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा संशोधित प्रति से भी अधिक शुद्ध हो।"

उपर्युक्त पत्र में कई असंगत बातें पायी जाती हैं। पत्र-प्रेषक महोदय का कहना है कि सम्मेलन ने जो दोष प्रकाशकों के शिर मढ़ने का प्रयत्न किया है उसमें समस्त दोष प्रकाशकों का ही नहीं है। आप का यह भी कथन है कि पंडित लोग संसार भर की दन्त-कथा मिलाकर श्रोताओं को राम-चरित-मानस आदि जो सुनाते हैं और जैसी पुस्तक वे तैयार करते हैं उसी के अनुकूल उनके अनुरोध से प्रकाशकों को वे पुस्तकें छापनी पड़ती हैं। इसपर हमारा यह निवेदन है कि प्रकाशकों को चाहिये कि वे दन्तकथा-संयुक्त पुस्तकों को साहित्य का अपकार करनेवाले

टीकाकार अथवा कथावाचक सज्जनों के अनुकूल न छापें। कम से कम प्रकाशकों को छापने के पहले पुस्तक को भली भाँति देख तो लेना चाहिये। यदि प्रकाशक महोदय स्वयं प्रत्येक विषय की पुस्तक नहीं देख सकते, तो उन्हें तत्सम्बन्धी सुयोग्य विद्वानों से एक बार पुस्तक दिखा कर उसपर सम्मति ले लेनी चाहिये। आपका यह कथन कि राम-चरित-मानस को साहित्य-सम्मेलन-साहित्य की दृष्टि से देखता है और पंडित लोग उसके द्वारा धर्मोपदेश करते हैं और धर्म में हस्तक्षेप करना सम्भवतः साहित्य-सम्मेलन की अधिकार-सीमा से बाहर की बात हो, हमारी समझ में नहीं आता। यदि सम्मेलन रामचरितमानस को साहित्य की दृष्टि से देखता है, तो इससे मानस-संगत धर्म पर कोई आघात नहीं पहुँचता। सम्मेलन का तो यही कहना है कि शुद्ध मूल प्रति के साथ व्यर्थ बातें न ठूँसी जाँय, शुद्ध छपाई पर विशेष ध्यान रक्खा जाय और टीका-टिप्पणियाँ मूल पाठ के अनुकूल हों। आप का यह भी कथन है कि क्षेपक भारतवर्ष की प्राचीन प्रथा है। आप की राय में वेद भगवान् में, विशेषतः ऋग्वेद में, निरे क्षेपक भरे पड़े हैं। माना कि किसी किसी ग्रन्थ में बहुत पीछे किसी तरह कोई प्रक्षिप्त अंश मिल गया हो, पर यह प्रथा नहीं हो सकती। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निस्सन्देह इस प्रक्षिप्त प्रथा का आविष्कार किया था, किन्तु ब्राह्मण भाग आदि छोड़कर संहिता भाग में उन्होंने भी कोई प्रक्षिप्त अंश नहीं बतलाया। देखें, क्षेपकरहित ऋग्वेद का शुद्ध संस्करण किस महा विद्वान् के महा प्रयत्न से प्रकाशित होता है?

हमें यह जानकर बड़ा ही आनन्द और सन्तोष हुआ कि सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी नवलकिशोर प्रेस से शीघ्र ही रामचरितमानस का एक अत्यन्त शुद्ध संस्करण प्रकाशित होनेवाला है। उक्त प्रेस का सभी प्रकाशकों को अनुकरण करना चाहिये।

साहित्य-समालोचन

सहयोगी पत्र-पत्रिकाएँ

१—मनोरमा—सचित्र मासिक पत्रिका; सम्पादक—श्रीयुत पं० महावीर प्रसादजी मालवीय "वीर" और श्रीयुत पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल "गिरीश" बी. ए.; प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; पृष्ठसंख्या १०४; छपाई स्वच्छ, कागज़ बढ़िया; वार्षिक मूल्य ५) प्रति संख्या ॥)

अप्रेल मास से सहयोगिनी मनोरमा का मनोरम दर्शन हुआ है। पत्रिका होनहार दिखायी देती है। सब मिलाकर गद्यपद्यात्मक ३५ लेख हैं। श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय और श्रीयुत "भारतीय आत्मा" की कविताएँ चित्ताकर्षिणी हैं। श्रीयुत प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी एम. ए., आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्यरत्न प्रोफेसर गुरु प्रसाद पाण्डेय बी. ए., महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, श्रीयुत पं० हरिमंगल मिश्र और श्रीयुत प्रोफेसर अमरनाथ झा एम. ए. के लेख सुन्दर और विवेचनापूर्ण हैं। मनोरमा के देखने से हमें एक बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसने कई अँग्रेज़ीदाँ प्रोफेसरों का मन अपनी पहली ही झलक में खींच लिया है। इसमें सब मिलाकर ८ चित्र हैं—३ रंगीन और ५ सादे। 'गिरिजापूजन' नामक चित्र सुन्दर और भावमय है। गोस्वामी तुलसीदासजी के अन्यत्र प्रकाशित ३ चित्र हैं जिनकी प्राचीनता अथवा ऐतिहासिकता निर्विवाद सिद्ध नहीं हो सकती।

समालोचना और सम्पादकीय टिप्पणियों का इस अंक में यथेष्ट समावेश नहीं है। आशा है, आगामी अंक से यह त्रुटि दूर

हो जायगी। हम हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में सद्यः सञ्जात मनोरमा का हृदय से अभिनन्दन करते हैं, और परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हिन्दी-रसिकों का दिनदूना रात चौगुना मनोरंजन करने में कृतकृत्य हो।

२—**मौजी**—साप्ताहिक पत्र; सम्पादक श्रीयुत पं० महादेव सिंह शर्मा एम. ए., कागज छपाई सुन्दर; वार्षिक भेंट २) नक़द सलामी)॥

कलकत्ते के 'मतवाला' ने अपना एक मण्डल सा बना लिया है। रसगुल्ला, गोलमाल, मौजी आदि कई पत्र उसके स्वर में स्वर मिला रहे हैं। मीठा रसीला रसगुल्ला तो हड़प ही लिया गया। अब देखें गोलमाल के साथ क्या गोलमाल होता है। मौजी महाशय सचमुच ही एक अलमस्त मौजी हैं। इनका, आवरण पर का, व्यंग्य चित्र 'यथानाम तथा गुणः' है। हमारे सामने तीसरी संख्या है। इसमें "कब तक जूतेखोरी" शीर्षक लेख पतित हिन्दू जाति को अच्छी उत्तेजना देनेवाला है। मतवाले की तरह इसके भी कई विषय विभाग हैं, जैसे डंके की चोट, चलता पुरजा, रंगमंच आदि। लेखक भी कुड़मधुम, दीमकानन्द, जबरदस्तसिंह, रंगी और बेतुका हैं। दिल का दर्द नामक गल्प क़ाबिल तारीफ़ है। टिप्पणियों में भी खासा ज़ोर है। अछूतों से घृणा नाम का व्यंग्य चित्र भावमय है। सहयोगी को व्यक्तिगत आक्षेप और अश्लील बातों से सदा दूर रहना चाहिये। हास्य वही स्थायी रह सकता है, जिसमें गहराई और पते की बात हो। हम मौजी महाशय की दिन दूनी रात चौगुना बढ़ती देखना चाहते हैं।

३—**भारतगौरव**—साप्ताहिकपत्र; सम्पादक-श्रीयुत इन्द्रचन्द्र जी महता; प्रकाशक—ओसवाल-गौरव-पुस्तकालय; पता—७-१, बाबूलाल लेन, कलकत्ता, वार्षिक मूल्य ३)

सुप्रसिद्ध हिन्दी-साहित्य-सेवी कलकत्ता नगर से कई हिन्दी पत्रों का जन्म हो रहा है। "भारत गौरव" पत्र सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयों का परिपोषक जान पड़ता है। हमारे

सामने गौरव की पहली संख्या है । मुखपृष्ठ पर होनहार सुकवि पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी की एक भावमयी कविता है। श्रीयुत पं० मातासेवक पाठक लिखित भारतगौरव शीर्षक लेख इस पत्र के बहुत उपयुक्त है। भारतगौरव में एक लेख देखकर हमें बड़ा दुःख हुआ। उस लेख का नाम है "तुम बड़े निर्दयी हो" और उसके लेखक हैं श्रीयुत श्रीकृष्ण पांडेय। इस लेख को पढ़कर सम्पादक महोदय से हमारी प्रार्थना है कि वे इस गौरव (?) को कार्यालय में ही रक्खें, कृपाकर किसी बालक या बालिका के हाथ में न दें। हमें आशा है कि गौरव अपने नामका स्मरण कर ऐसे ऐसे गन्दे और अनुपयुक्त लेखों को भविष्य में स्वीकार न करेगा। परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह भारतगौरव की मान-मर्यादा अक्षत रक्खे।

पुस्तकें

१—रस परिज्ञान—लेखक आयुर्वेद-पंचानन श्रीयुत पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल वैद्य भिषङ्मणि; प्रकाशक—सुधानिधि कार्यालय, दारागंज, प्रयाग। डिमाई अठपेजी पृष्ठ १०५; छपाई कागज उत्तम, मूल्य ॥≡)

श्रीमान् वैद्यजी ने इस पुस्तक की रचना स्वर्गीय रीवांनरेश महाराज वेंकट रमण सिंह जू के आज्ञानुसार की है। इसका उद्देश यह है कि आयुर्वेद संसार भर की चिकित्साविद्याओं में सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि उसकी रचना वैज्ञानिक नींव पर हुई है। पुस्तक में सब ३५ प्रकरण हैं। पंचमहाभूत, महाभूतों की पहचान, पदार्थों के गुणदोष, रसों की उत्पत्ति, रसों की पहचान, रसों की कार्यशक्ति, रस वीर्यादि का विशेष वर्णन, रस परिज्ञान की महिमा आदि उच्च विषयों पर वैज्ञानिक रीतिसे बड़ी ही ऊँची विवेचना की गई है। इस ग्रन्थ के देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि आयुर्वेद का आसन संसार की चिकित्साओं में कितना ऊँचा है। हमारी राय में, यह पुस्तक प्रत्येक वैद्य डाक्टर और हकीम के हाथ में होनी चाहिए।

२—मिश्र की स्वाधीनता—लेखक श्रीयुत बाबू सम्पूर्णानन्दजी बी. एस सी. प्रकाशक—सुलभग्रन्थ-प्रचारक मण्डल, २३,

शंकरघोष लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २१६; कागज सुन्दर, छपाई साफ, सजिल्द मूल्य २)

बाबू सम्पूर्णानन्दजी क्रान्तिसम्बन्धी इतिहास के अच्छे ज्ञाता हैं। आपने विविध क्रान्तियों पर कई निबन्ध लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपने मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास बड़ी ही कुशलता से अंकित किया है। स्वार्थपर अंग्रेज इतिहासकारों ने स्वतंत्रताप्रिय मिश्र जाति की सच्चाई पर जो रंगारेजी की है, उसको कलई इस छोटी सी पुस्तक में अच्छी तरह खोली गई है। लेखक ने अंग्रेजों के दृष्टिकोण, सुलतान और राष्ट्रीयदल, सरकेशियन षड़यंत्र, अंग्रेजी कूटनीति और शिलनर कमीशन पर अच्छा ध्यान दिया है। मिश्रकी स्वाधीनता का प्रकाण्ड ताण्डव देख कर प्रत्येक पददलित गुलाम जाति के हृदय में स्वाधीनता के लिये श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। इस पुस्तक को प्रत्येक राष्ट्र-सेवी नवयुवक अपने हृदय में स्थान दे, यह हमारी परमात्मा से प्रार्थना है।

३—**सत्यालोकम्**—लेखक एक अज्ञातनामा महोदय; अनुवादक श्रीयुत पं० ठाकुरदत्त मिश्र; प्रकाशक श्रीयुत अविनाशचन्द्र बन्द्योपाध्याय; पृष्ठसंख्या ३८; मूल्य =)

इस पुस्तक में श्रीमच्छङ्कराचार्य कृत मोह-मुद्गर के ढंग के २१ श्लोक हैं। ग्रन्थकार ने स्वयं संस्कृत में प्रत्येक श्लोक की टीका भी लिखी है। पं० ठाकुरदत्तजी मिश्र ने इसी टीका का कुछ विस्तार के साथ अनुवाद किया है। जिस प्रकार स्वामी शंकराचार्य ने जगत् को असत् कहा है, उसी प्रकार इस पुस्तक के लेखक ने जगत् का यावत् पदार्थ सत सिद्ध किया है। पुस्तक का सिद्धान्त वेदान्त, वैष्णवधर्म और शाक्तधर्म का सम्मिश्रण है। अनन्त सत्य स्वरूपा माता की अभिव्याप्ति का अनुभव करके ग्रन्थकार ने जो दिव्योद्गार निकाले हैं वे मनन करने योग्य हैं। अनुवादक महोदय का श्रम परम प्रशंसनीय है। पुस्तक उपादेय है।

४—आन्हिक कर्म प्रयोग—(कर्मरहस्यार्थबोधिनी भाषा टीका सहित)—लेखक श्रीयुत पं० बदरीदासजी पुरोहित वेदान्त भूषण, प्रकाशक—श्रीपुष्टिकर वेद पाठशाला, कलकत्ता; पृष्ठसंख्या २६५; मूल्य १)

इस पुस्तक में नित्य-नैमित्तिक कर्म, त्रिकाल संध्योपासन, सन्ध्या के उपदेश, प्राणायाम, अघमर्षण, गायत्री-जप, वेदाध्ययन, देवपूजा, तर्पण-प्रयोग, वैश्वदेव, अतिथिसत्कार, गृहस्थधर्म-कर्म आदि साधारण धर्मों का संग्रह किया गया है। प्रणवध्यान सम्बन्धी तिरंगा चित्र उच्च सिद्धान्त-निदर्शक है। एक तिरंगा सुन्दर चित्र श्रीकृष्ण का है। प्रार्थनाओं का संग्रह ग्रन्थकार की अध्ययनशीलता का परिचय दे रहा है। मंत्रों का जो अर्थ किया गया है वह विशेष रीति से मनन करने योग्य है। इस धर्म लुप्तप्राय समय में हम ऐसी पुस्तकों के प्रचुर प्रचार की सदा मनस्कामना करते हैं।

५—त्रिकाल संध्योपसना—मूल्य -)

लेखक और प्रकाशक "आन्हिक कर्म प्रयोग" पुस्तकवाले सज्जन; इस पुस्तक में त्रिकाल संध्योपासना का विस्तृत विवरण है। पुस्तक उपादेय है।

"साहित्यानन्द"

धन्यवाद !

वृहत् संग्रहालय के लिए निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। प्रेषक महोदयों को अनेक हार्दिक धन्यवाद !

१—संस्कारविधि	भीमसेन शर्मा	ब्रह्मप्रेस, इटावा
२—नवग्रह समीक्षा दर्पण	"	"
३—आपस्तम्बीय गृह्य सूत्र	"	"
४—यज्ञ परिभाषा सूत्र संग्रह	"	"
५—मानव गृह्य सूत्रम्	"	"
६—श्वेताश्वतरोपनिषद्	"	

७—पूजा फूल	मुरलीधर	ब्रह्मप्रेस, इटावा
८—इष्टि संग्रह	भीमसेन शर्मा	"
९—वार्तिक सूत्रपाठ	"	"
१०—मानव धर्म संग्रह	लक्ष्मणसिंह	"
११—तीर्थ मीमांसा	भीमसेन शर्मा	"
१२—आर्यमत निराकरण प्रश्नावली	"	"
१३—श्राद्ध मीमांसा	"	"
१४—भास्कराभास निवारण	भवानीप्रसाद	"
१५—दयानन्द मत विद्रावण	"	"
१६—विधवा विवाह मीमांसा	भीमसेन शर्मा	"
१७—प्रश्नोपनिषद्	"	"
१८—कठोपनिषद्	"	"
१९—भीमसेन शर्मा का जीवनचरित,	पूर्णसिंह	"
२०—शिवाजी और मराठा जाति,	पं० ब्रजनन्दनप्रसाद	"
२१—गुरु गोविन्दसिंह	"	"
२२—भारतीय व्याख्यान	केशवदेव उपाध्याय	"
२३—आर्य आदर्श	शोभाराम	"
२४—आर्ष कृषि विज्ञान	पूर्णसिंह	"
२५—सुमन वाटिका	ब्रजनन्दन प्रसाद	"
२६—आदर्श रमणी	शालिग्राम	"
२७—यूनानकी कहानियां	ब्रजनन्दन प्रसाद	"
२८—गोगुणावली	शोभाराम	"
२९—कविता रत्न माला	ब्रह्मदेव मिश्र	"
३०—सन्तान शास्त्र	भीमसेन शर्मा	"
३१—मूर्तिपूजा खंडन	ब्रह्मदेव शर्मा	"
३२—गणरत्न महोदधि	"	बाबूराम शर्मा, इटावा
३३—संजीवन बूटी	बाबूराम शर्मा	"
३४—धर्म बलिदान	"	"
३५—शब्दानुशासन	"	"

३६—अथर्वेद भाष्य	गिरिधारीलाल, बाबूराम शर्मा, इटावा	
३७—आदम उत्पत्ति	सत्यदेव	"
३८—दन्त रक्षा	डा० महेन्द्रलाल, सुखसंचारक कंपनी, मथुरा	
३६—जवानी की निशानी	"	"
४०—रत्नों की खान	क्षेत्रपाल शर्मा	"
४१—चिकित्सा सिन्धु	"	"
४२—नूतनपाक प्रकाश	लक्ष्मणदास, सुखसंचारक कंपनी, मथुरा	
४३—सफलता के सिद्धान्त	डा० महेन्द्रलाल गर्ग	"
४४—ध्रुवदेश	"	"
४५—हास्य मंजरी	सूर्यनारायण	"
४६—व्यापार शिक्षा	क्षेत्रपाल शर्मा	"
४७—तिलकी ओट पहाड़	"	"
४८—हजार व्यापार	"	"
४६—फोटोग्राफ़ी शिक्षा	"	"
५०—साबुनशिक्षा	"	"
५१—जापानी स्त्री शिक्षा	डा० महेन्द्रलाल गर्ग	"
५२—नई हारमोनियम गाइड		"
५३—गर्भाधान विधि	डा० महेन्द्रलाल गर्ग	"
५४—प्रेम का परिमाण	"	"
५५—वृद्धावस्था के दुख दूर करने के उपाय	"	"
५६—गीतागायन	रमेशराय, बा० प्रभुदयाल मीतल	
५७—गल्पांजलि	शिवनारायण द्विवेदी	"
५८—अमेरिका की स्वाधीनता	गयाप्रसाद तिवारी	"
५६—राष्ट्रीय आन्दोलन	प्रभुदयाल	"
६०—भारतीय राजस्व	भगवानदास केला, लेखक—वृन्दावन	
६१—स्वास्थ्य और बल	प्रो० रमेशचन्द्र, गुरुकुल वृन्दावन	
६२—ज्योतिचन्द्रिका	बा० गङ्गाप्रसाद आर्यप्रतिनिधिसभा आगरा यू.पी.	
६३—सूर्यसप्ताश्व वर्णन	"	"

६४—आदर्शसुधारक, दयानन्द अनुभवानन्द, आर्यप्रतिनिधि सभा आगरा यू पी.

६५—ईश्वरीय ज्ञान	प्रो० बालकृष्ण	,,
६६—जाति भेद भाग २	प्रो० गङ्गाप्रसाद	,,
६७--सारसंग्रह	पं० उमाशङ्कर वैद्य मथुरा	
६८—प्रत्यक्ष दर्पण	विश्वनाथ देव	,,
६९--कृषकदुर्दशानाटक ईश्वरीप्रसाद	हरिश्चन्द्रब्रदर्स अलीगढ़	
७०—मातृबन्दना ईश्वरी प्रसाद	हरिश्चन्द्र ऐण्ड ब्रदर्स	
७१—अन्योक्ति तरंगिणी	,,	अलीगढ़
७२—श्रीमहाभारत	,,	द्वादशश्रेणी प्रेस अलीगढ़
७३—" रामलीला	,,	,,
७४—भारतवर्षमें अंग्रेजीशासन	रामस्वरूप वैश्य	,,
७५—शेरलाकहाम्स	,,	,,
७६—हिन्दी की प्रथम पुस्तक	,,	,,
७७—" दूसरी "	,,	,,
७८—" तीसरी "	,,	,,
७९—" चौथी "	,,	,,
८०—" पांचवीं "	,,	,,
८१—हिन्दी व्याकरण प्रवेशिका	,,	,,
८२—हिन्दीपत्र प्रवेशिका	,,	,,
८३—गुटका रामायण	,,	,,
८४--राम रामायण	तोताराम वर्मा	भारतबन्धु प्रेस हाथरस
८५--सूत्र शिल्पशिक्षक	विपिनविहारी लाल	,,
८६—विवाह विडम्बन नाटक	तोताराम	,,
८७—नीतिसार	,,	,,

आवश्यकता

हमें कुछ ऐसे सज्जनों की आवश्यकता है, जो प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की शुद्ध और स्पष्ट प्रतिलिपि कर सकें। यह काम कराने के लिए हम उन्हें बाहर भी भेजेंगे। जो सज्जन यह काम करना चाहें, वे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करके तय करलें।

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग,

कवि-कौमुदी

हिन्दी-कविता की सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक—श्रीयुत पं० रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी-मंदिर, प्रयाग, से "कवि-कौमुदी" नामक एक सचित्र मासिक पत्रिका शीघ्र ही निकलनेवाली है। इसके द्वारा हिन्दी-कविता को अधिक सरस, सरल और समयोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जायगा। नौसिख पद्य-रचयिताओं के लिये पद्य-रचना-सम्बन्धी सम्मतियां प्रत्येक अंक में दी जायंगी। प्रत्येक अंक में एक चित्र भी दिया जायगा। वार्षिक मूल्य २)

निवेदक—

संचालक, कवि-कौमुदी

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क १०; ज्येष्ठ १९८१

संपादक
वियोगी हरि

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रत्यंक ≡)

वार्षिक मूल्य २)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। जो लोग भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाकव्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र—"प्रचार मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाश करने वा न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

आवश्यक सूचना

६—आज से सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी।

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर, दो आना कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) रुपया सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ़ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं। अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

संयोजक,

मिती चैत्र कृष्ण १० पुस्तक-प्रकाशन-समिति
सं० १९८० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग।

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थरत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला [illegible]ाचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही [illegible]। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर लिखाये और प्रकाशित किये जाते हैं। अब तक इस माला में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग।

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव हैं, ओज है और प्राण हैं। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने क्लिष्ट स्थानों पर टिप्पणी दे दी हैं और कठिन शब्दों का अर्थ लिख दिया है। कविता में सूत्र रूप से वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, यदि जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और यदि साहित्यिक आनन्द लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलङ्कार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक तथा भूषण कवि के फुटकर कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है आदि गम्भीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भाँति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

३—भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसाप्लावित न होता होगा ? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखे हैं। इसकी प्रस्तावना साहित्यमर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक जिसकी पृष्ठ संख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग।

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि, हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्र॰ प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात रहित सम्म॰ दी थीं, कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इस॰ रोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यान भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मू॰

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवा जी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी.
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाह-

भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्द-करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदास जी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह जो साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में स्वीकृत भी है। मूल्य ।)

९—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का ... किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता ... पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४४८, मूल्य २)

१०—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम. ए., बी, एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

११—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सूरदास जी रचित सूर-सागर से २५० पद-रत्न चुन कर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण जी गोस्वामी ने

लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। तब उसे पार कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लाला-यित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की सुन्दरता भी पर्याप्त रूप से दिखला दी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

१२—बिहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्या-र्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है इसमें शृङ्गार रस के दोहों ही का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना

किसी सङ्कोच के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है। ब्रजभाषा का कोई भी प्रसिद्ध कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गयीं हैं जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गयी है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११ प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११ } ज्येष्ठ, संवत् १९८१ { अङ्क १०

वाणी-वंदना

जाके लघु गुरु सुर धुर लगि देखिबे कों
थकि गे सहसनैन इंद्र सुखदानी के।
सेस द्वै हजार रसना हू सों न पायो पार,
रहै कौन हाल बिधि संकर सैनानी के॥
'ग्वाल' कवि ध्वनि बरनातमक रूप दोऊ,
ताही तें लसत लोक तीनौ राजधानी के।
जेते हैं बिमुख, ते न मुख हैं मुखन माहिं,
वेई मुख मुख हैं, जे सनमुख बानी के॥

—ग्वाल

प्रेमसखी

[लेखक—श्रीयुत पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द' विशारद]

हिन्दी-संसार में स्त्री-कवियों की भी कुछ कविताएँ हैं। जिस प्रकार हिन्दी के प्राचीन युग में मीराबाई, दयाबाई, सहजोबाई, प्रवीणराय आदि ने अपने काव्य द्वारा हिन्दी की उज्ज्वलता अधिक की है, उसी प्रकार परमरामोपासिका 'प्रेमसखी' ने भी हिन्दी को अलंकृत किया है। मीरा की भांति ये भी ईश्वरोपासना में मग्न थीं। हां, मीरा ने कृष्णोपासना की थी, और प्रेमसखी ने रामोपासना।

इनके विषय में हिन्दी के इतिहास 'मिश्रबन्धु-विनोद' में कुछ अधिक नहीं लिखा गया है। शिवसिंहसरोज में तो केवल उनका जन्मकाल-मात्र दे दिया है। प्रेमसखीजी की उस समय क्या स्थिति थी और उनका जन्मकाल या कविताकाल क्या है, इन बातों को ढूँढ़ निकालने का कोई अवलम्ब नहीं है। इनका बनाया हुआ केवल एक ग्रन्थ 'श्री सीताराम नखसिख है'। मैंने 'नागरी-प्रचारिणी-सभा' में भी खोज की, परन्तु मिश्र महोदयों के दिये हुए 'कवित्त' और 'होरी' नामक ग्रन्थ नहीं मिले। उपर्युक्त ग्रन्थ में इन्होंने कुछ भी सन्-संवत् नहीं दिया है, अतएव मैं इनका समय ढूँढ़ निकालने में असमर्थ हूं। हाँ, शिवसिंहजी सेंगर का दिया हुआ जन्मकाल कुछ ठीक ज्ञात होता है। सम्भव है, इन्हें कोई और ग्रन्थ मिला हो, क्योंकि सरोजकार ने जो उदाहरण दिये हैं वे इस 'श्री सीताराम नखसिख' के नहीं हैं। सरोजकार ने इनका जन्म-संवत् १७९१ लिखा है। इन्हीं प्रेमसखी के कुछ छन्द मैंने पं० कन्हैयालाल द्वारा संग्रहीत 'श्री राम कथामृत'-बालकाण्ड में देखे हैं, जो उपर्युक्त ग्रन्थ में नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इन्होंने और ग्रन्थ भी रचे थे।

'श्री सीताराम-नखसिख' की एक प्रति मेरे पास है। यह ग्रन्थ लैथो (पत्थर के छापे) पर ब्रजचन्द्र-यंत्रालय, काशी से छपा

है। इसमें कुल १४२ छन्द हैं। बीच में एक श्लोक भी है। कविता इस ग्रन्थ की बहुत अच्छी है, इसमें सन्देह नहीं। इन्होंने एक प्रकार से कृष्ण लीला, रामलीला पर घटाई है। क्योंकि इस ग्रन्थ में 'राम-सीता-विहार, सीता-राम और लक्ष्मण आदि का होली खेलना' भी वर्णित है। इसी ग्रन्थ की कुछ कविताओं पर मैं यत्किंचित् प्रकाश डालना चाहता हूं। इस ग्रन्थ में सीताजी का नखसिख और रामजी का सिखनख वर्णित है। सीताजी की एड़ी का वर्णन देखियेः—

कवित्त

एड़ी की ललाई जुत जावक सुहाई, मानों
कंचन-कटोरी भरि पावक सों ताई है।
धरा पै धरत पाय नैन तरसाय उठैं,
भू में प्रतिबिम्बन की फैलत ललाई है॥
नूपुर की झलकैं जराऊ जोति हीरन की,
देखि 'प्रेम सखी' ताकी उपमा बताई है।
आई रघुनाथ की पठाई पायँ गहि रही,
संध्या राग रंजित नखत संग ल्याई है॥

कैसी सुन्दर उपमा है! महावर लगी हुई एड़ी की ललाई की छाया भूमि में पड़ रही है, और नूपुर में जड़े हुए हीरों की उज्ज्वलता उसी पर शोभायमान है। प्रेमसखीजी कहती हैं, यह ऐसा ज्ञात होता है, मानो रघुनाथजी की भेजी हुई, नक्षत्रों सहित, राग-रंजित संध्या आकर सीताजी के पैरों को पकड़ रही है। यहां 'राग' शब्द कमाल कर रहा है।

नेत्रों का सौन्दर्य देखियेः—

कवित्त

नैन अनियारे तारे पुण्डरीक पान सारे (?)
सिय पुतरीन पै द्विरेफ गुन पारे हैं।
कछु कजरारे सील सागर सुढार वारे,
बरुनी बिसाल धारे ओर छोर वारे हैं।

दीन पै सनेहवारे प्रीतम के प्रानप्यारे,
उपमा न पावत विरंचि रचि हारे हैं।
मीन, मृग, खंजन बनाये बिधि 'प्रेमसखी,'
वारि, वन, व्योम बसैं लज्जित विचारे हैं॥

मीन—जलमें, मृग—वन में, और खंजन—आकाश में क्यों बसते हैं? इसलिए कि, वे सीताजी की आंखों को समता में नहीं ठहरते। बेचारा ब्रह्मा भी उपमा बनाते बनाते हार गया!

सीताजी का केश-वर्णन :—

कवित्त

मेचक सघन सुकुमार हैं सेवारहू ते,
सीताजू के सीस के बिराजत बिसाल बार।
मोर पखवार तमधार मरकत तार,
पन्नग-कुमार रचे कोटि कोटि करतार॥
उपमा के हेत 'प्रेमसखी' बुधिमान प्रभु,
करत रहत नित नये नये उपचार।
मोर पच्छ डारैं, त्वच पन्नग नवीन धारैं,
मन में न आवै तो बनावै बिधि बारबार॥

सीताजी के सीस के सुन्दर सघन केश सेवार से भी अधिक कोमल हैं। ब्रह्मा ने, इनकी कालिमा की उपमा के लिए, मोरों के पत्त, तम-धार, मरकत (नीलमणि) तार और सर्प-कुमार भी बनाये, पर ये सब सीताजीके बालों की बराबरी न कर सके। ब्रह्मा ने उनके लिए एक नया उपचार यह रच दिया कि मोर अपने पत्तों को गिरा कर नित नवीन पत्त धारण करें, और सर्प अपनी (त्वचा) केचुल बदला करें, फिर भी बराबरी न हो सकी! कैसी चोखी बात है! धन्य 'प्रेम सखी'!

ज़रा, रघुनाथ जी के चरणों की प्रशंसा तो सुनिये:—

कवित्त

कलपलता के सिद्धिदायक कलपतरु,
कामधेनु कामना के पूरन करन हैं।

तीनि लोक चाहत कृपा-कटाच्छ कमला को,
कमला सदाई जाकी सेवत सरन हैं।

चिन्तामनि चिन्ता के हरनहार 'प्रेमसखी'
तीरथ जनक वर-वारिज-बरन हैं।

नख विधु-पूषन, समन सब दूषन ये,
रघुवंस-भूषन के राजत चरन हैं॥

कैसी सुन्दर सूझ है! रामचन्द्रजी के चरण कलपतरु के लिए—जो सबकी कामना को पूर्ण करनेवाला है—कलपतरु अर्थात् उसके मनोर्थ को भी पूर्ण करनेवाले हैं। कामधेनु—जो सब की कामना को पूर्ण करती है—उसकी कामना को भी पूर्ण करने में ये समर्थ हैं। लक्ष्मी सदा इनको शरण चाहती है। यही नहीं, चिन्तामणि—जिसके पास रहने से सब चिंता दूर हो जाती है—उसको भी यदि चिन्ता हो तो ये दूर कर सकते हैं। सुन्दर कमलों के वर्णवाले ये चरण तीर्थों के तो पिता हैं। इन चरणों के नखमात्र चन्द्रमा का पोषण करनेवाले हैं, फिर इनकी तो बात ही क्या। ये तो सभी दुःखों को दूर कर सकते हैं। ऐसे सुन्दर फलदायक रघुवंशभूषण रामजी के चरण हैं। यही छन्द 'मिश्रमहोदयों' ने उदाहरणार्थ दिया है।

होली और युद्ध का रूपक देखिये:—

सवैया

फूलछरी तरवारि चलीं उततें पिचका भरि मारत तीर हैं।
भींजि गयीं रँगतें सिगरी बिथुरी अलकैं न सँभारत चीर हैं॥
सस्त्र प्रहार सहैं सिगरे भट रोस-भरे न गनैं तन-पीर हैं।
'प्रेमसखी' प्रमदागन मत्त खरे मनों घायल घूमत वीर हैं॥

कैसा अच्छा रूपक है ! अर्थ सरल है।

स्त्रियां कैसा 'रोब गांठ' रही हैं ! ज़रा, देखिये तो। कहती हैं, कि अजी ! तुम्हें स्त्रियों की पोशाक पहना कर श्रीसीताजी के सम्मुख नचावेंगी। ज़रा पकड़ तो पावें, फिर देखो हम क्या करती हैं:—

सवैया

कंचन की गुजरी बिछिया तुमको लहँगो डड़िया पहिराइहैं।
कंचुकी साजि खबाय बिरी पहिराइ चुरी अवतंस बनाइहैं॥
मांग सवाँरि कै 'प्रेमसखी' सिर सेंदुर दै फिरि अंक लगाइहैं।
दै तियकी छवि सुन्दरजू ! हम लाड़िलीजू के हजूर नचाइहैं॥

इस छन्द के पढ़ने के साथ ही 'पद्माकर' का 'फाग के भीर अभीरन' वाला पद याद आ जाता है।

रामचन्द्रजी जनक नरेन्द्र की फुलवारी में गये हैं। उन्हें देख कर एक सखी कहती है:—

कवित्त

कोसल कुमार सुकुमार हैं री ! मारहू तें,
माई ! घेरि आई तापै सोभा त्रिभुवन की।
फूल फुलवाई में चुनत दोऊ भाई 'प्रेम-
सखी' लखि आई गहे लतिका द्रुमन की॥
चरन-लुनाई दृग देखे बनि आई जिन
जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की।
चलत सुभाय मेरो हियरा हेराय हाय,
गड़ि जनि जाय पायँ पाँखुरी सुमन की॥*

यद्यपि यह भाव पुराना है, पर कैसी अच्छी तरह कहा गया है, और कैसे सुन्दर सांचे में अच्छे अवसर पर ढाला गया है !

बस, उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से 'प्रेमसखी' की कवित्व-शक्ति और 'श्री सीताराम नखसिख' की उपादेयता ज्ञात हो गयी होगी।

* यह छन्द 'श्री सीताराम नखसिख' में नहीं है।

धारा-प्रवाह कैसा स्वाभाविक है? शब्दों का संगठन भी कैसा ज़ोरदार है? निःसंदेह प्रेमसखीजी एक सफल कवि थीं। इस ग्रन्थ में ऐसे अनेकों वर्णन हैं, पर विस्तार-भय से हमने अधिक नहीं दिये। ग्रन्थ में, कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा और पद हैं। मैं खोज कर रहा हूं, यदि इनके और ग्रन्थ मिले तो फिर उन्हें प्रकाशित कराऊँगा। प्रेमसखीजी कैसी कविता करती थीं, यह साहित्य-मर्मज्ञ स्वयं विचार कर लें। इस ग्रन्थ के होलीविषयक सभी छन्द 'होली गुलाल' संग्रह में भी पहले ही से संग्रहीत हैं।

जातीय भाषा*

(ले०—श्रीहरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक")

(१)

मंजुल महिमामयी महा, मृदु मूर्त्ति मनोहर।
श्रवण सुखद शुचि सरस सुधा साफल्य सरोवर॥
पूता परम प्रफुल्ल प्रभा प्रतिभा प्रकाशिनी।
विशद विवेक विकाश बंद्य वैभव विलासिनी॥
रसमयी, रुचिमयी, मुदमयी, ललित लता लालित्य की—
उलहे मानस में छविमयी फिर हिन्दी-साहित्य की।

(२)

नीतिनिपुण नागरी-नेह-नीरद घिर आयें—
बरसें बुन्द विवेक विमल वर वारि बहायें।
धोकर के मालिन्य हृदय-थल मंजु बनावें—
प्रतिपल परम पुनीत प्रेम के बीज उगावें।
फिर विकच उठें सबके बदन, भूल भयानक भ्रम भगें।
जातीय ज्योति से जगत में, जगर-मगर जीवन जगें॥

[*यह कविता ५ मई को मैनपुरी-कविसम्मेलन में पढ़ी गई थी।
सम्पादक]

(३)

उपजें सच्चे सूर शूरता फिर दिखलायें—
निज भाषा की भक्ति शक्ति सबको सिखलायें।
तुलसी, केशव, सुकवि विहारी से फिर आयें—
करैं धन्य सब भांति जाति-भाषा अपनायें।
बस, चमक उठे फिर चन्द्र की चारु मनोहारी कला—
हिन्दीभाषा की कृपा से, भारत हो फूला-फला ॥

(४)

हिन्दी ही फिर बने हमारी जीवन-आशा।
हिन्दी ही फिर बनें हमारी सच्ची भाषा ॥
हिन्दी ही फिर हमें आर्य-गौरव बतलावे।
हिन्दी ही फिर हमें शान्ति की सुधा पिलावे ॥
हाँ! हिन्दी भाषा फिर हमें, भर दे सरस उमंग में।
रंग दे कपड़े, क्या हृदय तक, अपने उज्ज्वल रंग में ॥

(५)

पुलकित करदे रोम-रोम निज प्रभा जगाकर—
निर्भय करदे हमें वीर-चरितों को गाकर।
अङ्कित करदे हृदय, देश की ममता प्यारी—
विकसित करदे पुनः कलित कीरति की क्यारी।
बस, फिर घर-घर में ज्ञान की गुरु-गौरव-गंगा बहे—
जय जय भारत जय भारती, प्रमुदित हो सब जग कहे!

(६)

हिन्दी-हित के लिये करें सर्वस्व निछावर—
हिन्दी रक्षा हेतु, रहें, सन्नद्ध बराबर।
प्यासे हों, तो पियें नागरी-रस के प्याले।
सब मतवाले रहें, नागरी पर मतवाले ॥
"हिन्दी प्रियतामय पन्थ के, प्यारे होवें सब पथिक—
घर विजय वैजयन्ती उड़े विभव बढ़े दिन-दिन अधिक ॥"

कवि और कविता

[ले०—श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव्य]

सम्मेलन-पत्रिका में कविता-कौमुदी का प्राप्ति-स्वीकार शीर्षक एक पत्र पढ़कर, कवि और कविता के विषय में अपनी सम्मति भी प्रकाशित करने की इच्छा हुई। इस विषय पर बहुत सी अनर्गल बातें भी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने में आईं। जहां उन्हें पढ़कर खेद हुआ था, वहां इस पत्र में की हुई विवेचना पढ़कर कुछ संतोष भी हुआ। इस विषय पर जो मेरी निजी सम्मति है, उसे प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जावेगा। उसीमें उक्त विवेचना से जो मेरा मतभेद है वह भी ज्ञात हो जायगा। कदाचित् इस विषय पर किसी गहन विवेचना करनेवाले को मेरी बातें कुछ सुझा दें, क्योंकि छोटी छोटी मतियों और सम्मतियों का भी कुछ न कुछ उपयोग होता ही है।

सचमुच कवि पहचानने का कोई सुलभ साधन नहीं है, न यही कहा जा सकता है कि कवि या कविता क्या क्या नहीं है। न जाने किस असौन्दर्य में सौन्दर्य छिपा हुआ है, और किस सौन्दर्याभास में भद्दापन। मनुष्य की बुद्धि बहुत परिमित है। वह बेचारा यह कह ही नहीं सकता कि किन किन संभव रंग ढंगों में कवित्व है और किन किन में नहीं। उदाहरणार्थ, यह बात सर्वसम्मत है कि जिन कृतियों में उपदेश ठूंसा जाता है वे कविता नहीं हैं। किन्तु फिर भी इस बात को डंके की चोट पर नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि कोई ऐसा मतवाला उपदेशक पैदा हो जाय कि जिसका एक मात्र उद्देश्य उपदेश देना हो, पर उसकी हर बात कविता हो। ऐसी अवस्था में हमको अपना निश्चित मत एक ओर रखकर उसे कवि कहना ही पड़ेगा। उपदेश-गर्भित रहने ही से कोई बात 'अकविता' नहीं हो जाती। जहां जान पड़ता है कि उप-

देश ठूंसा गया है वहीं कवित्व की कला की हानि होती है। मगर जहां सरासर उपदेश ठूंसा गया हो—उपदेश देना उद्देश्य ही हो और फिर भी हर बात कविता हो, वहां हम क्या कहेंगे। कबीर की बानी इस बात की उदाहरणस्वरूप है।

महाकवि (Keats) कीट्स और भवभूति को तत्कालीन समालोचकगण कवि मानने को ही तय्यार नहीं थे। पर समय ने ऐसा पलटा खाया कि उन्हीं को आजकल के कुछ विचारक प्रतिभा में शेक्सपियर और कालिदास से भी बढ़ा-चढ़ा मानने को उद्यत हैं। ऐसी अवस्था में कवि और कविता के बारे में कोई बहुत निश्चयात्मिका बात कहना अनधिकार चेष्टा है। किन्तु फिर भी 'संशय' देवता इस विषय में ऐसे प्रधान और प्रभावशील नहीं है कि सारा कूड़ा करकट संदिग्ध-मूल्यता की आड़ में कविता का 'पास' लेकर साहित्य-मन्दिर के भीतर प्रवेश कर जावे। साधारणतया हम कह सकते हैं कि कविता क्या है और क्या नहीं है। हां, कोई बाल की खाल निकालनेवाला विरोध करने पर उतारू हो जाय, तो अवश्य मुख बन्द कर देगा।

समालोचक-प्रवर मेथ्यू आरनाल्ड (Matheu Arnold) का कहना है कि Poetry is at bottom a criticism of life (हम 'रसात्मकं वाक्यं काव्यं' परिभाषा को इसलिये छोड़े देते हैं कि उसका अर्थ रस के अर्थ पर अवलम्बित है। और रस का अर्थ करने में ही एक पूरा विवाद खड़ा हो सकता है।) उक्त परिभाषा में केवल 'at bottom' विशेषण (limitation) से संतोष नहीं होता। इतना अवश्य ज्ञात होता है कि कविता की 'तह' क्या है—उसका सार क्या है, पर उसकी सतह के बारे में, उसके रूप रंग के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। हमने यह परिभाषा इसलिये चुनी है कि यह काव्य-सागर की तली का पता तो देती है। अन्य परिभाषाओं में कोई तो रूप बता के रह जाती है, कोई रंग बताने का प्रयत्न करती है, तो कोई शरीर की आकृति चित्रित करना चाहता है, या उसके निराकार जीव को साकार बनाने का व्यर्थ

प्रयत्न करती है। किन्तु केवल तली के दिग्दर्शन से तो संतोष नहीं हो सकता, सागर के शरीर के बारे में भी कुछ इङ्गित होना चाहिये। मेरी तुच्छ सम्मति में यदि हम यह परिभाषा यों परिवर्तित करलें कि Poetry is crititicism of life as an out-pour of a touched heart' तो अत्युत्तम हो। विद्या-गर्वी का जीवन-रहस्योद्घाटन, या हिताकांक्षा से उपदेश देनेवाले का जीवन-रहस्योद्घाटन कभी भी कविता नहीं हो सकता। 'स्वयमनुभूत वेदना से अथवा हृदयंगम दूसरे की वेदना से अनायास ही जो जीवन का रहस्य उद्गार स्वरूप मुख से बाहर फिसल पड़ता है, वही सब से ऊंची कविता है।' उसमें वह करुण भाव, वह वेदना, वह दर्द छिपा रहता है कि कभी कभी ऊपर से देखने में कुछ न होते हुए भी वह किसी समय प्राणिमात्र के हृदय को हिला देता है। मेरी विशेष सम्मति है कि सब प्रकार की अनुभूति नहीं, केवल वेदना की अनुभूति ही काव्यका प्रधानतम कारण है। शृङ्गार में भी वियोग ही शुद्ध शृंगार रस की जान है, संयोग नहीं। वियोग-शृङ्गार करुण रस का रूपान्तर मात्र है। अतएव मेरी तुच्छ मति में—उच्छृंखलता क्षमा हो—करुण रस ही रसराज है, श्रेष्ठ शृङ्गार रस में भी करुण रस ही परिव्याप्त रहता है। वियोग में ही शृङ्गार का सच्चा आनन्द है, रसका चरम परिपाक है। कम से कम मैंने अपने लिये कविता की परिभाषा—उसका स्वरूप—ऐसा ही निर्धारित किया है।

कुछ लोग कहते हैं कि काव्य काव्य ही के लिये है, उसका और कोई उद्देश्य नहीं। मैं मानता हूं कि यह लक्ष्य ऊंचा है, पर मेरी समझ में इससे भी ऊंचा लक्ष्य काव्य का है। ऐसा लक्ष्य रखना तो पश्चिम की दासता जान पड़ती है, क्योंकि हमारे यहां तो विविध मनुष्यों के लिये विविध लक्ष्य गिनाकर काव्य के सभी संभव लक्ष्य इंगित कर दिये गये हैं। यह तो कविता को संसार-रूप गुड़ियों के खेल के अन्तर्गत एक दूसरा गुड़ियों का खेल बनाना हो गया। मेरी धारणा कविता के लक्ष्य के बारे में बहुत स्पष्ट है। कविता की जान वेदना है। वही वह वाहन है, जो अपने उपासकों

को विश्वात्मा के पास पहुँचा सकती है। उसी वेदना का, विधि पूर्वक नहीं, उद्धत आराधन कविता-योग या काव्य-योग है। इस योग के द्वारा कवि की मुक्ति संभव है। संसार के बड़े खेल के भीतर काव्य का छोटा खेल सारे खेल का अन्त करके परम सत्ता की व्यापकता में आत्मा को विमुग्ध कर सकता है।

मेरा इस बात में मत-भेद है कि कवि उपदेशक नहीं। माना कि कविका उद्देश्य उपदेशक होना नहीं—अपनी कृति में उपदेश ठूंसना नहीं, किन्तु जिस कवि ने सैकड़ों जीवन-नौकाओं को अनायास-ही किसी किनारे न लगा दिया, उसमें उस विराट् कवि का इतना अंश नहीं कि वह कवि कहला सके। यह उसका गौण कार्य अवश्य है, किन्तु उसका निज का गौण कार्य ही संसार में उसका प्रधान कार्य है। जिनमें मानव-हृदय को उत्तरोत्तर ऊपर उठाने की शक्ति है, जो परम उपदेशक हैं, वे क्या कवि नहीं है ? उनका विशाल हृदय विश्व-हृदय के स्पन्दन के तालपर स्पंदित होता है, नाचता है। यही कारण है कि जहां कहीं तुलना संभव है वहां तुलसी मानव-हृदय के उत्थान-पतनों को, भावों के घात-प्रतिघातों को, दिखाने में अनायास ही शेक्सपियर से अधिक सफल हुए हैं। महाकवि वर्डसवर्थ Wordsworth की यह घोषणा थी कि मैं संसार को कुछ शिक्षा देने के लिए उत्पन्न हुआ हूं। उन्होंने एकबार समालोचकों से तंग आकर लिखा था कि मैं काव्य बोलचाल की भाषा में ही लिखूँगा। मेरा विश्वास है कि काव्य और बोलचाल की भाषा एक ही हो सकती है—कम से कम मैं उन्हें एक कर दूंगा और वह भी कवित्व का ह्रास न करते हुए। कैसे ? सो मैं नहीं जानता—इस प्रश्न का उत्तर समालोचकगण ढूंढ़ लें। यही उनका काम भी है। जीवन के उपवन से होकर हवा बहती है। हवाका बहना ही उद्देश्य हो, पर क्या यह भी सम्भव है कि उससे जीवनदान और सुरभि-वितरण कार्य छूट जाय ? वह तो अनायास ही होगा। प्रकृत कवि भी अनिल देव ही के समान है। यदि किसी के मुंह से फूल झरते हैं, और उनमें सुरभि भी है तो क्या वे फूल फूल ही न रह जावेंगे ?

प्रकृत कवि से प्रकृत उपदेश कभी पृथक हो ही नहीं सकता—उसकी हृत्तंत्री से जो जीवन के रहस्य झंकृत होते हैं, वे मनुष्यों को जीना बता ही जायँगे—यह तो अवश्यंभावी बात है। यदि ऐसा न होता तो 'सोने में सुगन्ध' वाली कहावत बिना चरितार्थ हुए ही रह जाती।

एक बात और उपेक्षणीय है। लोग कहते हैं कि आज कल की कविता 'हाय भारत' मात्र है। यह बात आज कल के राष्ट्रीय तुकबन्दों की उचित भर्त्सना तो अवश्य करती है, पर कहीं वही राष्ट्रीय कवियों को अपने ध्येय से च्युत न कर दे। कहा जाता है कि कवि सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का बन्दी नहीं है, वह तो उन्हीं बातों से सम्बन्ध रखेगा जो स्थायी है। कहनेवालों की समझ में यह बड़ी ऊंची बात है, परन्तु इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है। कवि समस्त विश्व की वेदना का—उसके हर्ष--का अनुभव करता है। बहुत ठीक। पर इसका यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि वह अपने पीड़ित पड़ोसी के दुःख को केवल एक व्यक्ति का तुच्छ दुःख कह के उसकी परवाह ही नहीं कर सकता। सच बात तो यह है कि कवि एक एक व्यक्ति में विश्व देखता है। जब उसके आस पास पददलित पड़ा हुआ भारत ऐसा विशाल देश कराह रहा है, तब कोई कारण नहीं कि उसके साथ वह रो न पड़े। जो मनुष्य भारत के दुःख से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक दुखी नहीं है, वह कदापि कवि नहीं है—वह कवित्व का पाखंडी है, कीर्तिलोलुप है, तुकबन्द है। आश्चर्य है कि इतना भारी देश दुखियों के आर्तनाद से गूँज रहा हो और उसका हृदय भी न हिले जो कवि होने का दावा करता हो, उसके कान पर जूँ तक न रेंगे जो विश्व का आर्तनाद सुन सकने का दावा करता हो! भारत की वेदना भी किसकी वेदना है? उस देश की वेदना है जिसके उद्धार पर संसार का भौतिक वाद—शारीरिक सुख के ध्येय—के दलदल से उद्धार निर्भर है—जिसके मंगल पर संसार भर का मंगल निर्भर है—जिसकी प्राचीन आत्मा संसार की आत्मा की शुद्धता-स्वरूप है, उस भारत

के आर्तनाद पर जिसका हृदय नहीं पिघलता वह कवि है तो पत्थर कौन है ?

यदि भारत की वेदना के चक्कर में पड़कर केवल अस्थायी साहित्य का ही निर्माण हो सकता है—तो गांधीजी की कीर्ति भी अस्थायी ही है—क्योंकि वे केवल भारत के सामयिक रोग पर ध्यान देते हैं। इतना ही नहीं, सारे अवतार तथा उनकी कथाएं अस्थायी हैं, क्योंकि केवल सामयिक अधर्म का नाश करने के लिये वे अवतरित होते हैं और केवल सामयिक विशेष प्रकार के आदर्शों की सृष्टि करते हैं। आश्चर्य है कि जो तीस करोड़ हृदयों की वेदना से तड़प कर कविता लिखेगा, उसकी कृति अस्थायी होगी और दुनियां भरके मनमौजी तुक्कड़ों की कीर्ति स्थायी होगी ! सच तो यह है कि जिस प्रकार राम-गुण-गान से रसनाएं धन्य होती हैं, उसी प्रकार उस कवि का कीर्तिगान करके आगे के कवि धन्य होंगे, जिसकी ओजमयी करुण-वाणी का माता के उद्धार में विशेष भाग होगा। जब तक संसार में एक भी हृदय रहेगा तब तक उसकी वाणी उसे हिलाने के लिये रहेगी। कोई भी वीर एक विशेष लक्ष्य के लिए, एक विशेष बात पर, एक विशेष काल के एक विशेष युद्ध में जान देता है। तो क्या उसकी कीर्ति इसलिए अस्थायी हो गयी कि उसने सारे संसार के हित के लिए जान नहीं दी ? क्या आप नेलसन की कीर्ति को यह कह कर उड़ा सकते हैं कि उसने केवल किसी सामयिक बात पर केवल इङ्गलैण्ड के लोगों के लिए जान दी थी। यह भ्रममात्र है कि विषय स्थायी या अस्थायी होता है, या उसके स्थायी या अस्थायी होने से उस पर की हुई रचना स्थायी या अस्थायी होती है। कहने का ढंग होना चाहिये—लेखनी में अमरता चाहिये, कैसे भी विषयपर की हुई रचना अमर हो सकती है। अपने हृदय की एक विशेष तरंग का सच्चा चित्र खींच कर तो कवि अमर हो जाता है, फिर देश के हृदय की क्षुद्रातिक्षुद्र लहर का भी जीता-जागता चित्र जो कवि पत्र पर अंकित कर सकेगा, अमरता उसकी तो अनुगामिनी ही हो जावेगी। क्या जो कहानियां गढ़ी

जाती हैं उनमें विशेषकर एक कल्पित समाज के विप्लवावस्था की सृष्टि नहीं की जाती ? फिर जब भगवान् ने इतने भारी समाज में इतने भारी विप्लव की सृष्टि कर रक्खी है कि देश भर में प्रतिदिन सहस्रों कहानियां घटित होती रहती हैं, तो हमें काल्पनिक कहानियों की क्या आवश्यकता ? कौन कहता है कि यह कवियों का ज़माना नहीं है। कम से कम भारतवर्ष में कवि पैदा होने के लिए इससे उपयुक्त और कोई ज़माना ही न था। कवि वही है जिसकी प्रतिभा कृष्ण-लीला करती है—परिस्थितियों के अनुसार जिसका वेश स्वयं ही बदला करता है, जिस प्रतिभा ने बहुरूपियापन धारण किया है। कीर्ति के लिये या टके के लिये जो निठल्लों का निरर्थक मनोरंजन किया करती है वह कवि-प्रतिभा नहीं है। व्यथित हृदय अपनी व्यथा की गंभीरता में जो कुछ कह पड़ता है वही तो स्थायी होता है। जब तक दुनियां में हृदय रहते हैं तब तक वह कथन भी रहता है। हृदय कहीं अपनी ऐसी अवस्था की बातें भुला सकता है ? लकीर धारण रखने में ही तो हृदय की पाहनता दर्शनीय है। क्षणिक घटनाओं पर भी अमर-अनन्त कविता लिखी जा सकती है। उसका और अनन्त का संबंध इंगित कर जाना ही तो प्रकृत कवि के योग्य कार्य है। विचार करके देखना चाहिये कि आधुनिक भारत से संबंध रखनेवाली कृतियां क्या स्थायी नहीं हो सकतीं। सान्त में ही अनन्त गर्भित है। शुद्ध अमर कहाँ धरा है कि कोई हाथ पकड़ के घसीट लावे।

[शेष आगे]

कविता-रस

[लेखक—श्रीयुत गुरुप्रसाद टण्डन विशारद]

वाद-विवाद में स्वाद कहा, तिमि
राजस रंग औ तामस में।
तेउ न जानैं कहा रस है
जिनके मन हैं अपने बस में॥
मंजुल-मंजरि-माधुरि में,
मदमाते-मुदे-दृग-आरस में,
नाहिं मिलैगो सुधाहु में सो रस
जो रस है कविता-रस में॥

स्वार्थ-सिद्धि

निज स्वारथ लागि जो पांय परैं,
करि सौंह बनैं अपने छन में।
पहिचानतहू नहिं काज सरे
परवीन सदा सिधि-साधन में॥
हिय माँझ कराल हलाहल है
झलकै मृदु मंजुलता तन में।
तिनको पतियारो कहा, जिनके
मुख में कछु और कछू मन में॥

नम्र निवेदन

इधर पांच-छह मास से मेरे कुछ सहृदय मित्र अपनी अमूल्य आलोचनाओं द्वारा मेरी तुच्छ रचनाओं को परिष्कृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिये मैं उन्हें जितना धन्यवाद दूँ, उतना थोड़ा है। जो प्रेमांधता को छोड़ कर दोष-प्रदर्शन-रूपी साबुन से मैल साफ़ करने का उद्योग करते हैं, वही सच्चे हितैषी मित्र हैं। सौभाग्य से मुझे कुछ ऐसे हितेच्छु सुहृद अनायास ही मिल गये हैं। वास्तव में, मुझे

इनकी अलोचनाओं द्वारा अपनी अनेक भ्रांतियाँ मालूम हुई हैं। मेरे कुछ प्रेमान्ध मित्रों को इनकी आलोचनाएँ बुरी जान पड़ीं, और उन्होंने मुझसे कई बार साग्रह कहा कि इन आलोचनाओं का उत्तर अवश्य देना चाहिये। किन्तु मैंने ऐसा करना उचित न समझा, क्योंकि मैं जानता था कि कड़वी दवा से ही रोग दूर होता है। लाख समझाने-बुझाने पर भी वे कब मानने के थे! उनका आग्रह बढ़ता ही गया, जिसका फलस्वरूप यह छोटा सा नम्रनिवेदन है। मेरी तुच्छ कृतियों के आलोचक मित्र इसे 'प्रत्यालोचना' न समझें। इस निवेदन में केवल दो-चार तथ्य बातों का ही अत्यंत नम्रता के साथ दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया जायगा। विश्वास है, मेरे अगाध दयाशील मित्र मुझे सब प्रकार से क्षमा करेंगे।

१—सब से पहले मैं अपने उन दो लेखों का हार्दिक ग्लानि के साथ स्मरण करता हूं, जो मैंने "सम्मेलन-पत्रिका" में छापे थे। उनके शीर्षक 'टके सेर कविता' और 'मिश्रबंधु-यूनिवर्सिटी' थे। उस समय अज्ञानवश मुझे ऐसे व्यंग्यपूर्ण लेख लिखने पड़े। तथ्य बातों के होते हुए भी उनकी शैली, वास्तव में, लज्जाजनक थी। उसमें अशिष्टता, दुःशीलता और तामसी प्रवृत्ति का समावेश था। पीछे मुझे उन लेखों की शैली पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्हीं दिनों उसी अशिष्ट शैली पर मैंने एक प्रहसन लिखा था, जिसे मैंने, कुछ मित्रों के रोकने पर भी, नष्ट कर दिया। मुझे उस लेखन-शैली के साथ, वास्तव में, बड़ी घृणा हुई। इस ढंग के जिन लेखों व पुस्तकों को पहले मैं बड़े चाव से पढ़ता था, आज उन्हें मैं घृणित और निन्दास्पद समझता हूं। कृपामूर्ति परमात्मा को अनेक धन्यवाद हैं कि जिसने मेरे अज्ञान-तिमिराच्छन्न हृदय में ऐसे पुण्यस्वरूप पश्चात्ताप का मंगलोदय किया। उन लेखों में जिन सज्जनों के सम्बन्ध में मेरी लेखनी से आक्षेपपूर्ण कटु शब्द निकले हों, विश्वास है, वे मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

२—आश्विन, तुलसी संवत् ३००, की "माधुरी" में "कवि-कीर्तन" की समालोचना निकली है। समालोचक महोदय हैं श्री-

मान् भरतानन्द भारती। समालोचना का एक अंश यह है "कुछ तुकबन्दों और अनुवादकों तक का कीर्तन किया गया है; किन्तु कुछ सुकवियों का स्मरण तक नहीं किया गया ! जब कि पं० अक्षयवट मिश्र अपने लिये।

'रचे अनेकन ग्रन्थ सुद्ध ब्रजभाषा माहीं।
नीरसता, सैथिल्य, अरोचकता कहुँ नाहीं॥

पढ़ कर लेखक की सहृदयता पर मुग्ध होंगे, तब अपने ग्रन्थ 'नवरत्न' के लिये—

'कहुँ-कहुँ कछु भ्रम-भर्यो'

का सार्टिफिकेट पाकर मिश्रबन्धु क्या सोचते होंगे, यह जान लेना कठिन है।"

मैं 'कवि-कीर्तन' में आये हुए सुकवियों को 'तुकबन्दों' की उपाधि तो नहीं दे सकता, पर यह अवश्य स्वीकार करता हूं कि बहुत सम्भव है कि कुछ क्या कई सुकवियों का स्मरण नहीं रहा, पर ऐसा जान कर नहीं किया गया। कोई सर्वज्ञ तो होता नहीं और न किसी की रचना ही पूर्ण होती है। जो सुकवि छूट गये हों, कृपया श्रीमान् आलोचक महोदय उनके नाम लिख कर मेरे पास भेज दें। दूसरे संस्करण में उन्हें समादरणीय स्थान देने में मुझे सचमुच ही बड़ी प्रसन्नता होगी।

रही माननीय मिश्रबन्धु-रचित 'नवरत्न' की बात, सो उसपर मेरा यह निवेदन है। श्रीयुत पंडित अक्षयवट मिश्र के ग्रन्थों की 'नवरत्न' के साथ तुलना कैसे हो सकती है ? काव्यग्रन्थ और समालोचना-ग्रन्थ में अन्तर रहता ही है। 'नवरत्न' एक समालोचनात्मक ग्रन्थ है। और उसमें गुण दोष-प्रदर्शन की कुछ न कुछ गुंजायश भी है। उसपर पर्याप्त समालोचनाएँ भी निकल चुकी हैं। कुछ बातों को कदाचित् 'नवरत्न' के सुबुध रचयिताओं ने स्वीकार भी कर लिया होगा। फिर भी 'नवरत्न' पर 'कवि-कीर्तन' में जो लिखा गया है, वह किसी व्यक्तिगत द्वेष के कारण नहीं किया गया। पूरा पद्यार्द्ध यह है—

"लिख्यो ग्रन्थ 'नवरत्न' काव्य-आलोचन जामें।
कहुँ-कहुँ कछु भ्रम-भरयो, तऊ आरोचन तामें॥"

काव्यालोचन नवरत्न में कहीं कहीं पर कुछ भ्रान्ति दीख पड़ती है, फिर भी उसमें रोचकता ही है। इसमें क्या निन्दा हो गयी! जिन मान्य मिश्रबन्धुओं के लिये—

'कविता-कला-प्रवीन, मातृभाषा-हितकारी'

लिखा गया है, उनके प्रति लेखक की द्वेष-भावना कैसे प्रकट हो सकती है? केवल मिश्रबन्धुओं के 'नवरत्न' पर ही 'कवि-कीर्तन' में 'कहुँ-कहुँ कछु भ्रम-भरयो' जैसी वाक्यावली नहीं लिखी गई है, वरन् और भी कई सुकवियों के विषय में कतिपय आलोचनापूर्ण शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। दो एक उदाहरण उपस्थित हैं—

(पजनेश) 'पगि संयोग-सिंगार भाव असलील बखाने (पृष्ठ ५७)
(हरि औध) 'जद्यपि तउ-श्री प्रसाद, तदपि नव रूप निकारयो।' (पृष्ठ ७७)

इतने पर भी श्रीमान् भरतानंद भारती महोदय की दृष्टि में मिश्र बन्धुओं को कोई 'सार्टिफिकेट' दिया गया हो, तो रामजाने!

३—जून, सन् १६२३, की "सरस्वती" में श्रीमान् जयदेव विद्यालङ्कार-लिखित 'सीता-परित्याग पर कालिदास' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसपर मैंने आश्विन, तुलसी-संवत् ३००, की "माधुरी" में 'विद्यालङ्कारजी के कुछ अनौचित्य' नामक एक छोटा सा नोट छपाया था। उस नोट पर मान्य मिश्रबंधुओं ने, मार्गशीर्ष, तुलसी-संवत् ३००, की "माधुरी" में, "विचार-स्वातंत्र्य तथा लेखकों और संपादकों का उत्तर-दायित्व" नाम का एक लेख लिखा था। तीनों लेखों का सारांश यह है—

विद्यालंकारजी ने अपने लेख में ऐसे प्रयोग किये हैं—

"उसके पति रामचंद्र को और भी अधिक आनन्द था" (सरस्वती, पृष्ठ ६२८)
"सीता ने उसको नहीं कोसा" (सरस्वती, पृष्ठ ६३१)
"जैसे राम जानता था" (सरस्वती, पृष्ठ ६३३)

इन प्रयोगों पर मेरी यह शिकायत थी—

"लेखक महाशय ने भगवान् रामचन्द्रजी और जगज्जननी सीता जी का बहुत ही अनादरपूर्ण शैली के साथ उल्लेख किया है। उनके नाम के पहले या पीछे 'श्री' या 'जी' जाने दीजिए, उनका उल्लेख एक वचनान्त क्रिया और सर्वनाम से किया है !

× × × × ×

"महान् आश्चर्य तथा शोक है उन संपादकों पर, जो आँख बन्द कर, बिना कुछ काट-छाँट किये, ज्यों के त्यों ऐसे-ऐसे लेख प्रकाशित कर दिया करते हैं !

× × × × ×

"अभी कुछ दिन हुए, एक सज्जन ने लोकमान्य तिलक को 'महाशय तिलक' लिखा था, और उसपर कुछ टीका-टिप्पणी भी हुई थी; किन्तु हमें यह देख कर अत्यंत आश्चर्य और शोक होता है कि ऐसे-ऐसे अनुचित प्रयोगों को देख-सुन कर लोग हाथ-पर-हाथ धरे चुप-चाप बैठे हैं !" (माधुरी, पृष्ठ ३४४)

श्रीमिश्रबन्धुओं की इस 'नोट' पर यह राय है—

"यदि कोई संपादक हमारे लेखों पर अपने व्यक्तित्व का इतना प्रभाव डालने का साहस करे, तो उसी क्षण से हमारा-उसका लेखक-संपादक का सम्बन्ध सदा के लिये छूट जाय। वह लेखक नहीं, वरन् रंक है, जो सम्पादकों से अपने व्यक्तित्व के मिटाने की भिक्षा माँगे। इससे बड़ा किसी लेखक का क्या अपमान हो सकता है कि कोई दूसरा उसके लेखों को इस तरह शुद्ध करके छापे। हमें दृढ़ आशा है कि वियोगी हरिजी भी अपने लेखों पर दूसरों का इतना बड़ा प्रभुत्व न सहन कर सकेंगे।

× × × × ×

"अँगरेजी लेखन-शैली में ऐतिहासिक पुरुषों के वर्णन में मिस्टर, महाशय, तथा जी आदि सम्मान-सूचक शब्द लिखने की रीति नहीं है। × × × कोई अँगरेज मिस्टर शेक्सपियर या मिल्टन स्क्वायर न लिखेगा। × × × संस्कृत में वाल्मीकि आदि महाकवि राम को सीधा-सादा 'राम' ही लिखते हैं।

× × × × ×

"रही तिलक महाशय की बात तो यह ग़लती हमीं लोगों से हुई थी। उन्हें प्रायः लोग लोकमान्य कहते हैं, किन्तु हम उन्हें महाशय कहना शुद्धता समझते हैं। × × × तिलक महाशय का लोकमान्य कहना या न कहना केवल सामाजिक प्रश्न नहीं, वरन् राजनीतिक प्रश्न भी है।" (माधुरी; पृष्ठ ६२३, ६२४)

मिश्रबन्धु महोदयों के 'नोट' पर मुझे कुछ नम्र निवेदन करना है। यदि मिश्रबन्धु महोदय अपने महत्वपूर्ण लेख में सम्पादक की परिभाषा लिख देते तो और भी अच्छा होता। आप लोगों के लेखानुसार संपादक का कुछ भी काम या मूल्य नहीं रह जाता। मैं तो कहूंगा कि वह संपादक महान् रंक, दरिद्र और भिक्षुक है जो सदा लेखकों की दया का पात्र बना रहता है, जो उनके लेखों का एक भी शब्द इधर से उधर टस से मस नहीं कर सकता और जो सिर्फ अपनी झोली में लेखों की भीख मांगना ही जानता है। मेरी तुच्छ सम्मति में लेखकों का व्यक्तित्व बहुमान्य अनुचित प्रयोगों के संशोधन मात्र से ही नहीं मिट जाता। हाँ, यदि उनके सिद्धान्तों पर संपादक हड़ताल पोतने की चेष्टा करे, तो निःसंदेह उन्हें उससे अपना सम्बन्धविच्छेद कर लेना चाहिये। मेरे सम्बन्ध में श्रीमान् मिश्रबन्धुओं ने जो दृढ़ आशा प्रकट की है, शोक है, उसे मैं स्वीकार करने में असमर्थ हूं। यदि कोई सम्पादक मेरे लेख की भद्दी भूलें दूर कर देता है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। इतना ही नहीं, मैं अपने लेख के साथ, सम्पादक की सेवा में, संशोधन के सम्बन्ध में लिख भी देता हूं।

भगवान् रामचन्द्र आदि अवतारों एवं महापुरुषों के साथ 'जी या श्री' लगाने अथवा उनका बहुवचन में प्रयोग करने के संबन्ध में आप ने जो अंगरेजी लेखन-शैली का प्रमाण दिया है, उसे मैं स्वीकार करने के लिए सर्वथा असमर्थ हूं। हिन्दी, हिन्दी है, अंगरेजी या संस्कृत नहीं। प्रत्येक भाषा की प्रयोग-शैली भिन्न होती है, और यही भिन्नता उस भाषा की जान है। अनुकरणरूपी दास-कल्प का प्रभाव हमें वांछनीय नहीं। संस्कृत में आदि कवि वाल्मीकि ने 'राम' शब्द के साथ बीसों सम्मानसूचक विशेषणों का प्रयोग किया है। बहु-

वचन के प्रयोग तो संस्कृत में सैकड़ों मिलेंगे। "पूज्यपाद भगवच्छंकराचार्य्याः" आदि प्रयोग तो नित्य ही दृष्टिगत होते हैं। इसी सम्बन्ध में सुहृद्वर कृष्णविहारी जी मिश्र ने भी, 'व्रजमाधुरी-सार' की आलोचना करते हुए "माधुरी" की संख्या १८ में, लिखा है कि—"पंजाब में बड़ों के लिए भी 'आया था' आदि प्रयोग होते हैं, और उर्दू और बंगला में भी ऐसे प्रयोग होते हैं। इस दलील पर भी मेरा वही निवेदन है कि हिन्दी, हिन्दी है, अंगरेज़ी, संस्कृत, उर्दू या बंगला नहीं। बस, हो चुका। जिसे ऐसे-ऐसे प्रयोग, दूसरी भाषाओं के आधार पर, करना इष्ट समझ पड़े, वह भले ही किया करे, पर मैं उन प्रयोगों को अनुचित ही कहूंगा। क्या करूँ, हृदय की कमज़ोरी पर लाचारी है। मेरा अभी इतना बलिष्ठ हृदय नहीं हुआ कि मैं अन्य भाषाओं की तरह 'राम आता है' 'सीता जाती है' 'बाप आया था' आदि लिखने-लिखाने का साहस करूं।

तिलक महाशय की बात के सम्बन्ध में यह पढ़ कर, कि 'लोकमान्य' कहना या न कहना केवल सामाजिक प्रश्न नहीं, वरन् राजनीतिक प्रश्न भी है'—मैं संतोष किये लेता हूं। यदि पहले ही यह पहेली मेरी तुच्छ बुद्धि से सुलझ जाती तो मैं इस विषय पर कुछ लिखने का साहस न करता।

४—पौष, तुलसी-संवत् ३००, की "माधुरी" में साहित्य-मर्मज्ञ सहृदयवर पंडित कृष्णविहारीजी मिश्र ने "व्रज-माधुरी-सार" की आलोचना की है। मिश्रजी के समान शिष्ट और यथेष्ट समालोचक हिंदी-संसार में विरले हैं। आप की समालोचन-शैली बड़ी ही गंभीर, मनोरम और अनुकरणीय है। मैं हृदय से आप की शैली पर मुग्ध हूं। 'व्रज-माधुरीसार' की आलोचना, संक्षेप में, इस प्रकार है—

"(अ) पुस्तक के नाम को देखते यह जान पड़ता है कि इसमें व्रजभाषा के सभी नामी-नामी कवियों की चुनी हुई रचनाएँ होंगी; पर बात ऐसी नहीं है (पृष्ठ ७०६)

(आ) नहीं जानते, व्रजवासीदास का बहिष्कार क्यों हुआ ? (पृष्ठ ७०६)

(इ) 'कविता की दृष्टि से बहुत ऊँचा ग्रन्थ' (व्रजमाधुरीसार, पृष्ठ १३२) न लिखने पर भी श्रीभट्टजी को स्थान मिला है, तथा 'कविता के बाहरी चमत्कार के न रहते (व्रजमाधुरीसार, पृष्ठ १०४) भी स्वामी हरिदासजी का सत्कार किया गया है। (पृष्ठ ७०६)

(ई) मीराबाई का भी नाम नहीं है। (पृष्ठ ७०६)

(उ) धार्मिक संप्रदाय-विशेष के कवियों की कविता का अलग संग्रह करना लेखक की संकुचित प्रवृत्ति की सूचना देता है। (पृष्ठ ७०७)

(ऊ) शिवसिंह सरोज, Modern Vernacular literature of Hindustan तथा मिश्रबन्धु-विनोद आदि ग्रन्थों के आधार पर ही यह संग्रह-ग्रंथ लिखा गया है (पृष्ठ ७०८)

(ए) खेद के साथ कहना पड़ता है कि 'व्रजमाधुरीसार' के सम्पादक ने अपने इस संग्रह में श्रीराधा-कृष्ण के भक्त अनेक कवियों को, कविता के उत्कर्ष की दृष्टि से नहीं, केवल वैष्णव होने के कारण ही स्थान दिया है। × × × श्री सत्यनारायण तथा अन्य कई कवियों को महाकवि कहना उनकी स्तुति भले ही हो, पर उसका औचित्य भी मानने के लिये कम से कम हम तो तैयार नहीं हैं (पृष्ठ ७०८)

(ऐ) एक बात हमें खटकती है। वह यही कि पूर्ववर्ती इतिहास-लेखकों पर व्यंगय-पूर्ण वचनावली का प्रयोग किया है। (पृष्ठ ७०८)

(ओ) कदाचित् वियोगी हरिजी को यह सह्य नहीं है कि कोई देवजी को विहारीलाल से बढ़ कर लिखे; क्योंकि आप हमारी 'देव और विहारी' नामक आलोचना के द्वारा हिन्दी-साहित्य की हत्या होने की बात कहते हैं। (पृष्ठ ७०६)

(औ) छंदोभंग आदि दोषों के अनेकों उदाहरण उन कवियों की कृतियों में भी मौजूद हैं, जिनको, वैष्णव कवि होने के कारण महा-

कवि की पदवी दे कर, ब्रजमाधुरी-सार में स्थान दिया गया है। (पृष्ठ ७१०)

(ओ) पद्यों पर संपादकजी ने जो टिप्पणियां लिखी हैं, उनसे उनके गहरे अध्ययन तथा गम्भीर विचार का पता नहीं चलता।" (पृष्ठ ७१०)

उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में मेरा संक्षिप्त निवेदन, क्रमशः, यह है—

(अ) "ब्रजमाधुरी-सार" में ब्रज-भाषा के सभी नामी-नामी कवियों को स्थान नहीं दिया गया है। इसका कारण एक तो वही है जो मैं लिख चुका हूँ कि जो भगवत्-रस-माधुरी के सच्चे मधुव्रत हैं, उन्हीं को स्थान दिया गया है, और दूसरा कारण यह हो सकता है कि असावधानी-वश कुछ सुकवि छूट गये हैं, जिन्हें अगले संस्करण में सादर स्थान दिया जायगा। "ब्रजमाधुरी" की परिभाषा, मेरी तुच्छ सम्मति में, वही है जो मैंने पुस्तक में लिखी है, अर्थात् 'भगवत्-रस-माधुरी' ही ब्रज-माधुरी है। जिस कविता में ब्रजसर्वस्व नंदनंदन एवं रासेश्वरी राधिकाजी का दिव्य उद्गारों द्वारा कीर्त्तिकलाप पाया जाता है, जिसके रचयिता ब्रज-रज के कण-कण में अपना अस्तित्व लीन कर गये हैं, वही 'ब्रज-माधुरी' है। उसी 'ब्रज-माधुरी' रूपी अथाह अपार सागर से इस छोटी सी पुस्तक में यत्किंचित् सार लिया गया है। निःसन्देह यह सार 'सर्वस्व' नहीं कहा जा सकता, अतएव पूर्ण भी नहीं हो सकता।

(आ) ब्रजवासीदास जी की कविता में 'अवधी' भाषा का बहुत कुछ मेल है। उनकी शैली भी राम-चरित-मानस की है। कविता के सुन्दर होने में सन्देह नहीं, पर 'ब्रज-माधुरीसार' में दिये गये महाकवियों के समकक्ष कदाचित् ब्रजवासीदासजी नहीं हो सकते। फिर भी, मैं उन्हें ब्रजमाधुरी-सार में स्थान दे सकता हूं।

(इ) महानुभाव श्रीभट्टजी ने कविता की दृष्टि से निःसन्देह कोई बहुत ऊँचा ग्रन्थ नहीं लिखा, पर जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह एक ब्रजमाधुरी-रसास्वादी महाकवि की कृति में आ सकता है। कविता की दृष्टि से मेरा तात्पर्य लौकिक कवियों की कविता के

परखने की साधारण दृष्टि से है। भट्टजी ने जो साक्षात्कृत दिव्य भगवदीय उद्गार हृदय से निकाले हैं, उन्हें मैं महाकाव्य ही समझूंगा, भले ही यह मेरी भ्रांति हो। इसी प्रकार रसिक-सम्राट् स्वामी हरिदासजी के पदों में चाहे कविता का बाहरी चमत्कार, ऊपरी चटक-मटक, न हो, पर उनकी कविता उन्हें महाकवि के आसन पर बिठाने को काफ़ी है। महाकवि की साधारण प्रचलित परिभाषा से मेरा अवश्य मत-भेद है।

(ई) मीराबाई की कवितामें मारवाड़ी शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु वे ब्रजमाधुरी की सच्ची भ्रमरी थीं, इसमें संदेह नहीं। उन्हें भी आदरणीय स्थान दिया जा सकता है।

(उ) ऐसा करने से लाचार हूं। मैं अपनी इस संकुचित प्रवृत्ति को सौभाग्य-सूचक समझता हूं। मेरी राय में, ब्रजमाधुरी के उपासक धार्मिक संप्रदाय विशेष से पृथक् नहीं हो सकते। संप्रदाय बुरा नहीं है। प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष, किसी रीति से सही, संप्रदाय के साथ सम्बन्ध होने से ही लोग कुछ प्राप्त कर सके हैं। ब्रजमाधुरी-सार में यदि मैंने वैष्णव संप्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाले ब्रजमाधुरी-रसिक कवियों की कविताओं का संग्रह करके अपनी संकुचित प्रवृत्ति की सूचना दी है, तो यह संकुचित भाव, मेरे आंतरिक कोश के अनुसार, उदार भाव का पर्य्यायवाची है।

(ऊ) यह ग्रन्थ केवल शिवसिंह-सरोज आदि ग्रन्थों के ही आधार पर नहीं लिखा गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बहुत सी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों तथा ब्रजमाधुरी-मर्मज्ञों से भी सहायता ली गई है। शिवसिंह-सरोज, मिश्रबन्धु विनोद आदि में जो भारी-भारी भूलें हैं, उनका यथासम्भव निराकरण अन्यान्य साधनों द्वारा किया गया है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे निराकरण निर्भ्रान्त हैं।

(ए) यह बात नहीं है। कविता का उत्कर्ष उन कवियों में अवश्य मिलता है। हाँ, उत्कर्ष के जांचने में निःसंदेह मतभेद हो सकता

है। जो कवि एक आलोचक की दृष्टि में महाकवि है, वही दूसरे की नज़र में साधारण कवि भी नहीं है। स्वर्गीय सत्यनारायण को अभी चाहे कोई महाकवि न मानें, पर कुछ काल बाद वे निःसन्देह महाकवियों की श्रेणी में स्थान पायँगे। यह अनुमान मुझे महाकवि भवभूति, वर्ड्सवर्थ और देव का स्मरण कर हुआ है।

(ऐ) बहुत सम्भव है कि मैंने कहीं-कहीं पर खण्डन-मण्डन के आवेश में आ कर पूर्ववर्ती इतिहास-लेखकों पर व्यंग्यपूर्ण वचनावली का प्रयोग किया हो। साथ ही, जहां तक मुझे स्मरण है, मैंने उन्हें सम्मान-सूचक शब्दों से समादृत किया है। मैंने कई स्थलों पर मिश्रबन्धुओं के लिए 'श्रद्धेय' 'सुबुध' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। यदि कहीं पर कोई खटकनेवाला कटु शब्द आ गया हो, तो उसपर पश्चात्ताप प्रकट करता हूं।

(ओ) मैं 'विहारीलाल' का वंशज तो हूं नहीं कि सदा उनका व्यर्थ पक्षपात करूँ! और देव से मेरी कोई ईर्षा भी नहीं है। देव को मैं हीन दृष्टि से देखता होता, तो मेरी लेखनी से उनके सम्बन्ध में यह शब्द न निकले होते—

'जयति महाकवि देव, इटावा-नगर-निवासी।
जाहि भारती सिद्ध राधिका-चरन-उपासी;
व्रज-साहित्य-सिंगार सुभट आचार्य उजागर।
प्रेममूर्त्ति अनुभवी, रसिक-सरबस, रस नागर॥
× × × ×
हम सब को अभिमान-रूप है देव दिव्य कवि;
साहित्यिक तम-तोम-विनासन मनु दूजो रवि।

पर सत्य, सत्य ही है। जिस अंश में महाकवि विहारी महाकवि देव से बढ़ कर हैं, उसे मैं क्या सभी मानते हैं। अस्तु। मिश्रजी के कथनानुसार, मैं उनकी पुस्तक 'देव और विहारी' द्वारा हिंदी साहित्य की हत्या होने की बात कहता हूं। मैंने मिश्रजी की पुस्तक पर साहित्य-हत्या की बात नहीं लिखी है। मेरी शब्दावली यह है—

"देव-विहारी आदि तुलनात्मक आलोचनाओं से वृथा पक्षपात के कारण साहित्य-हत्या हो रही है।"

इसका यह अर्थ नहीं है कि मिश्रजी की 'देव और विहारी' नामक पुस्तक से साहित्य-हत्या हो रही है। मेरा तात्पर्य तो यह है कि देव और विहारी पर जहाँ तहाँ जितनी आलोचनाएँ निकल रही हैं, उनसे वृथा पक्षपात बढ़ता जाता है, और यह पक्षपात दोनों ही पक्ष के सज्जनों पर मढ़ा जा सकता है। जैसे, गीता के "ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव" का व्यास-रचित ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र से तात्पर्य न होकर ब्रह्मसंबंधी यावत् सूत्रों व सिद्धांतों से अभिप्राय है, ठीक उसी प्रकार देव-विहारी आदि तुलनात्मक आलोचनाओं का अर्थ है। इन आलोचनाओं में, संभवतः, मिश्रजी की भी पुस्तक आ सकती है, पर केवल उसी पुस्तक पर लक्ष्य करके यह नहीं लिखा गया है। उस पुस्तक की गंभीरता और उपयोगिता का मैं भी क़ायल हूँ। खेद है कि मित्रवर मिश्रजी को व्यर्थ ही इस संबंध में माधुरी का एक कालम रँगना पड़ा!

(औ) ब्रजमाधुरीसार के जिन कवियों की कविता में छंदोभंग दोष मिलता है, वह अधिकतर संगीत-संगत छंदों में ही पाया जाता है। संगीत के छंदों और साधारण छंदों के पिंगल में प्रायः अंतर रहता है। प्राचीन ध्रुवपदों की रचना एक विचित्र पिंगल के अनुसार हुई है। जिन छंदों को हम शुद्ध पिंगल-संगत कहते हैं, वे लक्ष्मीताल, ब्रह्मताल, रुद्रताल आदि तालों और रागों में गाये नहीं जा सकते। इसी से सूरदास मदनमोहन, स्वामी हरिदास, तानसेन प्रभृति कवियों के छंदों में छंदोभंग दोष नज़र आता है। वास्तव में, वह दोष नहीं है।

(अं) टिप्पणी-संबंधिनी अयोग्यता मैं अत्यंत नम्रता के साथ स्वीकार करता हूँ। गहरा अध्ययन तो दूर रहा, मैं ब्रजमाधुरी-सागर के तट पर भी नहीं पहुँच सका। मैंने गंभीर विचार किया ही क्या है! टिप्पणी-संबंधिनी या आलोचना संबंधिनी अक्षम्य

अनधिकार-चेष्टा के लिये मैं दंडनीय हूं। वास्तव में, इन महा कवियों की कविताएँ ऐसी गूढ़ और मार्मिक हैं कि बड़े-बड़े विद्वान् तक अर्थ लगाते समय चक्कर में पड़ जाते हैं, फिर मेरी तो गिनती ही किस में है ?

यदि मिश्रजी कृपा कर ब्रजमाधुरीसार के कवियों की जीवनियों पर भी यत्किंचित् प्रकाश डाल देते, तो मुझे बड़ा संतोष होता। श्रेणि-विभाग के संबंध में मिश्रबंधुविनोद कारों से खेद है, मेरा ज्यों का त्यों मत-भेद है। सहृदयवर मिश्रजी से मैं फिर विनम्र भाव से कहता हूँ कि वे इस निवेदन को प्रत्यालोचना की दृष्टि से न देखें।

(५) लगभग दो मास हुए, श्रीवृन्दावन में मुझसे श्रीमान् हित रूप लालजी गोस्वामी ने श्री गोस्वामी हितहरिवंश जी महाराज के सम्बन्ध की ब्रजमाधुरी-सार में कुछ भूलें बतलायी थीं। इन भ्रांतियों के सम्बन्ध में मेरे परम स्नेही गोस्वामी जी ने एक नोट भी लिखा था। कदाचित् वह कहीं प्रकाशित भी हो। अस्तु। श्री गोस्वामी जी जो बातें कहेंगे, उन्हें मैं याथातथ्य समझ कर स्वीकार कर लूंगा और दूसरे संस्करण में भूलों का सुधार भी कर दूंगा। मैं सत्य के आगे दुराग्रह करना घोर पातक समझता हूँ।

(६) चैत्र, तुलसी-संवत् ३००, की 'माधुरी' में सम्मेलन से प्रकाशित 'रहिमन के दोहे' नामक पुस्तक पर एक आलोचना निकली है। आलोचक हैं मेरे परम मित्र साहित्य-सेवी पंडित भागीरथप्रसादजी दीक्षित। दीक्षित जी ने उक्त पुस्तक में कई पाठ और टिप्पणी संबन्धिनी भूलें दिखायी हैं, जो बहुत अंशों में सत्य भी हैं। इस पुस्तक की यह दुर्दशा कैसे हुई, इस पर मैं एक तथ्य बात का प्रकाशन कर देना असंगत नहीं समझता। बात यह है। मिश्रबन्धु-पुस्तकालय से, लगभग ४ वर्ष हुए, रहीम के दोहों का एक हस्तलिखित संग्रह सम्मेलन में आया था। मैंने उसकी प्रतिलिपि की थी और आदि में एक छोटा सा परिचय लिख दिया

था। दोहे बहुत ही अशुद्ध थे। विचार था कि किसी अन्य प्रति से पाठ ठीक कर लिया जाय, पर जल्दी के मारे ऐसा न हो सका। दो-तीन पृष्ठों पर टिप्पणी लगा कर मैं निजी कार्य से तीन महीने के लिए कलकत्ते चला गया। इस बीच में सम्मेलन ने एक सज्जन (नाम खोलने से कोई लाभ नहीं) से उस पुस्तक की समग्र टिप्पणी लगवा डाली। श्रीयुत पंडित रामनरेश त्रिपाठी-संपादित सूरदास की विनयपत्रिका भी उन्हीं महाशय के सिपुर्द कर दी गई। दोनों ही पुस्तकों की जो दशा हुई, वह विदित है। सब दोष टिप्पणीकार महोदय का ही नहीं है, बहुत कुछ अभ्युदय प्रेस की भी कृपा है। मूल पुस्तक की भद्दी भूलों का भी बहुत कुछ भाग है। अस्तु। जिस दिन मैं कलकत्ते से वापस आया, उसी दिन यह पुस्तक प्रेस से छप कर आई। पीछे देखने पर सिवा पश्चात्ताप के और क्या था? यह पुस्तक प्रथमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में भी रखी गई थी। कुछ दिनों बाद श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने इसे तथा सूरदास की विनयपत्रिका को नष्ट कर देने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनकी बात का समर्थन किया। निदान, ये दोनों पुस्तकें 'सुलभ-साहित्य-माला' से बहिष्कृत कर दी गईं। राम जाने, यह बात दीक्षितजी को मालूम है या नहीं। अस्तु, जो भूलें दीक्षितजी ने इसमें दिखाई हैं, उन्हें मैं स्वीकार करता हूं। क्योंकि संपादक के स्थान पर मेरा ही नाम छपा है, यद्यपि उसमें काम मेरा बहुत कम है। जैसा मैं लिख चुका हूं, बहुत सी भूलें तो प्रेस-सम्बन्धी भी हैं, जैसे 'वृज' 'संतति' आदि। इसी प्रकार "ज्यों रहीम जल पाक में" इत्यादि दोहे की दुर्दशा नहीं की गयी, वरन् जैसा मूल संग्रह में उसका पाठ मिला, वैसा ही वह उद्धृत कर लिया गया, संशोधित करने की चेष्टा बेशक नहीं की गई।

इस पुस्तक की आलोचना करते हुए श्रीमान् दीक्षितजी ने मुझे कुछ हित-शिक्षा भी दी है। आपने लिखा है कि वियोगी हरिजी ब्रजभाषा का संपादन स्वयं न करके किन्हीं योग्य विद्वानों द्वारा कराया करें, तथा उत्तमा परीक्षा के परीक्षक एवं मंगलाप्रसाद-पारि-

तोषिक के निर्णायक बनना अंगीकार न करें। आपकी राय में मेरी अनधिकार चेष्टा मुझे बढ़ाने की अपेक्षा गिरा ही देगी। ब्रजभाषा का जानकार तो मैं स्वप्न में भी नहीं हो सकता, पर उसका रसिक अवश्य हूँ। मुझे ब्रजभाषा साहित्य स्वभावतः प्यारा लगता है। टीका-टिप्पणी ग्रन्थों पर लगाना मैं भले ही बंद कर दूं, पर ब्रज-साहित्य की उपासना से कैसे मुख मोड़ सकता हूं ! अन्तःकरण की कमज़ोरी पर लाचारी है। मैंने कभी मन में इस बात का विचार तक नहीं किया कि मैं अपनी इन न-गण्य क्षुद्र सेवाओं द्वारा ऊँचा उठ जाऊँगा। सच पूछिए तो बढ़ने लायक मैंने अभी तक काम ही क्या किया है ? मेरे प्रेमांध मित्र जो सेवा मुझे ज़बर्दस्ती सौंप देते हैं, उसे अवश्य अंगीकार करके जैसे-तैसे कर दिया करता हूं। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे कारण सम्मेलन के अनेक सत् कार्यों को भारी क्षति पहुँची है; जिसका मुझे दुःख है, पर क्या करूँ, मित्रों के आग्रह से कुछ न कुछ काम अंगीकार करना ही पड़ता है। फिर भी मैं अपने परम हितैषी दीक्षितजी के सदुपदेश का यथासंभव अवश्य पालन करूंगा।

७—प्रयाग की "मनोरमा" की पहली संख्या में स्नेह-भाजन पंडित ज्योतिप्रसादजी मिश्र 'निर्मल' ने साहित्य-सेवा-सदन, काशी से प्रकाशित 'विनय-पत्रिका' की समालोचना की है। इस पुस्तक के प्रकाशक महोदय ने इसका 'टीका-भार' मुझ अयोग्य निरक्षर भट्टाचार्य पर रख दिया था। इस पुस्तक का परिचय साहित्य-मर्मज्ञ सुहृद्वर पंडित रामचंद्रजी शुक्ल ने लिखा है। परिचय में शुक्लजी ने टीकागत कुछ भ्रांतियां दिखाई हैं, जिनमें से कुछ को मैंने पुस्तक के परिशिष्ट में नम्रतापूर्वक स्वीकार भी कर लिया है। उन्हीं भूलों को—और प्रायः शुक्लजी के ही शब्दों में—निर्मलजी ने प्रदर्शित किया है। यदि निर्मलजी परिशिष्ट भाग देख लेते, तो कदाचित् उन्हें भ्रान्ति-प्रदर्शन का कष्ट न उठाना पड़ता। भूमिका में मैंने जो दैन्य-प्रलाप लिखा है, उसे पढ़ कर भी आलोचक महोदय को आलोचना करते समय कुछ सहायता मिल सकती थी।

उपर्युक्त "नम्र निवेदन" को पढ़ कर यदि मेरी तुच्छ कृतियों के आलोचक मित्र मुझ पर रुष्ट न हुए, तो मैं इन पंक्तियों के लिखने की धृष्टता सफल समझूंगा।

विनयावनत

वियोगी हरि

पुस्तक प्रकाशन-समिति

पुस्तक-प्रकाशन समिति का एक साधारण अधिवेशन मिति ज्येष्ठ कृष्ण ६ रविवार तदनुसार तारीख २५ मई, १९२४ ई० को ५। बजे सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सज्जनों की उपस्थिति में हुआ—

१ श्री वियोगी हरि
२ " पं० रामजी लाल शर्मा
३ " पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी
४ " चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा
५ " पं० लक्ष्मीनारायण नागर

१—श्रीमान् वियोगी हरि जी ने सर्वसम्मति से सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—पिछले अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया।

३—पुस्तक-प्रकाशन-समिति के प्रस्तावित उपनियम विचारार्थ उपस्थित किये गये और वे निम्नलिखित रूप से स्वीकृत हुए—

(१) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्य (ठ) को कार्य रूप में परिणत करने के लिए प्रतिवार्षिक अधिवेशन के पश्चात्, स्थायी समिति अपने ८ सदस्यों की एक पुस्तक-प्रकाशन-समिति बनावेगी और उन्हीं ८ सदस्यों में से एक को संयोजक नियत करेगी।

(२) समिति का कोरम ३ सदस्यों का होगा।

(३) उत्तमा परीक्षा के निबन्धों को छोड़ कर सम्मेलन के द्वारा प्रकाशित होनेवाली शेष समस्त पुस्तकें समिति की आज्ञा के बिना प्रकाशित न की जायंगीं।

(४) सम्मेलन की ओर से यही समिति ग्रंथकारों, टीकाकारों तथा संग्रह और सम्पादनकर्त्ताओं का पारिश्रमिक निश्चित करेगी।

(५) प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की छपाई की दर, काग़ज़, मूल्य, आकार, प्रेस और कितनी प्रतियां छपेंगी इन सब बातों का तथा इन बातों से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातों का निर्णय भी पुस्तक-प्रकाशन-समिति ही करेगी।

(६) आवश्यक नवीन ग्रन्थों का निर्माण, प्राचीन ग्रन्थों और सम्मेलन से प्रकाशित पुस्तकों का समयानुसार सम्पादन संशोधनादि करवाना इसी समिति के अधिकार में होगा।

(७) सुलभ-साहित्य-माला की सब पुस्तकें यथासम्भव एक ही आकार-प्रकार की छापी जायंगी। इस माला की बड़ी पुस्तकों में बड़ौदा-नरेश श्रीमान् सयाजी राव गायकवाड़ का चित्र लगा दिया जायगा।

४—सेनापति के 'कवित्त-रत्नाकर' के सम्पादन के संबंध में श्री वियोगी हरि जी का पत्र पढ़ा गया। उनके कथन से ज्ञात हुआ कि प्रतिलिपि का पाठ अशुद्ध है और उसके कई कवित्त अधूरे भी हैं। इसलिए जब तक कोई शुद्ध प्रति न मिल जाय और उससे पाठ ठीक न कर लिया जाय तब तक इसका प्रकाशन-कार्य स्थगित किया जाय।

५—'श्री दंडी' नामक निबन्ध के छपाने का विचार प्रस्तुत हुआ। परन्तु कागज-पत्र, फाइल और रजिस्टर के देखने से कुछ पता नहीं चलता कि उक्त निबंध के विषय में क्या कररवाई अब तक हुई। कार्यालय में निबंध की हस्तलिखित प्रति का भी पता नहीं चलता। इसलिए निश्चय हुआ कि पुस्तक-प्रकाशन-समिति के के तत्कालीन संयोजक बा० गोपालस्वरूपजी भार्गव से पूछा जाय

कि उन्होंने इस निबन्ध के प्रकाशन के संबंध में क्या कार्रवाई की और वह पुस्तक कहां है।

६—श्रीक्षेमानन्द राहत की पुस्तक 'पुरुषार्थ-त्रय' अथवा 'तामिल वेद' के विषय में निश्चय हुआ कि कई कारणों से पुस्तक-प्रकाशन-समिति इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए तैयार नहीं है और यह पुस्तक रजिस्ट्री द्वारा श्री राहतजी के पास वापस भेज दी जाय।

७—श्रीशेषमणि त्रिपाठी के, 'अकबर की राज्य व्यवस्था वाले' पत्र के विषय में निश्चय हुआ कि यह पत्र परीक्षासमिति के पास भेज दिया जाय।

८—श्रीरूपलाल वैश्य की पुस्तक—'रूप निघण्टु कोष' के संबंध में निश्चय हुआ कि यह विषय आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

९—श्री पं० रामनरेश त्रिपाठी के पत्र के विषय में निश्चय हुआ हुआ कि यह पत्र त्रिपाठीजी की उपस्थिति में प्रस्तुत किया जाय।

१०—'प्रथमालङ्कार निरूपण' और 'द्वितीय सम्मेलन की लेख माला' के विषय में निश्चय हुआ कि अगले अधिवेशन में पुस्तक छपाने के व्यय का अनुमान-पत्र प्रस्तुत किया जाय। प्रथमालङ्कार निरूपण के विषय में निश्चय हुआ कि उक्त पुस्तक श्री पं० चन्द्रशेखर शास्त्री के पास संशोधनार्थ भेज दी जाय।

११—श्रीमान् सभापतिजी को धन्यवाद देने के बाद अधिवेशन का कार्य समाप्त हुआ।

सभापति   संयोजक

वियोगी हरि   चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

हिन्दी-साहित्य-सभा, बांदा

(श्री पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी)

पहली मई को मैं बांदा की हिन्दी-साहित्य-सभा के वार्षिकोत्सव पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से गया था। मेरे साथ दारागंज-राष्ट्रीय गान्धी-विद्यालय के प्रधानाध्यापक पं० शिवरामजी अग्निहोत्री भी पधारे थे।

हम लोग ठीक अवसर पर सभास्थल पर पहुँच गये। बांदा-आर्यसमाज का जलसा तीन दिन पहले से हो रहा था। उसी के पंडाल में इस समय हिन्दी-साहित्य की सभा लग रही थी। बांदा के उत्साही सज्जनों ने हम लोगों को, आगत-स्वागत करके, सभा में बैठाया।

उन लोगों ने मुझको ही उस दिन की सभा के अध्यक्ष-पद का सम्मान प्रदान किया।

हिन्दी-साहित्य की सभाओं में प्रायः यों भी बहुत कम जनता भाग लिया करती है, फिर बांदा के समान छोटे नगर के लिए कहना ही क्या है! तिसपर तीन दिन से आर्यसमाज के उत्सव में भाग लेने के कारण जनता भी व्याख्यानों से उकता सी गई थी। तथापि इस सभा में लगभग पांच सौ के जनता उपस्थित होगई थी। मेरा थोड़ा प्रारम्भिक भाषण होने के बाद कवि-सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसमें कई वृद्ध और नवयुवक कवियों ने भाग लिया। मुंशी शारदा प्रसाद जी 'रसेन्द्र' हिन्दी के एक प्राचीन कवि हैं। आप पहले मैहर रियासत में रहा करते थे। आप भी कवि सम्मेलन में पधारे थे। आपकी तथा अन्य नवयुवक कवियों की कविता सुनकर बड़ा आनन्द हुआ।

फिर हमारे अग्निहोत्रीजी, बांदा के 'केसरी' पत्र के सम्पादकजी इत्यादि कुछ सज्जनों का हिन्दी भाषा के प्रचार पर व्याख्यान हुआ। अन्त में मैंने अपने व्याख्यान में प्राचीन

हिन्दीसाहित्य के उद्धार और उसके प्रचार पर जनता का ध्यान आकर्षित किया; और साहित्य-सम्मेलन के कार्यों का विवरण सुनाया। लोगों पर प्रभाव अच्छा पड़ा।

बांदा के प्रधान नेता और हिन्दी के बहुत पुराने प्रचारक कुँअर हरप्रसाद सिंहजी भी सभा में उपस्थित थे। सभा के समाप्त होने पर आप बड़े आदर के साथ हम लोगों को अपने स्थान पर ले गये। वहां रात को आपके साथ हिन्दी-साहित्य और नागरी-प्रचार पर चर्चा होती रही।

दूसरे दिन हम लोग बांदा के कुछ उत्साही सज्जनों से मिले। हिन्दी-साहित्य-सभा का नागरी-पुस्तकालय देखा। पुस्तकालय में पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। परन्तु वाचनालय का कोई प्रबन्ध नहीं है। पुस्तकालय का मकान भी विशेष उपयुक्त नहीं है। मुंशी मथुराप्रसादजी और श्रीयुत बट्टूलालजी सभा के कार्य में बहुत उत्साह से भाग लेते हैं। जनता में उत्साह की कमी रहनेपर भी आप लोग बड़ी लगन से हिन्दी-प्रचार का कार्य करते रहते हैं। आप ही लोगों के प्रभाव से सम्मेलन-परीक्षाओं तथा प्रयाग के महिला-विद्यापीठ की परीक्षाओं का बांदा में बहुत कुछ प्रचार हो रहा है। मुंशी मथुराप्रसादजी पहले कुंअर हर प्रसादसिंहजी वकील के मुंशी थे। उस समय आपने अदालतों में नागरी-प्रचार का बड़ा कार्य किया था, और लखनऊ के साहित्य-सम्मेलन में आप को इस कार्य के लिए प्रशंसापत्र भी मिला था।

नागरी-पुस्तकालय कुछ उत्साही सज्जनों के चन्दे से चलता है। बारह रुपये मासिक म्युनिसिपलटी से भी सहायता मिलने लगी है। बांदा के साहित्यप्रेमियों का कर्त्तव्य है कि पुस्तकालय से पूरा पूरा लाभ उठावें, और उसके साथ एक वाचनालय का भी अच्छा प्रबन्ध करें।

पंजाब-प्रांतीय सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

१—यह सम्मेलन अपनी स्थायी समिति को आदेश देता है कि वह पंजाब में हिन्दी-प्रचार करने के लिये, दक्षिण भारत की तरह, भिन्न भिन्न ज़िलों में अपना पूरा समय इसी काम में देनेवाले प्रचारकों को नियुक्त करे।

२—(क) प्रारम्भिक पाठशालाओं की पहली कक्षा से हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाय।

(ख) हिन्दी पढ़ाने के लिए हिन्दी के विशेष अध्यापक रक्खे जांय और उन्हें उपयुक्त वृत्ति दी जाय।

(ग) विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित आदि अन्य विषयों की पढ़ाई का कार्य हिन्दी द्वारा होने की सुविधा की जाय।

(घ) नार्मल स्कूलों और ट्रेनिंग कालिजों के छात्रों का हिन्दी भाषा और नागरी लिपि जानना अनिवार्य कर दिया जाय, और जो छात्र चाहें उन्हें हिन्दी की शिक्षा देने की ट्रेनिंग भी दी जाय।

(ङ) प्रत्येक शिक्षणालय में हिन्दी-पुस्तकों का अच्छा संग्रह रक्खा जाय।

(च) विद्यार्थियों की हिन्दी-सभाएँ संगठित की जायँ, जिनसे वे हिन्दी में भाषण, लेख और विवाद आदि का अभ्यास करें।

(छ) शिक्षणालयों, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा अन्य शिक्षित लोगों में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार किया जाय।

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि पंजाब के शिक्षणालयों में हिन्दी की शिक्षा का विद्यमान प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है और इसे सुधारने के लिए उपरिलिखित उपायों को शिक्षणालयों के संचालकों के ध्यान में लाता है।

३—पंजाब के गौरव के विस्तार के लिए पंजाबी साहित्य का भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में प्रचार करने के लिए, तथा हिन्दी साहित्य के कोष की वृद्धि के लिए पंजाब के साहित्य का, विशेष

कर सिक्ख गुरुओं की कृति का, देव नागरी अक्षरों में सुसम्पादित होकर प्रकाशित होना आवश्यक है। इसलिये यह सम्मेलन पंजाब के शिक्षित समाज तथा धनी-दानियों की दृष्टि इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर आकर्षित करता है।

(४) यह सम्मेलन हिन्दू-सभाओं, आर्यसमाजों तथा साम्प्रदायिक संस्थाओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है कि वे अपने कार्य-व्यवहार में हिन्दी भाषा के प्रचार का विशेष उद्योग करें।

(५) यह सम्मेलन प्रान्तीय स्थायी समिति को अधिकार देता है कि जब तक सम्मेलन की ओर से कार्यविवरण प्रकाशित होने का स्थिर प्रबन्ध नहीं होता तब तक साइक्लोटाइप द्वारा प्रकाशित सम्मेलन का कार्यविवरण सभाओं के पास भेजा जाय।

(६) यह सम्मेलन पंजाब के व्यापारियों को अपने बही-खाते में अपूर्ण लंडे अक्षरों का परित्याग कर देवनागरी-लिपि के प्रयोग करने की सलाह देता है।

(७) पंजाब में जो प्राचीन शैली के व्यापारी तथा अन्य पाठशालाएं विद्यमान हैं उनका पठन-पाठन-विभाग सुधारने की बड़ी आवश्यकता और उपयोगिता है। यह सम्मेलन उन पाठशालाओं के संचालकों को ध्यान दिलाता है कि वे प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से सम्बन्ध करके उसके निरीक्षण का लाभ उठाएं, तथा स्थायीसमिति को आदेश देता है कि वह इस प्रकार की जो संस्थाएँ सम्बद्ध हों उनका पाठ्य-विषय सुधारने और निश्चित करने तथा उनका निरीक्षण करने का पूरा प्रबन्ध करे।

पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[श्रीयुत अध्यापक रामरत्न]

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम वार्षिकोत्सव मुलतान में ता० ३१ मई व १ जून को बड़ी धूमधाम के साथ समाप्त हो गया।

आयोजन

अखिल भारतीय सम्मेलन के १२वें अधिवेशन के पीछे लाहौर में प्रान्तीय सम्मेलन के स्थापन पर विचार हुआ। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष विद्वद्वर्य्य पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और उत्साही वीर श्रीयुत जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार आदि सज्जनों के प्रयत्न से यह विचार सफल हुआ। एक स्थायी-समिति संगठित हुई, जिसने कानपुर के तेरहवें सम्मेलन के लिये प्रान्त से कुछ प्रतिनिधियों को निर्वाचित करके भेजा।

कार्य-क्षेत्र का विस्तार

प्रान्तीय सम्मेलन के मंत्री जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार बनाये गये। जयचन्द्रजी ने बड़ी मुस्तैदी के साथ कार्य प्रारम्भ किया। शक्ति भर उद्योग करने पर भी सालभर में जैसी सफलता होनी चाहिये थी नहीं हुई। इसका कारण पंजाब में साहित्यिक जीवन की कमी और पारस्परिक मतैक्य की न्यूनता ही समझना चाहिए, फिर भी मन्त्रीजी ने भ्रमण तथा प्रेस द्वारा अपने काम को बहुत बढ़ाया और इस अनवरत परिश्रम का यह परिणाम हुआ कि प्रान्त में उन्होंने कुछ अपने सहायकों को ढूंढ़ निकाला।

प्रथम सम्मेलन

इस नई हिन्दी-हितैषी-मण्डली ने सम्मेलन का प्रथम वार्षिक उत्सव मुलतान नगर में करना निश्चित किया। स्वागत-समिति का संगठन हुआ। मुलतान नगर के प्रसिद्ध नेता बाबू जोधराजजी, श्री गोपालजी, पं० चूड़ामणिजी शास्त्री, डाक्टर विष्णुदत्तजी आदि सज्जनों के उद्योग से बड़ी धूमधाम से तैयारी होने लगी।

हिन्दी-क्षेत्र के प्रसिद्ध वीर स्वामी सत्यदेवजी ने कुछ आपत्तियों के बाद सम्मेलन का सभापति होना स्वीकार कर लिया। स्वागत समिति के अध्यक्ष पंडित चूड़ामणिजी बनाये गये।

विघ्न-बाधाएं

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' यह प्राकृतिक नियम सा है। यहां भी ऐसाही हुआ। कुछ सज्जनों के जी में यह भ्रम हुआ कि यह तो आर्यसमाजियों का सम्मेलन है, इसमें और लोगों को सम्मिलित नहीं होना चाहिये। उन्होंने इस आशय के इधर उधर पत्र भी भेजे। सम्प्रदाय वाद का पंजाब में काफ़ी ज़ोर है। इसी से यह निर्मूल भ्रांति उठ खड़ी हुई। बाबू जोधराजजी की चरित्रशीलता और पं० देवराजजी की बुद्धिमत्ता से यह सब बातें ठीक हो गईं।

सभापति की सवारी

३० मई के सायंकाल को सभापतिजी लाहौर होते हुए मुलतान पहुँचे। स्टेशन पर ही स्वागत किया गया। धूमधाम के साथ सवारी निकाली गई। हार्दिक सद्भाव से सने हुए पुष्पों की वर्षा हुई। गुलाबजल के फुहारों से वायुमण्डल भर गया।

अतिथि और प्रतिनिधि

बाहर से पं० प्रभूदयाल शर्मा सम्मेलन की ओर से २० दिन पहले ही प्रचार के लिये पहुँच गये थे। श्रीयुत रामदास गौड़ तथा मैं भारतीय सम्मेलन की ओर से सम्मिलित हुए। प्रो० बालकृष्णजी (कोल्हापुर) के अतिरिक्त २०० के समीप पंजाब के भिन्न भिन्न ज़िलों के प्रतिनिधि थे।

स्वागताध्यक्ष का भाषण

स्वागताध्यक्ष का भाषण छोटा होनेपर भी बड़ाही उपयोगी और मनोरञ्जक था। उन्होंने अन्य आवश्यक बातों के साथ-साथ बड़ी युक्ति से उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध किया कि साधारण हिन्दी के

मुकाबिले में मुलतानी हिन्दी के अधिकांश प्रयोग संस्कृत के ज्यादा समीप हैं। उपस्थित जनता ने इस भाषण को बहुत पसंद किया।

सभापति की वक्तृता

इसके पीछे नियमानुसार सभापति का निर्वाचन हुआ और उनकी भावपूर्ण जोशीली वक्तृता का जनता पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। आपने नागरीलिपि के प्रचार पर बड़ा ज़ोर दिया। हिन्दी के प्रचार के लिये पंजाबी नवयुवकों से अपील की।

प्रस्ताव

अनेक उपयोगी प्रस्ताव हुए, जो अन्यत्र छपे हैं। इन प्रस्तावों पर बा० रामदासजी गौड़, प्रो० बालकृष्णजी, श्रीजयचन्द्रजी विद्यालंकार, महाशय चमूपतिजी, पं० देवराजजी शास्त्री, बा० जोधराजजी आदि की मार्मिक व्याख्याएँ हुईं।

तार और पत्र

हिन्दी-हितैषी सज्जनों के पंजाब तथा अन्य प्रान्तों से अनेक तार और पत्र प्राप्त हुए, जो यथा समय पढ़कर सुनाये गये। उनमें सम्मेलन की सफलता की इच्छा और अपने उपस्थित न होने पर खेद प्रकट किया गया था। सब से मारके का पत्र वीर वर राजा महेन्द्र प्रताप का था, जो काबुल से भेजा गया था और जिसमें सम्पूर्ण एशिया की लिपि देवनागरी हो इस प्रकार के आन्दोलन व आयोजन करने का मार्ग दिखाया गया है।

सफलता की कसौटी

इस प्रकार हजार डेढ़ हजार की उपस्थिति में दो दिन तक साहित्य और हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी पूरी चहल-पहल रही। लोगों में खूब उत्साह था। अनेक सज्जनों ने नियमपूर्वक पंजाब में काम करने वा रुपया इकट्ठा करने के वचन दिये। देरागाज़ी खां के श्रीयुत वासुदेवजी, फीरोजपुर प्रान्तके स्वामी केशवानंदजी ठाकुर विष्णुदत्तजी आदि ने महत्वपूर्ण कार्य-भार अपने ऊपर

लिया। पंजाब प्रान्त का यह प्रथम सम्मेलन अनेक दृष्टियों से पूर्णतया सफल हुआ।

नाटक और कवि-दरबार

नेशनल कालेजके उत्साही विद्यार्थियों ने "भारत दुर्दशा" नाटक का बड़ी सफलतापूर्वक अभिनय किया। इस अभिनय का उपस्थित जनता पर अच्छा असर हुआ। छोटे छोटे बच्चों के द्वारा गाये हुए देशभक्तिपूर्ण पंजाबी गीत बहुत बढ़िया थे। इन्हीं विद्यार्थियों ने कवि-दरबार की आयोजना को कार्य में परिणत करके एक अच्छा काम किया। राजा भोज स्वर्ग से आकर दरबार करते हैं और आधुनिक हिन्दी-कवियों की कविता सुनकर प्रसन्न होते हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण अभिनय सनातनी और आर्यसमाजी भजनीकों का दृश्य था जिनके ऊपर साहित्य-हत्या करने का दोष लगाया गया था। बिना समझे कुछ लोगों ने इस समय गोलमाल भी किया, परन्तु पीछे सब ठीक हो गया।

नवीन निर्वाचन

आगामी वर्ष के लिए सभापति और पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। नियमानुसार स्वामी सत्यदेव सभापति चतुर्वेदी म० हंसराज, आचार्य पं० गिरधर शर्मा; तथा पं० दीनदयाल व्याख्यान वाचस्पति उपसभापति; जयचन्द्र विद्यालंकार मंत्री; और पदाधिकारियों के अलावा प्रान्त के २० सज्जनों के नाम स्थायी समिति के लिये चुने गये।

हमारी आशा

हम इस नवीन संगठन पर कार्यकर्ताओं को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि स्वामी सत्यदेव की अध्यक्षता में यह सम्मेलन पूर्ण सफलता प्राप्त करेगा जिसका प्रत्यक्ष परिणाम हम अबोर के द्वितीय सम्मेलन के अधिवेशन पर देख सकेंगे।

नवल किशोर प्रेस के पत्र पर मिश्रजी के विचार

पत्रिका के गतांक में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ के मैनेजर का जो पत्र प्रकाशित हुआ था, उसके संबन्ध में, हिन्दी-साहित्य के ग्रन्थों के पाठ और छपाई की शुद्धता वाले प्रस्ताव के समर्थक श्रीयुक्त पं० श्यामविहारी मिश्र एम. ए. ने जो पत्र भेजा है, वह नीचे प्रकाशित किया जाता है—

(१) "नवल किशोर प्रेस" वालों ने जो कुछ लिखा है, उसमें मुझे विशेष तत्त्व की बात कम देख पड़ती है। बात यह है कि उक्त प्रेस में जो पुस्तकें छपती हैं उनमें विशेषांश वैतनिक अथवा पुरस्कार पानेवाले सम्पादकों द्वारा "शुद्ध की हुई" होती हैं। ऐसे सम्पादक मेरी राय में प्रेस को किसी विशेष प्रकार का पाठ छापने के लिए कदापि विवश नहीं कर सकते। बात यह है कि संस्कृत जाननेवाले पण्डित लोग ही प्रायः हिन्दी के ज्ञाता मान लिये जाते हैं पर मेरी समझ में यह भूल है। हिन्दी कई अंशों में संस्कृत की पुत्री अवश्य है पर वह वास्तव में एक भिन्न भाषा है और जिन संस्कृतज्ञ पण्डितों ने हिन्दी को अलग नहीं सीखा अथवा उसपर स्वतन्त्र ध्यान नहीं दिया एवं परिश्रम नहीं किया है उन्हें मैं हिन्दी के ज्ञाता मानने को तैयार नहीं हूं। यदि इन बातों पर समुचित ध्यान देकर प्रेस वाले लोग हिन्दी के ग्रन्थ हिन्दी के पण्डितों द्वारा छापा करें तो उनमें तादृश छपाई एवं पाठ की अशुद्धियां न आया करें।

(२) कथा बांचनेवाले पण्डित लोग जो कुछ किया करते हैं उसका कोई भी प्रभाव ग्रन्थों के पाठ एवं छपाई की शुद्धता पर नहीं पड़ना चाहिये और न मेरी समझ में वह पड़ ही सकता है।

(३) जो ग्रन्थों के स्वतन्त्र सम्पादक गण सहठ पाठ छपवावें उसके लिए प्रकाशक किसी दोष का भागी नहीं हो सकता और

ऐसे सम्पादकों को भूमिका में इस बात का भार स्पष्ट रूप से अपने ऊपर लेना चाहिए।

(४) मेरी समझ में साधारण हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन से धर्म का कुछ विशेष लगाव नहीं देख पड़ता है और प्रेस को ऐसी बात में धर्म की आड़ लेना अनुचित प्रतीत होता है।

(५) यदि "क्षेपक भारतवर्ष की प्राचीन प्रथा है" तो इससे क्या? वह दूषणों की कक्षा से निकलकर कोई भूषण या अच्छा पदार्थ मान लिया जायगा? मेरी समझ में क्षेपकों को यथा सम्भव किसी भी ग्रन्थ में कदापि स्थान नहीं मिलना चाहिये। यदि कोई क्षेपक किसी सम्पादक अथवा प्रकाशक को बहुत ही अच्छा जान पड़े तो उसे फुट-नोट की भांति पृष्ठ अथवा पृष्ठों पर आड़ी लकीर खींच कर उसके नीचे छाप देने में तादृश हानि प्रतीत नहीं होती। मेरी राय में वेद भगवान् में कोई भी क्षेपक निकाल दिखाना कुछ टेढ़ी खीर है। सम्मेलन द्वारा प्रकाशित मेरे भारतवर्ष के इतिहास के प्रथम भाग में मैंने वेदों के विषय में बहुत सी बातें लिखी हैं और उसमें यह स्पष्ट दिखलाया गया है कि क्षेपकों को रोकने के लिए वेदों में कितना परिश्रम किया गया है। मैं बिना विश्वसनीय प्रमाणों के यह मानने को कदापि तैयार नहीं हूं कि वेदों में, विशेषतः "ऋग्वेद में निरे क्षेपक भरे पड़े हैं।"

(६) "राम चरित मानस" का जो अति शुद्ध संस्करण "नवल किशोर प्रेस" छापना चाहता है उसे देखकर मुझे परम प्रसन्नता होगी।

शिमला }
११-६-८४ }

श्याम विहारी मिश्र

हा प्रेमपुंज !

अत्यन्त खेद के साथ प्रकट करना पड़ता है कि आगरे के सुप्रसिद्ध विद्यावयोवृद्ध, हिन्दी के सिद्ध-हस्त कवि मुंशी पन्नालालजी 'प्रेमपुंज' २५ मई १९२४ ई० को अचानक स्वर्गगामी हो गये। मुंशीजी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। वैद्यक से भी आपका प्रेम था। कविता का चसका तो आपको बचपन से ही था। आप की कविता ब्रजभाषा में पुराने ढंग की होती थी। पिंगल और अलंकार संबंधी बारीकियां आप खूब जानते थे। अनेक फुटकर कविताओं के सिवा आपने दो पुस्तकें लिखी हैं। एक "स्वतंत्र वनिता विनाश" जो प्रकाशित हो चुकी है और दूसरी "हंसदूत महाकाव्य।" प्रेमपुंजजी ने हंसदूत महाकाव्य का बड़ा ही सरस, भावमय और सजीव उलथा किया है। यह चीज़ हिन्दी-साहित्य में बिलकुल नई और अनूठी होगी।

मुंशीजी बड़े ही नम्र, निरभिमानी, सीधे-सादे, सदाचारी और मिलनसार थे। अत्यन्त वृद्ध होने पर भी हिन्दी के लिए आपकी नसोंमें नवयुवकों की तरह रक्त दौड़ता था। हमें भी मुंशीजी से २—३ बार मिलने का अवसर आया है। मुंशीजी की भोलीभाली सूरत और हिन्दीप्रेम की साकार मूरत आज भी आँखों में झूल रही है। शोक और लज्जा का विषय है कि हिन्दी-संसार ने आपका यथेष्ट आदर न किया और अपनी गुदड़ी का एक लाल योंही खो दिया! हम आपके शोकाकुल कुटुंब के साथ समवेदना प्रकट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह आपकी आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करें।

साहित्य-समालोचन

सहयोगी पत्र-पत्रिकाएं

१—**भारतधर्म**—साप्ताहिक पत्र—सम्पादक श्रीयुत पं० गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर। प्रकाशक—भारतधर्म महामंडल, काशी।

महामंडल का यह पत्र बड़ा ही भव्य और होनहार प्रतीत होता है। यह धार्मिक, सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक स्तंभों पर खड़ा हुआ है। विचार उदात्त और उदार जान पड़ते हैं। भाषा प्रांजल और शैली चित्ताकर्षिणी पायी जाती है। कई लेख स्थायी और उपादेय देखने में आये हैं। विज्ञान और शिक्षा से भी बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। महिला-जगत् का भी पृष्ठपोषक जान पड़ता है। सामयिक समाचारों का भी कुछ समावेश रहता है। तात्पर्य यह कि प्रायः प्रत्येक अंश में यह पत्र वर्तमान जगत् की सेवा करने की चेष्टा कर रहा है। सबसे प्रसन्नता की बात तो यह है कि इसके सम्पादकीय विचार बड़े ही गम्भीर, उपयोगी और पाठ्य होते हैं। हम चाहते हैं कि "भारतधर्म" भारतवर्षीय चिरन्तन उदारधर्म के प्रचार करने में इसी प्रकार सदा तत्पर रहे।

२—**गोलमाल**—साप्ताहिकपत्र। सम्पादक श्रीयुत दीनानाथ सिगतिया। पता—मैनेजर "गोलमाल" नारायण पुस्तकालय, चौक पटना सिटी।

गोलमाल महोदय भी मस्त "मतवाला" के लँगोटिया यार समझ पड़ते हैं। आजकल जहाँ जितने गोलमाल हो रहे हैं उनकी पोल खोलने के लिये गोलमाल अखाड़े में उतरे हैं। आपकी गृद्ध-दृष्टि तीव्र जान पड़ती है। लोकमत का भी आप आदर करते हैं। अफी-

मची की पिनक द्वारा आप अपना काम साधना खूब जानते हैं। आपका टेलीफोन भी नित नयी खबरें सुनाता रहता है। मुखपृष्ठ पर कविताओं का भी जमघट रहता है। हम चाहते हैं कि गोलमाल कारिणी महामाया देवी की छत्रच्छाया में आप सदा अमन व अमान से चैन चान करें।

पुस्तकें

१—महात्मा विदुर—लेखक, श्री नन्दकिशोरलालजी। प्रकाशक श्रीसूर्यदेवनारायण सिंह, ओंकार पुस्तकालय, लहरिया सराय, दरभंगा। पृष्ठ संख्या १४०; मूल्य १) कागज छपाई मामूली।

वर्तमान काल के नाटकों की बाढ़में इस नाटक ने भी योग दिया है। महात्मा विदुर के चरित्र-चित्रांकण के साथ इस नाटक में नाट्यकार महोदय ने कई कल्पनाएँ भिड़ाई हैं, जिनमें कदाचित् देशकाल परिस्थिति पर कम विचार किया गया है। प्रायः नाटकों के सम्बन्ध में यह सुनने में आता है कि नाटक-रचना स्टेज के अनुकूल होनी चाहिये, पर यह कोई नहीं कहता है कि स्टेज किसके अनुकूल बनाना चाहिये। जिन स्टेजों पर दर्शकों की आँखों के आगे इन्दर सभा, सफेद खून, असीरे हिर्स आदि गन्दे और दो कौड़ी के नाटक खेले जाते हैं उनके अनुकूल नाटक रचना करना नाट्यकला की बिडम्बना नहीं तो क्या है। हम तो कहेंगे कि नाटककारों को अपने नाटकों के अनुकूल स्टेज बनाना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि कई अंशोंमें आपेक्षिक दृष्टि से निर्दोष है तथापि कई स्थानों पर इसे भी वर्तमान-स्टेज के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। कविताएँ साधारण और कृत्रिम जान पड़ती हैं। पुस्तक में २ चित्र भी हैं। हमारी राय में नाटकों में चित्र देना असंगत सा है। आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक के प्रणेता महोदय हमारे विचार पर यत्किंचित् ध्यान देकर नाट्यकलानुकूल सुन्दर नाटक लिखने का प्रयत्न करेंगे।

२—मुक्ति की युक्ति—श्री पं० राजाराम शुक्ल। प्रकाशक मित्रमंडल, कानपूर। पृष्ठ संख्या ३२; छपाई कागज बढ़िया, मूल्य ।-)

इस पुस्तक में पद्य द्वारा उपासक, उपास्यदेव, उपासनास्थल आदि मुक्ति की ६ युक्तियाँ बतलायी गयी हैं। कविता संस्कृत वृत्तों में की गई है जो परिष्कृत, भव्य और पठनीय है। यदि ग्रन्थकार महोदय इन युक्तियों को कुछ और उदारता के साथ अंकित करने की चेष्टा करते तो निस्सन्देह यह पुस्तक साहित्य में समादरणीय स्थान पाने की अधिकारिणी होती। फिर भी हम इस पुस्तक का सादर स्वागत करते हैं।

३—दर्शन परिचय—लेखक श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री। प्रकाशक—निहालचंद ऐण्ड कम्पनी, १ नारायण प्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता। पृष्ठसंख्या २६०; काग़ज़-छपाई सुन्दर मूल्य २) सजिल्द २॥)

इस पुस्तक की भूमिका संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् शिक्षा-सम्पादक पं० सकलनारायण शर्मा ने लिखी है। साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा एम० ए० और साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मिलित सम्मति ने 'दर्शन परिचय' का बहुत ही सुन्दर परिचय कराने की चेष्टा की है। यह ग्रन्थ हिन्दी-संसार में अभिनन्दनीय और अनूठा है। इस अनमोल ग्रन्थ को लिखकर त्रिवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य की बड़ी भारी त्रुटि की पूर्त्ति करने का बीड़ा उठाया है। आपने भारतीय दर्शन शास्त्र के प्रत्येक अंगोपांगपर विवेचनापूर्ण विचार करते हुए पाश्चात्य फिलासफी के साथ उसकी तुलना की है। कहाँ किस दर्शन का मत-विभेद और कहाँ उसका समन्वय होता है इसको दिखला कर आपने अपनी दर्शन-अभिज्ञता का पर्याप्त परिचय दिया है। पुस्तक का यह प्रथम खंड है; इसमें केवल सांख्य और योग दर्शन पर विचार किया गया है जो प्रायः निर्विवाद, उपयुक्त और उपादेय प्रतीत होता है। हम त्रिवेदीजी को तथा इस ग्रन्थ के प्रकाशक महोदय को इस सदुद्योग के लिये हार्दिक बधाई देते हैं!

—"साहित्यानंद"

प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त होगई हैं; प्रेषक महोदयों को अनेक धन्यवाद—

भारत में अर्थ शास्त्र और लगान—लेखक श्री अध्यापक शिव प्रसाद सिंह विशारद। प्रकाशक—बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा बलिया; पृष्ठ संख्या ३२ मूल्य =)

बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा की स्वागत समिति के सभापति का भाषण। प्रकाशक—बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा, बलिया।

सत्यवादिता—लेखक अज्ञात, अनुवादक श्री पं० ठाकुरदत्त मिश्र। प्रकाशक—श्री मुनिमोहन बन्द्योपाध्याय एम० ए, सी. टी., एल एल बी. हेडमास्टर विद्यामन्दिर हाईस्कूल, प्रयाग। पृष्ठ संख्या १३; मूल्य सत्य-प्रेम।

संयुक्त प्रान्तीय ग्राम्य पंचायत ऐक्ट—ऐक्ट नं० ६ सन् १६२० ई० शुद्ध और सरल हिन्दी में। लेखक श्री पं० कृष्ण तिवारी बी० एस० सी० एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट। पृष्ठसंख्या। ४०, मूल्य ॥)

बालचर विनोद—लेखक कविरत्न श्री पं० रामप्रीत शर्मा विशारद। प्रकाशक—शिवग्रन्थमाला, आरा, विहार। पृष्ठसंख्या २६; मूल्य =)

—संपादक

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

निम्नलिखित पुस्तकें पौने मूल्य पर मिल सकेंगी—

१—देशभक्त लाजपत

[ले०—श्री राधामोहन गोकुलजी (राधे)]

लालाजी के जीवन में देश-सेवा करते हुए कैसी कैसी घटनाएँ हुई हैं, उन्हें क्या क्या कष्ट उठाने पड़े हैं, कष्ट सहन करते हुए भी वे अपने पथ पर कैसे डटे रहे हैं, आदि सभी बातें लेखक ने इस पुस्तक में यथास्थान संपादित कर दी हैं। पृष्ठसंख्या ३२५ मूल्य १), रियायती मूल्य केवल ॥।)

२—नीति-दर्शन

[ले०—श्री राधामोहन गोकुलजी (राधे)]

यह नीतिशास्त्र की अद्वितीय पुस्तक है। हिन्दू-धर्म-व्यवस्था, राजनीति, समाज-संगठन आदि सभी ज़रूरी बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डाली गयी है। पृष्ठ संख्या २१० मूल्य ॥।), रियायती मूल्य केवल ॥-)

आवश्यकता

हमें कुछ ऐसे सज्जनों की आवश्यकता है, जो प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की शुद्ध और स्पष्ट प्रतिलिपि कर सकें। यह काम कराने के लिए हम उन्हें बाहर भी भेजेंगे। जो सज्जन यह काम करना चाहें, वे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करके तय करलें।

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

रजिस्टर्ड नं. ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क ११; आषाढ़ १९८१

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)

प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। जो लोग भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाकव्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र—"प्रचार मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाश करने वा न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

आवश्यक सूचना

६—आज से सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी।

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर, दो आना कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) रुपया सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ़ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं। अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

संयोजक,

मिती चैत्र कृष्ण १० पुस्तक-प्रकाशन-समिति
सं० १९८० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग।

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थरत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला ·ाचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही ·। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर लिखाये और प्रकाशित किये जाते हैं। अब तक इस माला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव हैं, ओज है और प्राण हैं। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने क्लिष्ट स्थानों पर टिप्पणी दे दी हैं और कठिन शब्दों का अर्थ लिख दिया है। कविता में सूत्र रूप से वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, यदि जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और यदि साहित्यिक आनन्द लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलङ्कार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक तथा भूषण कवि के फुटकर कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है आदि गम्भीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भाँति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११ प्रयाग।

३—भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसाप्लावित न होता होगा ? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखे हैं। इसकी प्रस्तावना साहित्यमर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक जिसकी पृष्ठ संख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥) ।

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग।

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात रहित सम्मतियाँ दी थीं, कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवा जी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी,
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाह-

रण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदास जी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में स्वीकृत भी है। मूल्य ।)

९—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४४८, मूल्य ३)

१०—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम. ए., बी, एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

११—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सूरदास जी रचित सूर-सागर से २५० पद-रत्न चुन कर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण जी गोस्वामी ने

लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। तब उसे पार कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की सुन्दरता भी पर्याप्त रूप से दिखला दी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक काग़ज़ का जिल्ददार संस्करण पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

१२—विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है इसमें शृङ्गार रस के दोहों ही का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना

किसी सङ्कोच के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है। ब्रजभाषा का कोई भी प्रसिद्ध कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गयीं हैं जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गयी है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
की
मुख-पत्रिका

भाग ११ } आषाढ़, संवत् १९८१ { अङ्क ११

निवेदन

नासा लटकनवारे, भौंह मटकनवारे,
हीय खटकनवारे मेरी गैल आजा रे।
कुण्डल झलकवारे, घूंघुरी अलकवारे,
केसर तिलकवारे, मही दही खाजा रे।
कवि 'अम्बादत्त' के अनन्दवारे नन्दवारे,
दुख दंद बृन्द कन्द फन्दनि छुड़ाजा रे।
सुन्दर लकुटवारे पीरे पीरे पटवारे,
मोर के मुकुटवारे दरस दिखाजा रे॥

—अम्बिकादत्त व्यास

प्रेम-कहानी

[कविवर श्री वल्लभजी]

श्री राधे नव नारि रूप गुन गरब गहीली ।
बैठी करत सिंगार पिया सुधि साधि रंगीली ॥
प्रेम विवस पिय मन आकर्षन करन धारि हिय ।
सुखद सेज पै बैठि समारन लगी बार तिय ॥
ललिता ललित सुलाय मुकुर आगे धरि दीनों ।
मन पिय सुधि लौलीन डिबा गहने को लीनों ॥
लै कखई धरि बारन काढ़ति मांग डरति अत ।
ज्यों फणिधर फहरावत लखि लखि बबकि परत कित ॥
कबहुँ कहति इन केसन मोकों अति दुख दीनों ।
नागिन सी लट लटकति मो मन संभ्रम कीनों ॥
कहि ललिता इत आवहु मेरो दुसह मिटावहु ।
परे रहत नित पीछे बारन बाँधि दिखावहु ॥
ललिता सूंटि समारि हाल चुटिया करि दीनीं ।
मोतिन सों रचि मांग गुही बेनी रंग भीनी ॥
स्याम केश बिच दमकति यों मुक्तावलि राजति ।
ज्यों घन में बग-पांति अधिक सोभा छबि छाजति ॥
सीस चन्द्रिका सीसफूल बंदनी सुहाई ।
कर्णफूल झूमका पहरि अति हिये सिराई ॥
गोल कपोलन लोलन अति सोभा छबि छाई ।
तिय डोलत मुख इत उत भौंह तरेरत जाई ॥
कंठ पाटिया पँचमनिया पहिर्यो अति सुन्दर ।
मानौं बन्दनवार बँधी द्वारे उर मन्दर ॥
दोउ चकवन कंचुकी जार बिच बांधति कसि कसि ।
कबहुँ कि हारन धारति कबहुँ उतारति हँसि हँसि ॥
निरखि मुकुर प्रतिबिम्ब मुग्ध भई रूप निहारी ।
कहन लगी यह कौन नवल आई ब्रजनारी ॥

जो प्रीतम लखि पावै यह नागरि गुन आगर।
तौ मेरो अपमान अवसि करिहैं नटनागर॥
कहन लगी, तू कौन भटू इत कैसे आई?
कहौ कौन सो गाम कौन बाबा की जाई?
हौंठ हलत ही दीसत शब्द न परत सुनाई।
तब प्यारी रिसि मानि कहन लागी भुंभराई॥
जोबन कौ अति गरव ग्वालिनी मोय बिरावति।
शब्द सुनत कछु नाहिं लाज सों हौंठ चलावति॥
प्रीती रिस भय बिवस परस्पर बिकल भई तिय।
दुवकि खंभ की ओट पिछारी सों निरखत पिय॥
कहन लगी, सुन ओ नव नागरि जोबनमाती।
मिल्यौ न अजहूं तोय कहूं कान्हर रसघाती॥
जो तोकों मग आवत जात कहूं लखि पावै।
पढ़ि मुरली में मंत्र मोहिनी फूंक चलावै॥
तब न रहैगी ऐसी जैसी परति दिखाई।
दुरि अपने ग्रह जाव, न देखो कुंवर कन्हाई॥
वह लंपट अति ढीठ कपट की प्रीति दिखावै।
पहिले मन को छीनि फेर टेढ़ो बतरावै॥
ऊपर सुन्दर स्याम दिपत उर अंतर कारो।
कनक कुंभ बिष भरो मधुप रसचाखनहारो॥
कनकलता सी कामिनि दीसति भोरी भारी।
रूप उजागरि नागरि मोय अति लागति प्यारी॥
ताते मैं कछु कहौं तिहारे हित की बातें।
दीसति सरल सुभाव नाहिं जानति रसघातें॥
स्याम खंभ की ओट पर्यो प्रतिबिम्ब दिखाई।
निरखि पिया तिहि पाछें अति मन में खिसियाई॥
कहन लगी हौं तबहि कहत ही तो सों सुन्दरि।
जाव जाव निज भौन, देख आयो वह गिरिधरि॥
नील कंज कर स्याम नैन खंजन दोउ मीचे।

प्रेमबेलि की वारिन ज्यों अमरत जल सींचे ॥
कमल-करन टकटोरति हृदय बिचारति जाई ।
लेति सखिन के नाम कौन आई यह माई ॥
ललिता सूझी कहा, करति तू कहा ढिठाई ?
दूखन लागीं आँखिन छाँड़ो मोय न सुहाई ॥
नहिं ललिता तौ अबस बिसाखा प्रानन प्यारी ।
छांड़ि छांड़ि बलि जाउँ मोय लागत स्रम भारी ॥
लै लै सखियन नाम पुकारति राधा प्यारी !
बिहँसि उठे मनमोहन प्यारे कुंजविहारी ॥
द्रग खंजन मनरंजन छाँड़े कमल बंद सौं ।
लखि प्यारी चट लपटि गई आनंदकंद सौं ॥
कहा कहौं पिय पलट गई इस मति बौरानी ।
क्यों ऐसी गति भई मोय कछु जाति न जानी ॥
कहि बल्लभ जीवनधन यह सब प्रेम-कहानी ।
रसिकन प्रानाधार, कहा जानैं गुर ग्यानी ॥
मैं तुमरौ तुम मेरे जीवनधन श्री राधा ।
नवल निकुंज पधारहु मैटन अंतर बाधा ॥

कवि और कविता

(गतांक के आगे)

[श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव्य]

इस बात से भी मैं सहमत नहीं कि कवि का सम्बन्ध मस्तिष्क से उतना नहीं जितना हृदय से है। जैसे नर-नारी के अधिकार-तारतम्य (harmoney) में ही गृह-जीवन का सुख है, वैसे ही मस्तिष्क-हृदय के जीवन-तारतम्य में कवित्व की जान है। जहां किसी की प्रधानता हुई कि कवित्व के अंग शिथिल हुए। हृदय की प्रधानता होने से

कवित्व में छिछलापन आ जाता है। आज कल की कितनी ही करुण-रस की कविताएं असभ्य वृद्धाओं के छाती कूटने के समान होती हैं। उनकी करुणा में गंभीरता की छुआई नहीं रहती—ऐसी हाय-हाय मचाई जाती है जो हृदय की बात न होकर परिस्थिति को देखते हुए अस्वाभाविक होती है। फल यह होता है कि वह करुण-संचार करने के बदले परिहास की सामग्री उपस्थित कर देती है—भाँड़ों के रोने का समा दिखाती है। शृंगार रस में हृदय प्रधान हुआ तो अश्लीलता की सृष्टि होती है—रस-संचार के लिये कवि पर्दा फाश कर बैठता है—जहां बुद्धि दबी वहां मतवालापन आ ही जाता है। इसी प्रकार और रसों में समझ लेना चाहिये। यदि मस्तिष्क की प्रधानता हुई तो लगे दर्शनशास्त्र के सूत्र गढ़ने, रूपक बाँधने, निरार्थक उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार करने। करुण रस में अनुपयुक्त उपदेशों का रस आ जाता है—हास्य में भँड़ैती होने लगती है—शृंगार में बनाव और विस्तृत वर्णन ही प्रधान हो जाता है या विचित्र उक्तियों—फबतियों—का अनुसन्धान मात्र ही उद्देश्य हो जाता है। उर्दू के कवियों में अधिकतर यही बात है, कहीं हृदय प्रधान, तो कहीं मस्तिष्क प्रधान।

बाज़ीगरी या मदारी का खेल करने में वास्तविक कवित्व का नाश हो जाता है। कहीं नारियल व शिव को स्तन बनाने में, बरफ़ को परकीया बनाने में, काशी में बाला का रूपक बांधने में या चार चार अर्थ ला देने में कविता रक्खी है! रसका परिपाक ही हमारा उद्देश्य है, उसका साधन ऊपर कह चुके हैं। इसकी परिपक्वावस्था में चञ्चल से चञ्चल मन गंभीर हो जाता है, वह ठहाका मार कर हँसता नहीं, छाती पीटकर हाय-हाय नहीं करता, वरन् बड़ी गंभीरतापूर्वक धीरे से मुंह खोलता है, वृद्धों की सी परिमित बातें करता है। बच्चा भी अधिक करुणा में बोलता नहीं, केवल आंसू बहाता है, मचलता नहीं, शान्त रहता है। ऐसे समय पर हृदय रस का अनुभव करता है, उसे बकबक करना, शान्ति भङ्ग करना अभीष्ट नहीं। जितना चाहिये उतना ही कहना एक बड़ी भारी बात

है—जो केवल प्राकृत कवियों के ही पल्ले पड़ी है, सब के नहीं। वह हो सकता है केवल मस्तिष्क और हृदय के तारतम्य की अवस्था में, जब रस का परिपाक हो।

कविता और विज्ञान दो भिन्न-भिन्न वस्तुएं अवश्य हैं, पर जैसा लोग समझते हैं इनमें विरोध कोई भी नहीं है। मेरी धारणा है कि एक प्रकृत कवि यदि विज्ञान में दक्ष हो तो वह ऐसी करामात दिखा सकता है, कविता में कुछ ऐसी नई जान फूंक सकता है कि संसार थकित लोचनों से उसको देखता ही रह जाय। इस विषय पर मैं किसी स्वतंत्र निबन्ध द्वारा अपने विचार प्रकट करूंगा।

यह ठीक है कि आजकल हिन्दी-कवि कहाने योग्य कदाचित् कोई भी नहीं है, पर इस विषय में एक बात कह देना उचित प्रतीत होता है। किसी भी कवि-नामधारी के पास जब मैं जाता हूं तब वह लगता है आजकल के कवियों की भर्त्सना करने। सब के सब हिन्दी की कविता की बाढ़ से ऊबे हुए हैं—केवल अपनी कविता से, जिसका भाग उस बाढ़ में अवश्य है, नहीं ऊबे हुए हैं। जब दो चार सिद्धहस्त कवि बैठ कर शेष सब कवियों को फटकारने लगते हैं तो मुझे हँसी आती है। वे भूल जाते हैं कि उनकी अधिकांश बातें अधिकांश में उन्हीं पर लागू हैं। मैं जहां तक समझता हूं, यह बाढ़—वह चाहे जैसी हो—असन्तोष का कारण नहीं। जैसे अब तक के खड़ी बोली के बड़े कवियों ने अब के नवयुवक कवियों के लिये सीढ़ियाँ बनाईं—बालिका खड़ीबोली को खिला-खिला कर बड़ा किया—वैसे ही अब के कवि भी भावी महाकवियों के लिये पथ-शोधन मात्र कर रहे हैं। इस बाढ़ से ही हिन्दी-कविता आगे बढ़ेगी।

आजकल कुछ नई प्रतिभाएँ ऐसी दीख पड़ती हैं, जो कदाचित् आगे कुछ कर दिखावें। खड़ीबोली में विश्व-साहित्य का निर्माण अभी बहुत दूर है, पर उसकी क्षीण झलक दीख पड़ने लगी है। पर इस निर्माण के मार्ग में कांटे भी बहुत हैं। हिन्दी पढ़े-लिखे लोग अधिकांश में विश्व-साहित्य निर्माण करनेवाली कविता का मूल्य नहीं समझते। वे बहुत समझते हैं तो नायक-नायिका-भेद पर

फुटकर लच्छेदार कवित्तों पर उछल पड़ते हैं, जिन्हें विश्व-साहित्य अपने से बाहर ठुकराने के सिवा और कुछ कर नहीं सकता। नई प्रतिभाएं जो सृष्टि करती हैं उनको बूढ़े कवि अवश्य ही संदिग्ध दृष्टि से देखेंगे। ऐसे परिवर्तन-काल में तो यह भी होता है कि वृद्ध-समुदाय युवकों की कृति में विशेषता देख कर समझता है कि ये छोकरे इतना अच्छा लिख कैसे सकते हैं, अवश्य इनकी कृतियां त्रुटिपूर्ण होंगी! यह सोचकर जहां वे ग़लतियां निकालने पर ही कटिबद्ध हो गये तो ग़लतियों का मिलना क्या कठिन है? पिंगल का उल्लंघन किया—पिंगल की मर्यादा नहीं रख सकते तो पिंगल कोही दोषी ठहराते हैं—रस अलंकार कुछ नहीं जानते, रबर छंद में लिखते हैं, उक्ति से भेंट नहीं है। हंसा लेने से, रुला लेने से, रस सञ्चार कर सकने से ही क्या लाभ, जब कविता पिंगलसंबन्धी दोषों से मुक्त नहीं है? अलंकार कविता में ठूँस दिये, पर एक अलंकार का भी नाम नहीं मालूम! हमसे मधुर भाषा लिखते हैं! तुक जोड़ते बनता ही नहीं, छाँटते हैं संस्कृत, तब भी हिन्दी के कवि हैं! इतना निश्चय है कि आप स्वयं जब केवल साधारण बातों को उससे अधिक क्लिष्ट भाषा में कहते हैं तब उसमें कोई नई बात आ जाती है—भाषा की साधुता और प्राञ्जलता सराहनीय हो जाती है—तुक गौण हो जाता है।

इस 'प्राप्ति-स्वीकार' में यह उलाहना है कि अमुक-अमुक कवियों को कविता-कौमुदी में नहीं रक्खा गया। इस उलाहना की आवश्यकता नहीं। इसमें किसी का दोष भी नहीं। जब एक व्यक्ति कवियों का संग्रह कर रहा है, तो वह अपनी रुचि के अनुसार ही संग्रह करेगा। यदि संग्रहकार स्वयं भी कवि है तब तो उसकी रुचि और भी विशेषता से प्रधान होगी। यदि कोई दूसरा संग्रहकार होता तो वह कदाचित् इस संग्रहकार को ही छोड़ जाता, अपने संग्रह में स्थान न देता। ऐसी अवस्था में स्थान देना या न देना व्यक्तिगत रुचि पर ही निर्भर है—अतएव उसमें किसी के कुछ कहने-सुनने की जगह नहीं—किसी के दुखी होने की जगह

नहीं। अभी तो न जाने कितनी कविता-कौमुदियां हिन्दी में बनेंगी, और न जाने कौन-कौन कवि उनमें न रक्खे जावेंगे। इन छोटी बातों की कहाँ तक परवाह की जावेगी ? हां, यदि साहित्य-सम्मेलन की ओर से निर्वाचित कोई-समिति आधुनिक कवियों के इतिहास संकलन का कार्य करती होती, और वह कुछ होनहार कवियों की उपेक्षा करती तो कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता थी।

इसके उपरान्त अभी तो यह संभव है कि हमारे सम्मान्य बड़े-बड़े कवियों और नवयुवक कवियों में साहित्यिक युद्ध छिड़े, क्योंकि दोनों दलों की धुन एक दूसरे से टकराती हुई दृष्टि आती हैं। संभव है कि वृद्ध-दल सचमुच ही युवक-दल का दिल दुखावे, उन्हें अनभिज्ञ और पागल कहकर कवियों की श्रेणी से बाहर रखना चाहे। नवीन दल के लिये ये सब बातें उपेक्षणीय हैं। वृद्ध-दल का साथ सम्पादक और समालोचक भी देंगे। यहां कौन माई का लाल है जो समालोचना की वर्णमाला पार कर चुका हो! कोई ऐसी बड़ी पत्रिका भी दिखलाई देती है जिसका सम्पादक सम्पादन-पद का अधिकारी हो ? फिर इनकी बातें ही क्या होंगी जिन पर ध्यान दिया जाय ? नवीन दल का कार्य इतना महान् है कि ऐसी तुच्छ बातों की ओर ध्यान देने का उसे अवकाश ही नहीं। उसे तो अपने मार्ग पर बढ़ते ही जाना चाहिये, कान बन्द रखना चाहिये। बिना कटु आलोचना का पात्र हुए भला कोई वड़ सवर्थ हो सकता है ? आप किसान की झोपड़ी में बैठ कर उसको अपनी कविता सुनाइये। यदि वह हँस दे या रो दे तो आपकी कविता का जन्म सफल और आपका भी। बड़ों के साहित्य-भवनों को एक ओर पड़ा रहने दीजिये। बड़ों के लिये कविता हो चुकी, अब छोटों के लिये होगी।

हमारा हृदय इन क्षुद्र अड़चनों पर रो नहीं सकता। वह द्विगुण उत्साह ही धारण कर सकता है। ऐसी बातों से सुमन को हिम-विन्दु से प्रफुल्लित होना चाहिए, आंसू नहीं भरना चाहिये। इसी अड़चन के सागर में सूर्यकान्त मणि होंगे, नवीन पुष्प खिलेंगे

और हमारे नयन खुलेंगे। जब हिन्दी-संसार के वृद्ध इन नये पौधों को साफ़ कर सकेंगे तब हिन्दी—खड़ीबोली—का साहित्य ही हलाल हो जावेगा। यदि खड़ीबोली की बाढ़ रोकी गई, तो उसकी मृत्यु ही निश्चित है। किन्तु इन सब बातों की आशंका ही कहां है। खड़ीबोली को किशोर वाक्य प्रदान करनेवाले नवीन दल की कीर्त्ति-पताका भारतवर्ष में फहरावेगी।

भ्रमर गीत

(श्रीयुत पं० मदनलाल चतुर्वेदी)

भौंरा, अजहूँ लै हरि नाउँ।

जाने कौन बखत चलि दीजै, ना रहनो या गाँउ॥

(२)

कीड़ा कौंल-कोष में छिपिबो औ करिबो रस-पान।

झूमि झूमि मालती कुञ्ज में संभव नहिं फिर गान॥

भौंरा अजहूँ लै हरि नाउँ।

(३)

उमगैं रितु प्रसून जोवन की दिन द्वै की महमान।

नैन उघारि नैक लखु आगे, ताने काल कमान॥

भौंरा अजहूँ लै हरि नाउँ।

(४)

बौरै जनि अलि मत्त बावरे, नहिं रहि है सुख तौर।

ठाँउ न रहैं साँझ-बदरा ज्यों छिनै और छिन और॥

भौंरा अजहूँ लै हरि नाउँ।

अश्वघोषका बुद्धचरित

(श्रीयुत पंडित ठाकुरदत्त मिश्र)

अश्वघोष-रचित बुद्धचरित नामक संस्कृतभाषा का एक प्राचीन महाकाव्य है। खेद की बात है कि इस देश के पण्डित-समाज में इस ग्रन्थ का प्रचार नहीं है। अधिक दुःख तो इस बात का है कि इसकी शुद्ध तथा सम्पूर्ण प्रति का आविष्कार आज तक नहीं हो सका। केवल इ० वि० काउल साहेब द्वारा सम्पादित संस्करण ही हम लोगों का एक मात्र अवलम्बन है। यह नैपाल में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ के आधार पर प्रकाशित हुआ है। कई कारणों से इस ग्रन्थ के प्रथम सर्ग का अंश अन्य कवि की रचना कहा जा सकता है, तथा चतुर्दश सर्ग के अन्तिम भाग से सप्तदश सर्ग पर्यन्त अमृतानन्द नामक किसी अन्य लेखक द्वारा मिलाया गया है। इस बात को ग्रन्थ के अन्त में उक्त लेखक महोदय ने स्वयं स्वीकार किया है, परन्तु यह अंश निर्दोष भाषा में नहीं लिखा गया है। छन्द सम्बंधी दोषों के अतिरिक्त व्याकरण की अशुद्धियाँ भी यथेष्ट परिमाण में पाई जाती हैं। इस प्रकार आदि तथा अन्त में खण्डित होने के कारण मूल ग्रन्थ की रचना हृदय-ग्राहिणी होने पर भी उसके अनेक स्थल अस्पष्ट तथा वास्तविक पाठ के विकारों का परिचय देते हैं। सम्पादक महोदय ने यथाशक्ति प्रयत्न करने में लेशमात्र भी त्रुटि नहीं की, परन्तु तो भी अनेक स्थलों पर मूल ग्रन्थ के पाठ उद्धृत नहीं कर सके इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस प्रकार प्राप्त ग्रन्थ में अनेक त्रुटियाँ होने पर भी कई कारणों से यह पण्डित-समाज की आलोचना तथा आदर के योग्य है। यह महाकाव्य भगवान् बुद्धदेव के चरित के आधार पर रचा गया है। इसकी कविताओं में महाकवि वाल्मीकि तथा कालिदास के काव्यों की भाषा तथा भावों की छाया कई स्थलों पर दिखाई पड़ती है। इस ग्रन्थ में शान्त रस प्रधान है, और इसके सहायक अन्यान्यरसों की भी अवता-

रणा की गई है। इस काव्य के अध्ययन में साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा दार्शनिक प्रायः सभी व्यक्तियों का मनोविनोद हो सकता है।

महाकवि अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे, अतएव पुरातत्व-वेत्ताओं ने इन्हें ईसा की पहली शताब्दी का कवि माना है। महाकवि कालिदास का समय निश्चित करते समय अनेक विद्वानों ने स्थान स्थान पर अश्वघोष के काव्य के साथ उनकी कविताओं की समालोचना की है। कोई-कोई तो कालिदास को इनका पूर्ववर्ती और कोई परवर्ती मानते हैं। इन दोनों महाकवियों की कविताओं पर गम्भीर विचार करने से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि इनमें से एक ने अवश्य दूसरे का अनुकरण किया है। कालिदास के समय-निरूपण के सम्बन्ध में पुरातत्ववेत्ताओं में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग तो इन्हें ईसा का पूर्ववर्ती, तथा कुछ लोग प्रथम या द्वितीय शताब्दी का मानते हैं। और कुछ लोगों का कथन है कि ये ईसा की पाँचवीं या छठवीं शताब्दी में हुए थे। प्रायः सभी ने अपने-अपने मत के समर्थन का यथेष्ट प्रयत्न किया है, फलतः भारत के अद्वितीय कवि कालिदास का समय आज तक भी सर्वसम्मति से स्थिर नहीं किया जा सका। जिन लोगों का मत यह है कि महाकवि कालिदास ईसा से पूर्व हुए थे उनके अनुसार अश्वघोष ने इनका अनुकरण किया है, और जो लोग उक्त महाकवि को पाँचवीं या छठीं शताब्दी का बतलाते हैं उनके अनुसार इन्होंने ही अश्वघोष की छाया ग्रहण की है। काउल साहेब ने अपने सम्पादित बुद्धचरित की भूमिका में अश्वघोष तथा कालिदास के भावों की समता अनेक स्थानोंपर दिखलाई है। अश्वघोष के सम्बन्ध में उनका कथन है कि ये ही कालिदास की कवित्व-प्रभा के प्रवर्तक हैं। कुमार का दर्शन प्राप्त होने पर नगर की रमणियों की व्याकुलता का वर्णन बुद्ध चरित के तृतीय सर्ग के १७-२३वें श्लोक में जिस भाव में किया गया है उसके साथ "रघुवंश" के सप्तम सर्ग के ५-१२वें श्लोक तथा "कुमार सम्भव" के सप्तम सर्ग के समान अनेक श्लोकों की तुलना की जा सकती है। इन अंशों को पढ़ने से प्रायः प्रत्येक व्यक्ति समझ

सकता है कि इन दोनों महाकवियों में से एकने अवश्य दूसरे की छाया ग्रहण की है। किसने किसका अनुकरण किया है इस विषय में जो मतभेद है उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

अश्वघोष की भाषा कालिदास की भाषा के समान मधुर तथा परिमार्जित न होने पर भी सरल तथा स्वाभाविक सौन्दर्य्य से भूषित है। कालिदास के काव्यों के समान बुद्धचरित काव्य प्रायः अलङ्कारों द्वारा सुसज्जित नहीं है। केवल भाषा ही की ओर दृष्टिपात करने से इसकी प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है। भाषा तथा भाव अनेक स्थलों में रामायण के ही अनुसार सरल तथा हृदयग्राही हैं। यथाः—

"नावजानामि विषयाञ्जाने लोकं तदात्मकम्।
अनित्यं तु जगन्मत्वा नात्र मे रमते मनः॥
जराव्याधिश्च मृत्युश्च यदि न स्यादिदं भयम्।
ममापिहि मनोज्ञेषु विषयेषु रतिर्भवेत्॥ ४ स० ४५, ४६

अशुचिर्विकृतश्च जीवलोके वनितानामयमीदृशः स्वभावः।
वसनाभरणैस्तुवञ्च्यमानः पुरुषः स्त्री विषयेषु रागमेति। ४८
भोजनस्य फलस्थस्य न स्यादभिमुखोजनः।
जनी भवति भूयिष्ठं स्वजनोऽपि विपर्य्यये॥
कुलार्थं धार्यते पुत्रः पोषार्थं सेव्यते पिता।
आशयाश्लिष्यति जगन्नास्ति (?) निष्करुणास्वता॥ ६—६, १६
त्यज नरवर शोकंमेहि धैर्य्यं कुधृतिरिवार्हसि धीरनाश्रु भोक्तुम्।
स्रजमिवमृदितमपास्यलक्ष्मीं भुवि बहवोहिनृपा वनान्यभीयः॥ ८—४७
समुद्रवस्त्रामपि गामवाप्य पारं जिगीषन्ति महार्णवस्य।
लोकस्यकामैर्न वितृप्तिरस्ति पश्यद्भिरम्भोरिवार्णवस्य (?)॥ ११ स० १२॥

इसी प्रकार और भी बहुत से श्लोक उद्धृत किये जा सकते हैं। करुणरस की अवतारणा में भी अश्वघोष सिद्धहस्त थे। बुद्धचरित के अष्टम सर्ग में उनकी इस शक्ति का यथेष्ट परिचय प्राप्त होता है। कुमार को वन में छोड़ कर नेत्रों में जल भरे हुए जब

छन्दक लौट आया, उसके प्रति यशोधरा की करुणरस से भरी हुई कटूक्तियाँ कैसी स्वाभाविक हैं !

अनार्यमस्निग्धममित्र कर्म मे नृशंसकृत्वाकिमिहाद्यरोदिषि ।
नियच्छ वाष्पं तव तुष्ट मानसो न संवदत्यश्रुचतश्च कर्म ते ॥
वरं मनुष्यस्य विचक्षणोरिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोग पेशनम् ।
सुहृद्ब्रुवेण ह्यविपश्चिता त्वया कृतः कुलस्यास्य महानुपप्लवः ॥

यशोधरा का विलाप भी बड़ा ही मर्मवेधी है । यथाः—

"अभागिनी यद्यह मायतेक्षणं शुचिस्मितं भर्तु रुदीक्षणं मुखम् ।
समन्द भाग्योऽर्हति वाहुलोऽप्ययं कदाचिदङ्कपरिवर्तितं पितुः ॥"

बुद्धचरित में काव्य की सुन्दरता का अभाव नहीं है । इस काव्य का बारहवाँ सर्ग दार्शनिक आलोचना के कारण कुछ जटिल सा है, किन्तु इसके अतिरिक्त अन्यान्य स्थानों पर दार्शनिक विचार भी सरल भाषा में ही व्यक्त किये गये हैं ।

महाकवि कालिदास कवित्व तथा रचना-चातुर्य में अश्वघोषकी अपेक्षा कहीं बढ़ कर हैं । वास्तव में, केवल भाषा सम्बन्धी तुलना के द्वारा ही कवियों की लघुता तथा गुरुता का निर्णय नहीं किया जा सकता, अतएव कुछ अन्य प्रबल प्रमाणों के द्वारा अश्वघोष की रचना कालिदास के आधार पर समझी जा सकती है । बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत सारदारञ्जन राय ने अपनी सम्पादित "शकुन्तला" की भूमिका में अश्वघोष को कालिदास का परवर्ती निर्णीत किया है । समालोचना के प्रसङ्ग में उन्होंने बुद्धचरित के प्रथम सर्ग के प्रथमांश से—

"भूभृत्पराध्योऽपि सपक्ष एव प्रवृत्तदानोऽपि सदानुपेतः ।"

यह अंश उद्धृत करके कहा है कि इस प्रकार की श्लेषयुक्त रचना उत्तर काल में प्रचलित हुई है । कालिदास के पहले इस प्रकार की रचना की सम्भावना नहीं की जा सकती । मेरा भी इस विषय में यही अनुमान है । किन्तु यह पद्य अश्वघोष का लिखा हुआ नहीं है । काउल साहेब ने स्वयं निर्दिष्ट किया है कि प्रथम सर्ग के आदि के २४ श्लोक तिब्बती और चीनी भाषा के अनुवाद से ज़रा भी

नहीं मिलते, इसके अतिरिक्त इस भाग में बुद्धचरित के मूल भाग की सी भाषा भी नहीं है ? इस अंश में आधुनिक प्रथा के अनुसार कवित्व शक्ति दिखलाने की भी भलीभाँति चेष्टा की गई है। इस अंश में, "दशकुमार-चरित" की पूर्व पीठिका के समान, दूसरे का मिलाया हुआ सा अंश समझने के अनेक कारण हैं।

प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में जो कुछ प्रक्षिप्तांश पाया जाता है वह भी परवर्ती काल की योजना का फल है। इस अंश के द्वारा अश्वघोष की आपेक्षिक प्राचीनता सिद्ध होती है।

कालिदास कभी कभी आमन्त भाग में, (जिन धातुओं के लिट् लकार में आम् लगा कर कृ, अस् तथा भू धातुओं के प्रयोग किये जाते हैं) "आम्" तथा "चकार" इत्यादि अनु प्रयोगों का व्यवधान रखकर क्रिया पद लिखते थे। यथाः—

"तम्पातयाम्प्रथम मास पपात पश्चात्" "संयोजयां विधिवदास समेत बन्धुः।" अश्वघोष ने भी इसी प्रकार "संवर्धयामात्मजव-द्बभूव" लिखा है। इन्द्रध्वज के साथ उपमा दोनों कवियों ने दी है। आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा भास के दोनों ऋणी हैं।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास ने पूर्व कवियों की केवल छाया ही ग्रहण की है इस प्रकार का स्पष्ट अनुकरण प्रायः किसी स्थानपर नहीं किया। इस विषय में काव्यमीमांसा नामक ग्रन्थ के प्रणेता राजशेखर ने लिखा है।

"नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः।
सनन्दति विनावाच्यं यो जानाति निगूहितुम् ॥"

पाठक वृन्द ! अब हम बुद्धचरित के कामविजय के दो स्थलों की आलोचना करेंगे। महाकवि अश्वघोष ने त्रयोदश सर्ग के सोल-हवें श्लोक के आदि के अर्द्ध भाग में लिखा है—

"शैलेन्द्र पुत्रीं प्रति येन विद्धो देवोऽपि शम्भुश्चलितो बभूव।" इसे देखने से अनुमान होता है कि अश्वघोष ने "कुमार सम्भव"

अवश्य देखा था। पार्वतीजी के उद्देश्य से महादेवजी का काम का बाणों द्वारा भेदन करने का किसी भी रामायण-महाभारत इत्यादि ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। कामदेव ने महादेवजी की चित्त वृत्ति विकृत कर दी थी, अतएव उन्होंने क्रुद्ध हो कर हुङ्कार से ही काम को भस्म कर दिया था, यह उपाख्यान रामायण के एक स्थल में बहुत संक्षिप्त रूप में है, उसीको बढ़ा कर महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव नामक महाकाव्य में मदन-दाह की अपूर्व अवतारणा की है। बुद्धचरित में एक श्लोक है—

"कश्चित्ततो रौद्र विवृत्त दृष्टिस्तस्मै गदायुद्धमयांचकार:।
तस्तम्भ बाहु: सगदस्ततोऽस्य पुरन्दरस्येव पुरा सवज्रम् ॥"
१३ स० ३७ श्लोक।

इस पद्य का चतुर्थ पाद पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि ने अवश्य रघुवंश के द्वितीय सर्ग का "जड़ी कृतस्त्र्यम्बक वीक्षणेन बज्रं मुमुक्षन्निव बज्रपाणिः" यह अंश देख कर ऐसी उपमा का उपयोग किया है। यदि यह कहा जाय कि महाभारत के द्रोणपर्व में के संक्षिप्त उपाख्यान के आधार पर इस उपमा का प्रयोग किया गया है तो कालिदास ने ही सब से पहले "त्र्यम्बकवीक्षणेन" पद के द्वारा उसे आलोकित किया है। अश्वघोष का "पुरन्दरस्येव पुरासबज्रः" पढ़ कर महाभारत के उस अप्रसिद्ध उपाख्यान की ओर साधारण पाठकों की दृष्टि नहीं पड़ सकती। मेरा तो जहाँ तक अनुमान है, सब से पहले कालिदास ने ही अपनी उपमा के द्वारा उस उपाख्यान का सर्वसाधारण को परिचय दिया था। अतएव अश्वघोष ने उसकी ओर ज़रासा सङ्केत कर देना ही पर्याप्त समझा। आशा है कि, पण्डित-समाज अश्वघोष तथा कालिदास के सम्बन्ध में कुछ निर्णय करता हुआ मेरी इन बातों पर भी एक बार ध्यान देगा।*

---

* अध्यापक हेमचन्द्र राय एम. ए. द्वारा लिखित बंगला लेख के आधार पर।

हिन्दी-प्रेमियों से दो दो बातें† !!

निबन्ध ! अरे निबन्ध कैसा ? निबन्ध तो मुझे लिखना आता नहीं ! और वह मुझ से निबन्ध लिखने को कहते हैं। बात यह कैसी ठनी !—एक ही बन्धन दुखदायी होता है और यह निबन्ध तो दूना बन्धन है। यह कैसे बन्धन-प्रेमी हैं कि दूसरों को भी फांसना चाहते हैं। नहीं जी ! हम तो स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। हम तो आप के बंधन में पड़ कर निबन्ध नहीं लिखेंगे। हम तो यहां अपने प्रिय हिन्दी-प्रेमियों से दो दो बात ही कहेंगे।

हिन्दी-प्रेमियो ! मैं आप से पूछता हूं कि आप हिन्दी-प्रेमी क्यों हैं ? क्या आप हिन्दी के मुख पर मोहित हो गए हैं ? क्या आप हिन्दी के प्रेम में उन्मत्त हो गए हैं ? यदि आप केवल सिड़ी हैं तो हम आप से एक बात भी करने को तयार नहीं। पागलों से कौन सर मारे ! और यदि आप अपने वा मनुष्य-जाति के लाभार्थ, हिन्दी लिपि को उपयोगी समझ, हिन्दी-प्रेमी हैं तब तो आप बड़े आदरणीय महाशयगण हैं। क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। मैंने आप के बड़प्पन का विचार नहीं किया। मस्ताना राग अलाप दिया। क्षमा कीजिए ! अब शान्त भाव से कुछ निवेदन करूंगा। सच्चे ज्ञानी वा मनुष्य-जाति के शुभचिन्तक ! यह बड़े आनन्द की बात है आप मनुष्य-जाति की भलाई सोच कर एक ऐसी लिपि को फैलाने वा प्रचलित करने का उद्योग कर रहे हैं कि जिन अक्षरों में जो लिखा जाता है वह वैसा ही पढ़ा जाता है। सम्भव है कि हिन्दी अक्षरों को और भी कुछ घटा बढ़ा कर उत्तम बनाया जा सकता है।

परन्तु आज कल की समस्त प्रचलित लिपियों में बिना संदेह हिन्दी लिपि सब से उत्तम है। इस लिए हिन्दी लिपि का प्रचार वास्तव में मनुष्य-जाति सेवा है।

---

† पंजाब प्रांतीय प्रथम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के मन्त्री श्रीजयचंद विद्यालंकार को यह पत्र काबुल से स्वनामधन्य राजा महेन्द्रप्रतापजी ने भेजा था।

—सम्पादक

हिन्दी प्रेमियों ! आप को भारतवर्ष में भी बहुत कार्य करना है। आप को भिन्न-भिन्न प्रान्तिक लिपियों के स्थान में हिन्दी-लिपि का व्यवहार करवाना है। इस कार्य को सफल बनाने और अधिक जन-संख्या की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए आप को सब से पहले यह आवश्यक है कि आप श्री ग्रन्थ साहब को शीघ्र हिन्दी-लिपि में छपवा दें। फिर ऐसे-ऐसे महान् पुरुषों के वाक्यों वा रचनाओं को जैसे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा तिलक महाराज के बंगाली वा मराठी लेखों को हिन्दी-अक्षरों में प्रकाशित करा दें। खूब रही ! दीपक के नीचे अंधेरा ! पञ्जाब की हिन्दी-सभा और हम पञ्जाब के प्रसिद्ध उर्दू कवि डाक्टर इक़बाल को ही भूल गए ! जी हां, इन की उर्दू शाइरी को भी हिन्दी-लिपि में छपवा डालें।

हिन्दी-प्रेमियो ! वह मेरे मन की बात तो रह ही गई। मैं चाहता हूं कि यह हिन्दी-अक्षर तुर्की वा अरब से लेकर चीन जापान तक तो अवश्य ही शीघ्र प्रचलित हो जावें। इस कार्य को भी अपने आप ही करना होगा। यह इतना कठिन नहीं जितना कि आप को प्रतीत होता है। हां, यदि आप केवल कपोल-प्रेमी हैं। अच्छे रहे ! महावरा बिगड़ गया। यदि आप केवल गाल बजाना ही जानते हैं तब तो कुछ न होगा, सब कुछ कठिन है। परन्तु यदि आप वास्तव में हिन्दी-प्रेमी हैं तो शीघ्र प्रसिद्ध-प्रसिद्ध अरबी, तुर्की, ईरानी, अफ़ग़ानी, चीनी, जापानी वा स्यामी अक्षरों को हिन्दी-लिपि में छपवाने का उद्योग कीजिए। और प्रत्येक पुस्तक के आरम्भ में हिन्दी-अक्षर-बोध दूसरे देश की लिपियों के साथ साथ छपवा दें ताकि प्रत्येक देश-निवासी इस हिन्दी-अक्षर-बोध से हिन्दी-लिपि को दो-तीन दिन में सीख ले। और ऐसी पुस्तकें छपवा कर प्रत्येक देश के पण्डितों को भेंट कीजिये। पांच-दश लाख इस यज्ञ में भी स्वाहा कीजिए। आहुति का घी सुगन्ध उत्पन्न करेगा। हिन्दी-लिपि का प्रचार होगा वा अन्तर्जातीय मित्र भाव अवश्य बढ़ेगा।

प्रेमी महेन्द्र प्रताप

३

चन्द्रिका

(श्रीयुत 'ललन')

कर चन्द्र की प्यारी दुलारी सखी,
सिगरी वसुधा पै सुधा बरसावति।
थल पै बिहरै, उछलै जल में,
कल कामिनि-आनन को चमकावति॥
पर, पहो! धनी अभिमानी जनो!
तुम्हरे सम शेखी न व्यर्थ जनावति।
गगनाङ्गन में जो विहार करै,
सोई चांदनी पङ्क को अङ्क लगावति॥

स्थायी समिति का चौथा अधिवेशन

स्थायी समिति का चौथा अधिवेशन मिति ज्येष्ठ शुक्ल ६ सं० १९८१ वि० तदनुसार ता० ८ जून सन् १९२४ ई० को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय, प्रयाग में ४॥ बजे निम्नलिखित सज्जनों की उपस्थिति में हुआः-

१—श्री बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन
२— " पं० भागीरथ प्रसादजी दीक्षित
३— " पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी
४— " पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल
५— " पं० रामजीलालजी शर्मा
६— " चतुर्वेदी पं० द्वारिका प्रसादजी शर्मा
७— " अध्यापक पं० रामरत्नजी
८— " बाबू सङ्गमलालजी अग्रवाल
९— " प्रोफेसर ब्रजराजजी
१०- " पं० लक्ष्मी नारायणजी नागर
११- वियोगी हरिजी

२—पिछले दो अधिवेशनों की कार्रवाई पढ़ी गई और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुई।

३—पं० रामनरेशजी त्रिपाठी प्रचारमन्त्री का, मि० वैशाख कृष्ण १० सं० १९८१ का, त्याग-पत्र पढ़ा गया, तदनन्तर उस पर प्रधानमंत्रीजी का वक्तव्य पढ़ा गया, तथा स्थायी समिति के सदस्यों के आए हुए निम्नलिखित पत्र पढ़े गए—

१—श्री पुत्तनलालजी विद्यार्थी
२— " नन्द कुमार देव शर्मा
३— " राजमणिजी त्रिपाठी
४— " चाँदकरणजी शारदा
५— " रामधारी प्रसाद सिंहजी
६— " हरिहर शर्माजी
७— " हृषीकेशजी शर्मा
८— " बालमुकुन्दजी त्रिपाठी
९— " गङ्गाप्रसादजी अग्निहोत्री

अन्त में, भली भाँति विचार होकर निश्चय हुआ कि पं० राम-नरेशजी त्रिपाठी का, प्रचार मन्त्री के पद से, त्यागपत्र स्वीकार किया जाय। इस मन्तव्य के प्रतिकूल केवल एक ही सम्मति थी।

४—पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल ने प्रस्ताव किया कि नवीन प्रचार मंत्री का चुनाव हो। साथ ही उक्त पद के लिए शुक्लजी ने पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी का नाम उपस्थित किया, और वह स्वीकृत हुआ।

५—कार्यालय के लिए कार्यालय-भवन के उत्तरवाले बरण्डे में दो कमरे बनवाने के लिए २५०) दो सौ पचास रुपये स्वीकृत किए गए।

६—प्रधानमंत्री के प्रस्ताव करने पर नियमानुसार "मङ्गला-प्रसाद पारितोषिक" समिति का संगठन किया गया, और सर्व-सम्मति से निम्नलिखित सज्जन उक्त समिति के सदस्य चुने गयेः—

१—श्री बाबू गोकुलचन्द्रजी
२— " बाबू पुरुषोत्तम दासजी टण्डन
३— " प्रो० व्रजराजजी
४— " पं० रामजी लालजी शर्मा (संयोजक)
५— " पं० इन्द्र नारायणजी द्विवेदी

७—प्रधानमंत्रीजी द्वारा "संग्रहालय-समिति" के संगठन का प्रस्ताव उपस्थित होने पर निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति बनाई गई :—

१—श्री सेठ जमुनालालजी बजाज, वर्धा
२— " बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, काशी
३— " बाबू पुरुषोत्तम दासजी टण्डन, प्रयाग
४—" बाबू राजेन्द्र प्रसादजी, पटना
५—" पं० रामजी लालजी शर्मा (संयोजक), प्रयाग
६—" पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी, कलकत्ता
७—" पं० गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा, अजमेर

८—पं० नरदेवजी शास्त्री का पत्र व तार पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने यह अधिकार मांगा था कि स्थानीय सुविधा के अनुसार वह सम्मेलन के पन्द्रहवें अधिवेशन को देहरादून अथवा हरिद्वार में कर सकें। विचार करने के बाद यह अधिकार पन्द्रहवें अधिवेशन की स्वागत-कारिणी-समिति को दिया गया। और पं० नरदेवजी शास्त्री के प्रस्तावानुसार पन्द्रहवें अधिवेशन के लिए कार्तिक शुक्ल ११, १२, १३ तिथियाँ स्वीकृत की गयीं।

(९) बृहत्संग्रहालय के लिए धन-संग्रह करने के विषय में विचार हुआ। निश्चय हुआ कि यह विषय संग्रहालय-समिति में विचारार्थ उपस्थित हो। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि विशेष कार्यों के लिए जो धन मांगा जाय उसके साथ ही सम्मेलन के खर्च के लिए भी अपील की जाय।

(१०) वियोगीहरिजी ने प्रस्ताव किया कि जिन महानुभावों ने साहित्य-सम्मेलन को एक कालीन ५०) या ५०) से अधिक

आर्थिक सहायता दी हो उन्हें 'सम्मेलन-पत्रिका' बिना मूल्य दी जाय।

सर्व सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और निश्चय हुआ कि नवीन वर्ष से इस मन्तव्य के अनुसार कार्य किया जाय।

(११) बाबू सङ्गमलालजी का वह पत्र, जिसमें उन्होंने 'प्रयाग-महिला-विद्यापीठ' के लिए सम्मेलन से आर्थिक सहायता मांगी थी, पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि बाबू सङ्गमलालजी को लिख दिया जाय कि सम्मेलन को खेद है कि वह इस समय आर्थिक-कृच्छ्रता के कारण 'महिला-विद्यापीठ' को सहायता देने में असमर्थ है।

(१२) भूतपूर्व प्रबन्ध-लेखक मुं० गौरीशङ्करजी की फाइल पेश हुई। निश्चय हुआ कि प्रधानमंत्रीजी के मतानुसार मुं० गौरीशङ्करजी को प्राविडेंड फण्ड का पूरा रुपया दे दिया जाय।

सभापति को धन्यवाद देने के बाद अधिवेशन समाप्त किया गया।

रामजीलाल शर्म्मा
प्रधान मन्त्री

परीक्षा समिति की पहली बैठक

(चैत्र कृष्ण १०, सं० १९८०)

उपस्थिति—प्रो० गोपाल स्वरूपजी भार्गव, पं० रामजीलालजी शर्म्मा, पं० द्वारिका प्रसादजी चतुर्वेदी, पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन।

१—सभापति का आसन श्रीगोपालस्वरूपजी भार्गव ने ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

३—विवरण-पत्रिका के नियम ६५ के अनुसार निम्नलिखित सज्जन परीक्षा-समिति के सदस्य चुने गये—

श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, कलकत्ता,

श्रीयुत प्रो० ईश्वरी प्रसादजी शर्म्मा एम. ए., प्रयाग।

४—पं० राजमणिजी त्रिपाठी, गोरखपुर का पत्र पढ़ा गया और विचारोपरान्त उस पर निश्चय हुआ कि उनका प्रस्ताव नं० ५ आगामी बैठक में उपस्थित किया जाय, और शेष बातों का उत्तर उन्हें परीक्षा मंत्री दे दें।

५—श्रीजगन्नाथ प्रसादजी, विशारद काशीपुर की लिखी "योग" विषय पर सूची उपस्थित हुई, जो निम्नलिखित संशोधन के साथ स्वीकृत हुई—

"इस निबंध में आधुनिक योग सम्बन्धी बातों का भी समावेश होना चाहिये। लेखन-शैली आलोचनात्मक रहे।"

६—श्रीयुत रामभरोसेजी वाजपेई विशारद, गांधीस्कूल फ़र्रुख़ाबाद की "आत्मा" विषयक सूची उपस्थित हुई, और निश्चय हुआ कि "आत्मा के भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का समाज पर प्रभाव और भिन्न सिद्धान्तों के कारण मोक्ष का स्वरूप तथा आत्मा की अन्तिम गति आदि बातों पर भी दृष्टि रखते हुए निबन्ध लिखना चाहिए।"

७—नीचे लिखे हुए सज्जनों को परीक्षा में बैठने का अधिकार दिया गया :—

श्रीमहानन्द त्रिपाठी, श्रीजगदम्बाप्रसाद सिंह, श्रीलादूराम, श्रीसरजूदास, श्रीलेखराज, श्रीदेवीदत्त, श्रीश्रीदेवी, श्रीकन्हैयालाल, श्रीबासुदेव शरण अग्रवाल, श्रीबलवीर नारायण, श्रीटीकाराम शर्मा, श्रीकाशीराम शर्मा, श्रीहरनारायण व्यास, श्रीसदाशिव नाथूराम, श्रीरामकृष्ण सिंह शर्मा, श्रीदुर्गासिंह, श्रीकमला प्रसाद, श्रीज्वाला प्रसाद, श्रीराधामोहनप्रसाद सिंह, श्रीलखनलालसाहु, श्रीभगवती प्रसाद वाजपेयी, श्रीगंगाराम अध्यापक, श्रीदधिबलसिंह क्षत्रिय, श्रीरामदास तिवारी, श्रीसत्यनारायण भगत, श्रीरामचन्द्र गोपाल लोले, श्रीरामसखा शर्मा, श्रीरामरतनलाल, श्रीजगन्नाथ

प्रसाद वर्मा, श्रीकृष्णानन्द त्रिपाठी, श्रीप्यारेलाल, श्रीहेरम्बदत्त शर्म्मा, श्रीविष्णुदत्त, श्रीसीताराम, श्रीरामाधीन त्रिवेदी (प्रचण्ड) श्रीशिवदयाल, श्रीकपिलेश्वर चौधरी, श्रीशिवरत्न काण्डू, श्रीरामनिरंजन पाण्डेय, श्रीचन्द्रनारायणसिंह, श्रीसूर्यनारायणसिंह, श्रीउपेन्द्रनारायणसिंह, श्रीगोवर्द्धनचन्दश्री शर्मा, श्रीरामशरण, श्रीशिवनन्दनप्रसाद, श्रीफ़क़ीरचन्द्र, श्रीबरजोर सिंह, श्रीगोपाल कृष्णव्यास चुरुवाला, श्रीभागवत शर्मा, श्रीकेदारधर, श्रीबेनीमाधवराम, श्रीचक्रधर त्रिपाठी, श्रीकामरूप शर्मा।

८—श्रीशंकर मुकन्दराम दुबे, प्रथमा में अनुत्तीर्ण होने से, मध्यमा में नहीं बैठ सकते।

९—श्रीरत्नचन्द रस्तोगी को लिखा जावे कि शुल्क क्षमा करने का हमारे यहाँ कोई नियम नहीं है।

१०—परीक्षा मन्त्री ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि कुछ दिन के लिए दो ऐसे प्रचारक रखें जावें, जो घूमकर परीक्षाओं का प्रचार करें।

निश्चय हुआ कि उपयुक्त पात्र मिलने पर रखें जांय, और परीक्षा मन्त्री स्वयं भी घूमकर यह कार्य करें तो बहुत अच्छा हो।

सभापतिजी को धन्यवाद दे कर सभा विसर्जित हुई।

रामरत्न
परीक्षामंत्री

परीक्षा समिति की दूसरी बैठक

बैशाख शुक्ला प्रतिपदा, संवत् १९८१

उपस्थिति—पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल वैद्य, पं० रामजीलालजी शर्म्मा, चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसादजी शर्म्मा, बाबू गंगा प्रसादजी, प्रोफेसर ब्रजराजजी, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन।

१—श्री जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया, और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—उत्तमा के लिए आयी हुई निबंध-सूचियां विचारार्थ उप-स्थित की गयीं, और उनपर निम्नलिखित आज्ञाएँ दी गईं—

परीक्षार्थी	विषय	आज्ञा
अ—श्री रघुबरदयाल मिश्र, इटावा	मानस-चन्द्रिका अर्थात् तुलसी और केशव	भाषा, शैली, भाव प्रकाशन पर विचार, दोनों कवियों के धार्मिक विचारों पर प्रकाश, इनको भी सूची में सम्मिलित। करके निबंध लिखिए
आ—श्री शान्ति देवी फ़तहगढ़, फ़र्रुख़ाबाद	तुलसी और सूर की तुलनात्मक समालोचना	फिर से अध्ययन करके अगले वर्ष सूची भेजिए।
इ—श्रीचन्द्रशेखर शर्म्मा, प्रयाग	भागवत धर्म	सूची अधूरी है; विस्तृत होनी चाहिए; उन ग्रन्थों के नामों का भी उल्लेख हो जिनसे मसाला लिया जाय।
ई—कँवर लाल शर्म्मा छीपा बड़ौद (कोटा स्टेट)	(१) हिंदी-साहित्य-सिंहावलोकन	अस्वीकृत
	(२) रसराज-संग्रह	"
उ—श्रीधर विशारद फ़र्रुख़ाबाद	देव और बिहारी	स्वीकृत

ऊ—शम्भूदयाल सक्सेना, फर्रुखाबाद	रामचरितमानस और रामचन्द्रिका	स्वीकृत
क—जगपति चतुर्वेदी, प्रयाग	साहित्य-दुर्दशा	अस्वीकृत
ख—सर्वदेव तिवारी, मेहनगर, आजमगढ़	मलिक मुहम्मद जायसी	तीसरे अध्याय में पद्मावत और अखरावट की आलोचना, एक साथ न होकर, अलग अलग होनी चाहिए, पांचवां और छुठा अध्याय एक साथ मिला देने चाहिये।
ग—गोकुलप्रसाद पाण्डेय, चूरू बीकानेर	हिन्दी-साहित्य	अस्वीकृत

४—मध्यमा में बैठने का अधिकार चाहनेवालों के प्रार्थना-पत्रों पर विचार किया गया। परीक्षार्थी श्रीशङ्कर मुकुन्दराव जी दुबे पुजारी को आज्ञा दी गई कि प्रथमा परीक्षा देकर तब मध्यमा में बैठिये।

परीक्षार्थी श्रीभृगुनाथजी मिश्र को आज्ञा हुई कि अपना प्रमाण पत्र उपस्थित कीजिये। परीक्षार्थी श्रीवैजनाथजी शर्म्मा को अधिकार नहीं दिया गया, उनकी प्रार्थना अस्वीकृत हुई। परीक्षार्थी श्रीमहादेवजी पाण्डेय को आज्ञा हुई, कि वे अपनी योग्यता का पूरा परिचय दें। परीक्षार्थी श्रीशिवचरण लालजी शर्मा की प्रार्थना अस्वीकृत हुई। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित परीक्षार्थियों को मध्यमा परीक्षा देने का अधिकार दिया गया। श्रीरामनाथ, श्री विश्वनाथ मण्डल, पं० राजाराम ज्योतिषी, श्रीगोपालसिंह वर्मा,

श्रीरतनचन्द रस्तोगी, श्रीशंकर मुकुन्दराय दुबे, श्रीलक्ष्मीदत्त शर्मा, श्रीबच्चनलाल सक्सैना, श्रीचन्द्रशेखर उपाध्याय, श्रीभृगुनाथ मिश्र, श्रीजगन्नाथदास, श्रीहरिवल्लभ शुक्ल, श्रीरामदत्त जोशी, श्रीसुरेश्वर पाठक, श्रीचन्द्रशेखरप्रसाद, श्रीवासुदेव झा, श्रीसूर्यनारायण, श्रीमानिकचंद गुप्त, श्रीचन्द्रदेव सिंह, श्रीमोतीलाल, श्रीभैरवलाल, श्री रामदुलारे दुबे, श्रीओंकारनाथ शर्मा, श्रीरामनारायण मिश्र, श्री देवीप्रसाद माथुर, श्रीरामशकल सिंह शर्मा, श्रीप्यारेलाल करौली, श्रीरामलाल शर्मा, पाण्डेय श्रीअमृतलाल चतुर्वेदी।

रामरत्न
परीक्षा मंत्री

प्रचार-समिति का प्रथम अधिवेशन

प्रचार-समिति का प्रथम अधिवेशन बृहस्पतिवार मिति ज्येष्ठ शुक्ल ३ सं० १९८१ [तदनुसार ५ जून १९२४] को सन्ध्या समय ५ बजे सम्मेलन-कार्यालय (प्रयाग) में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

१—श्रीमान बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन
२— " प्रोफेसर ब्रजराजजी
३— " पं० रामजीलालजी, शर्मा
४— " पं० भगीरथ प्रसादजी दीक्षित।

कार्य-विवरण

(१) सर्वसम्मति से श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

(२) मद्रास की हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रचार-समिति के सदस्य श्री सुब्बारावजी का त्यागपत्र और उसीके सम्बन्ध में पं० हरिहर शर्मा का पत्र विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। निश्चय हुआ कि श्री सुब्बारावजी, का त्यागपत्र स्वीकृत कर लिया जाय। साथ

ही यह समिति मद्रास-प्रचार-कार्यालय के व्यवस्थापक की कठि-नाइयों का अनुभव करती हुई भी यह समझती है कि व्यवस्थापक के कुछ कार्य नियमानुकूल नहीं हुए, इसलिए यह उनका ध्यान नियमों की ओर आकर्षित कराती हुई आशा करती है कि भविष्य में वे नियमों के पालन में अधिक दृढ़ता दिखावेंगे।'

(३) कर्नाटक में हिन्दी-प्रचार करने पर विचार किया गया, और श्री रामभरोसे श्रीवास्तव तथा पं० हरिहर शर्मा के पत्र भी पढ़े गए। निश्चय हुआ कि 'इस विषय में पं० हरिहर शर्माजी और देश पाँडे श्री गङ्गाधर रावजी से पत्र भेज कर पूछा जाय कि उनकी सम्मति में कर्नाटक में किस प्रकार प्रचार-कार्य का प्रबन्ध किया जाय कि जिससे वहाँ राष्ट्र-भाषा का प्रचार शीघ्र हो सके। यह भी निश्चय हुआ कि उनका उत्तर आने पर वह पुनः प्रचार-समिति में निश्चयार्थ प्रस्तुत किया जाय।

(४) करौली राज्य में हिन्दी के प्रचार पर विचार उपस्थित हुआ। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह समिति श्रीमान् महा-राज करौली-नरेश का ध्यान 'दिल्ली-सम्मेलन' में स्वीकृत निम्न-लिखित मन्तव्य की ओर आकर्षित करती हुई आशा करती है कि श्रीमान् करौली-नरेश अपनी अधिकांश हिन्दी जाननेवाली प्रजा के सुभीते के विचार से अपने राज्य के समस्त व्यावहारिक कार्यों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी और राष्ट्र-लिपि देवनागरी का प्रयोग करने की आज्ञा प्रचलित कर दें, जिससे आपकी प्रजा को इस विषय में किसी प्रकार की असुविधा न रहे।

दिल्ली-सम्मेलन का तीसरा प्रस्ताव (ख)

'यह सम्मेलन हिन्दी-भाषा-भाषी समस्त राजा, महाराजा, जमींदार, तथा क़ानून-व्यवसायियों से अनुरोध करता है कि वे अपने प्रबन्ध, न्यायालय-सम्बन्धी लिखा-पढ़ी आदि कार्य हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में किया करें।'

(५) आसाम में हिन्दी-प्रचार के कार्य पर विचार उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि श्री टण्डनजी के पास जो आसाम के

प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री फूकनजी का पत्र आया है, उसके अनुसार उनकी सेवा में यहाँ से योग्य प्रचारक भेजने का प्रबन्ध श्रीप्रबन्धमंत्री जी शीघ्र कर दें जिससे आसाम में प्रचार का कार्य शीघ्र होने लगे।

(६) पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें श्रीराजा महेन्द्रप्रतापजी के उस लेख की चर्चा थी जो उन्होंने अफ़गान में देवनागरी लिपि के प्रचार के सम्बन्ध में भारतीय पत्रों में प्रकाशित कराया था।

निश्चय हुआ कि इस विषय में श्री राजा महेन्द्रप्रतापजी से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

प्रधान मंत्रीजी ने मद्रास में प्रचार-कार्यालय के प्रबन्ध की देख-रेख करने और वहां की ठीक-ठीक व्यवस्था का विवरण प्राप्त करने की आवश्यकता प्रकट की।

निश्चय हुआ कि सम्मेलन के प्रबन्धमंत्री श्री पं० द्वारका-प्रसादजी चतुर्वेदी, कार्यालय से एक लेखक को साथ लेकर, मद्रास में शीघ्र जांय, वहां की व्यवस्था डेढ़-दो मास भ्रमण करके जांचें और लौटकर अपनी आवश्यक रिपोर्ट यहां उपस्थित करें।

लक्ष्मीधर बाजपेयी
प्रचार मंत्री

कविवर पंडित विनायकराव

(श्रीयुत पंडित सूरजप्रसाद अवस्थी एम. ए.)

स्वर्गीय कवि नायकजी की अवस्था इस समय लगभग ६८-६९ वर्ष की थी। आपका जन्म पौष शुक्ला १०, सं० १९१२ को सागर में हुआ था। और मृत्यु जबलपुर में ज्येष्ठ शुक्ला १०, गुरुवार सं० १९८१ को हुई।

बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने से आप की शिक्षा दीक्षा आदि का प्रबन्ध आप की माता को करना पड़ा था। आपने

अंगरेज़ी की एफ़. ए. परीक्षा पास की थी। यद्यपि आपको छात्रवृत्ति भी मिली थी, पर कई कारणों के आप आगे न पढ़ सके। आप की स्कूली शिक्षा का यहीं अन्त हो गया। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे।

पढ़ाई का कार्य समाप्त कर आप ने २५) मासिक पर अंगरेज़ी स्कूल में शिक्षकी कर ली थी, और अपनी योग्यता, कार्यकुशलता, तत्परता एवं समय-सूचकता के सहारे आप २२२) मासिक की जगह तक पहुँच गए थे; यद्यपि स्वयं एफ़. ए. थे किन्तु इस प्रान्त के ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूशन के प्रधान पद पर रह कई बी. ए. पास लोगों को आपने पढ़ाया था। अभिप्राय यह कि आपने शिक्षा-विभाग में बड़ी योग्यता से कार्य किया और अच्छा नाम कमाया।

स्वर्गीय कवि नायकजी को हिन्दीभाषा से बड़ा प्रेम था। यह प्रेम आप को कुछ तो स्वाभाविक ही था और कुछ अपनी व्यवसायात्मिका बुद्धि के कारण हो गया था। आपने अब तक कोई १९-२० पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं, जिनमेंसे बहुतसी तो आप ने शिक्षा-विभाग की प्रेरणा से ही प्रस्तुत की थीं जो इस प्रान्त की पाठशालाओं में बहुत समय तक पढ़ाई भी जाती रहीं और जिसके लिए आपको सरकार से पुरस्कार भी मिला, किन्तु रामायण की विनायकी टीका और काव्य-कुसुमाकर की रचना करके आप ने हिन्दी-संसार में जो स्थान प्राप्त किया वह विशेष गौरवास्पद है। आप के इन ग्रंथों की विद्वत्-समाज में खासी प्रतिष्ठा है। सर्वसाधारण भी विनायकी टीका को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। आज भारतवर्ष का विरला ही कोई प्रान्त होगा जहाँ रामायण की विनायकी टीका न पहुँच गई हो। मध्यप्रान्त और युक्तप्रान्त की तो बात ही क्या, बंगाल, मद्रास, बम्बई, गुजरात, पंजाब एवं सीमान्त प्रदेश में भी विजय-वैजयन्ती फहराती हुई वह सुदूर आफ्रिका, इटली, इजिप्ट, जर्मनी तथा अमेरिका तक जा पहुँची है।

आपने यद्यपि फुटकर लेख नहीं लिखे, इसलिए समाचार पत्रों के पाठक भले ही आप से परिचित न हों, तथापि आप ने अपने

समय में, इस प्रान्त में, हिन्दी के उत्कर्ष के लिए जो कुछ किया है वह औरों से किसी प्रकार कम नहीं है। जिस प्रकार आप गद्य-पद्य लिखने में सुचतुर थे, उसी प्रकार सभा-समाजों में भाषण देने का भी आप को अच्छा अभ्यास था। सरकारी नौकरी करते हुए भी आप साहित्यिक सभा-समाजोंमें निर्भीकता के साथ अवश्य भाग लिया करते थे। जबलपुर में ऐसी कोई सभा या ऐसा कोई समाज न होगा जिससे आप का सम्बन्ध न हो, और जिसकी बैठकों या अधिवेशनों में उपस्थित होकर आप भाषण न देते रहे हों। स्थानीय कवि-समाज के तो आप अध्यक्ष ही थे। मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और सम्मेलन-पुस्तकालय के संचालकों में से थे। राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर के साथ भी आप का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा के आप स्थायी सदस्यों में से थे।

यद्यपि इधर वृद्धापकाल में आँखों की ज्योति कम हो जानेसे पठन-पाठन के कार्य में रुकावट आ गई थी, तथापि आप बराबर साहित्य-सेवा के कार्य में लगे रहते थे। कई लेखकों की छोटी-मोटी कृतियों को आपने अपनी ओर से प्रकाशित कराकर उन्हें उत्साहित किया था। देशहितकर कार्यों में भी आप बराबर भाग लेते और उन्हें सामर्थ्यानुरूप आर्थिक सहायता भी दिया करते थे। शिक्षा-प्रसार के आप बड़े पक्षपाती थे। स्थानीय म्युनिसिपल शिक्षासंघ तथा हितकारिणी हाईस्कूल की प्रबन्ध-समिति के आप अन्त तक सदस्य रहे। इतना ही नहीं, सन् १९२०-२१ में जब स्थान-स्थान पर नये-नये विद्यालय स्थापित हो रहे थे, तब जबलपुर में भी बाबू नाथूरामजी मोदी के प्रयत्न से "तिलक महाविद्यालय" की स्थापना हुई थी, यद्यपि यह विद्यालय कई अनिवार्य कारणवश चिरस्थायी न हो सका। यदि चिरस्थायी हो जाता तो जबलपुर में अपने ढंग की वह एकही संस्था होती। अस्तु, स्वर्गीय पंडितजी उक्त विद्यालय को भी अपने अनुभवका लाभ देने के लिए सदा प्रस्तुत रहा करते थे।

जिस प्रकार आप को साहित्य-चर्चा से प्रेम था, और अंगरेज़ी हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, मराठी एवं उर्दू भाषा में आपने योग्यता प्राप्त कर ली थी उसी प्रकार संगीत का भी आप को अच्छा अभ्यास था। तबला आदि बाजों के बजाने में आप सुनिपुण थे। चित्रकला और फ़ोटोग्राफी में भी आपने निपुणता प्राप्त की थी।

स्वभाव आपका बड़ा सरल, मिलनसार और विनोदी था। इस गुण के कारण आपके स्थान पर पंडित-मंडली का बहुधा जमघट्ट जमा ही रहा करता था, और किसी न किसी विषय पर वादानुवाद हुआ करता था। आप के न रहने से शहर में अब ऐसा दूसरा स्थान नहीं रह गया, जहाँ लोग इस तरह स्वच्छन्दरूप से एकत्र हो अपने इच्छित विषयों पर चर्चा करते और सन्देह निवारण कर सन्तुष्ट होते। हाज़िर जवाबी की मात्रा भी आप में ख़ूब थी।

आप के काव्य-ज्ञान पर मुग्ध हो स्थानीय "भानुकवि-समाज" ने आपको 'कविनायक' की पदवीसे विभूषित किया था। साहित्य-ज्ञान पर प्रसन्न हो "सनातनधर्म-महामण्डल" ने 'साहित्य-भूषण' की पदवी प्रदान कर आपको सम्मानित किया था। मध्यप्रान्तीय "बरार-कवि-सम्मेलन" के प्रथम अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये थे। उस समय का आप का भाषण कवि-जनोचित सहृदयता से भरा हुआ था। खेद है, स्वागत-समिति की अकर्मण्यता के कारण वह अब अप्राप्य हो रहा है।

आप के वियोग से इस प्रान्त में साहित्य-क्षेत्र की बड़ी क्षति हुई है। आप की मृत्यु से मध्यप्रान्त का एक रत्न खो गया। परमात्मा आप की आत्मा को मोक्ष, और दुःखी कुटुम्बियों को दुःख सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करे। हम पंडितजी के दुःखी कुटुम्बियों के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। आशा है, उनके सुपुत्र बाबू रामप्रसादजी बी. ए. 'योग्य पिता की योग्य सन्तान' वाली कहावत चरितार्थ करेंगे और अपने कार्यों से स्वर्गीय पंडितजी की उज्ज्वल कीर्तिध्वजा को और भी ऊँचा उठावेंगे।

कविनायक विनायकरावजी का स्वर्गवास !!

सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी विद्या-वयोवृद्ध पंडित विनायकरावजी का, अभी हाल में, स्वर्गवास हो गया है। पंडितजी के इस अचानक वियोग से प्रत्येक हिन्दी-भाषा-सेवी, विशेषतः रामचरितमानस रसिक, का हृदय विदीर्ण हो रहा है। पंडितजी ने रामचरितमानस की विवेचनामयी सारगर्भा सुललित विस्तृत टीका लिख कर हिन्दी-संसार की कितनी भारी सेवा की है यह किसी सहृदय सज्जन से छिपा नहीं। अत्युक्ति न होगी यदि हम यह कहें कि पंडितजी का समस्त जीवन रामचरितमानसमय था। आपके टीका की छाप है। कविता-रत्नों के आप एक ऊँचे जौहरी थे। कठिन से कठिन काव्य-भेदों का सुलझा देना आपके बाएँ हाथ का खेल था। इसके अतिरिक्त आपका जीवन बड़ा ही सरल, भक्तिपूर्ण, शान्त और शिक्षाप्रद था। सच बात तो यह है कि आप साहित्य-मंडल में अपना एक खास स्थान रखते थे।

आपकी तरह प्रशान्त, उदात्त, राम-पद-पद्म-पराग-चंचरीक, मानस-विहारी मराल हमें तो नहीं दिखाई दे रहा है। आप जैसे देदीप्यमान नक्षत्रों का बार बार उदय नहीं होता। आपकी कृति-कौमुदी अजर-अमर होकर हमारे अंधकार आच्छादित हृदयों को सदा आलोकित करेगी, इसमें संदेह नहीं।

हम आपके शोकाकुल कुटुम्बियों के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

साहित्य-समालोचन

कवि-कौमुदी—सचित्र मासिक पत्रिका, सम्पादक श्रीयुत पं० रामनरेश त्रिपाठी—प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर, प्रयाग। डिमाई साइज़, पृष्ठसंख्या ५०, कागज़ छपाई सुन्दर। वार्षिक मूल्य २)

सहृदयवर त्रिपाठीजी ने जिस उद्देश्य से यह होनहार पत्रिका प्रकाशित की है वह बड़ा ही उच्च, आवश्यक और मौलिक है। सम्पादक महोदय इसके द्वारा प्राचीन ब्रज-भाषा की कविता की महत्ता दिखाते हुए वर्तमान खड़ीबोली की कविता को परिष्कृत, उच्च और भावपूर्ण बनाने का उद्योग करेंगे। क्या ही अच्छा हो यदि यह पत्रिका कवि-संसार की क्षुद्र दलबन्दियों का अन्त करके भाव-विहारिणी भगवती भारती की अर्चा करने का श्रेय अपने ऊपर ले।

इसके गद्य-लेखों में खड़ीबोली की कविता, एक कवि का स्वप्न और वियोग-वर्णन शीर्षक लेख सरस और भावमय हैं। कविवर 'हरि औध' रचित 'एक चिरप्रवासी पथिक के मनो-भाव' नामक कविता सचमुच ही हृदय में गुदगुदी पैदा करती है। श्री जयशंकर प्रसादजी की पंक्तियां भी पते की बात बतलाती हैं। समस्या-पूर्तियां, दो चार को छोड़ कर, बहुत ऊँची नहीं हैं। पत्रिका के आदि में 'मुरली मनोहर' नामक श्रीकृष्ण का रंगीन चित्र देखने ही योग्य है। हम हृदय से चाहते हैं कि कवि-कौमुदी अपनी शीतल शांत रश्मि-माला द्वारा नीरस कवि-हृदयों को, सुधासिक्त कर, दिव्य बनाने का सतत उद्योग करे।

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र—अनुवादक और लेखक लाला कन्नोमल एम. ए. जज, प्रकाशक श्रीमोतीलाल बनारसीदास, अध्यक्ष

पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैद मिट्ठा बाजार, लाहौर। डिमाई साइज़, पृष्ठसंख्या ११४, काग़ज़ पुष्ट, छपाई साफ़, सजिल्द मूल्य मदारद !

'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' भारतीय राजनीति और समाजनीति में अपना खास स्थान रखता है। इसमें राजनीति, अर्थशास्त्र, संपत्ति शास्त्र, दंडनीति, धर्मशास्त्र आदि सभी सिद्धांतों पर विवेचनापूर्ण विचार किया गया है। प्रधानतः राजनीति, और गौणरीत्या भारतीय सम्प्रदाय, भौगोलिक विवरण, युगवर्णन आदि पर विचार किया गया है। सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी लाला कन्नोमलजी ने सूत्रों का तत्सम अर्थ लिख कर विशेष टिप्पणियों का तथा परिशिष्ट भाग में धर्म, मत, सम्प्रदाय, भूगोल, युग और मन्वन्तर का विद्वत्तापूर्ण उल्लेख किया है। परिशिष्ट में, चाणक्य-सूत्रोक्त राजनीति की भी प्रसंगवश चर्चा की गई है। पुस्तक सब प्रकार से उपयोगी और पठनीय है। हम इस अमूल्य ग्रंथ के प्रकाशक महोदय को हार्दिक बधाई देते हैं! हमें आशा है कि प्राचीन लुप्तप्राय संस्कृत और प्राकृत साहित्य का प्रकाशन करते हुए अन्य पुस्तक-प्रकाशक-गण आप का अनुकरण करेंगे।

सत्यानंद—लेखक श्रीमान् ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी. ए.; प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१ हरिसनरोड, कलकत्ता; पृष्ठसंख्या २६२, काग़ज़ छपाई सुन्दर; मूल्य १॥)

हिन्दी-पुस्तक-माला का यह नवां पुष्प है। श्रीमान् ठाकुर साहब हिन्दी के एक अच्छे सेवक हैं। आप कई पुस्तकें लिख चुके हैं। यह पुस्तक एक उपदेशपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। धर्म्माडम्बर, पाखंड, जालसाज़ी, अन्याय आदि कुरीतियां समाज को किस तरह कुतर कर छिन्न-भिन्न कर डालती हैं यह इसमें भलीभांति दिखाया गया है। सत्यानन्द का चित्रण दर्शनीय है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

मेघदूत—अनुवादक श्रीयुत केशवप्रसाद मिश्र, प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव (झांसी) पृष्ठसंख्या ४०, काग़ज़ छपाई सुन्दर; मूल्य ।)

मिश्रजी ने खड़ीबोली के पद्यों में कवि-कुल-गुरु कालिदास कृत मेघदूत काव्य का बड़ा ही सुन्दर अनुवाद किया है। दो एक अनुवादों को छोड़ कर यह पद्यानुवाद बड़ा ही सरस हुआ है। न इसमें भाव ही छूटा है, और न शब्दों की कपालक्रिया ही की गई है। उदाहरणस्वरूप एक पद्य उद्धृत किया जाता है—

हाय गई होंगी उसकी वे अँखियां रोते रोते फूल;
गरम उसासें लग कर होगी ओठों की आभा प्रतिकूल।
छिपा हुआ बिखरी अलकोंमें कर पर रक्खा वह मुखचन्द्र;
होगा तेरे घेरघार में पड़कर मलिन इन्दु सा मन्द।

अनुवादक महोदय की लिखी हुई प्रस्तावना भी सरसता, विवेचना और विदग्धतापूर्ण है। मेघदूत के इस पद्यानुवाद को पढ़ कर साहित्य-सेवियों का मनोमुकुल प्रफुल्ल हुए बिना न रहेगा।

रहिमन-शतक*—कुंडलियाकार कविरत्न श्रीयुक्त नवनीत चतुर्वेदी, पृष्ठसंख्या ३४

कविरत्नजी एक वयोवृद्ध साहित्य सेवी हैं। गुदड़ी के छिपे हुए लालों में से एक आप भी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में आप ने कविवर रहीम के १०० दोहों पर कुंडलिया द्वारा प्रकाश डाला है। रहीम के कविता-प्रेमियों को अवश्य ही इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए।

पाप का अन्त—लेखक और प्रकाशक कुँवर ब्रजेन्द्रसिंह क्षत्रिय धौलपुर; पृष्ठसंख्या ८४, काग़ज़ छपाई मामूली, मूल्य ॥=)।

यह एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। पुस्तक के निवेदन में लेखक ने स्वयं ही पुस्तक की काफ़ी तारीफ़ कर दी है! साधारणतः लेखनशैली अच्छी है। आशा है, इस 'मेरी पुस्तक माला' से अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्रकाशित होंगी।

'साहित्यानन्द'

* पोष्टेज भेज देने से यह पुस्तक सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को बिना मूल्य मिलेगी। सम्पादक

प्राप्ति-स्वीकार

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो गयी हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद!

लाला लाजपतराय और जैनधर्म—लेखक पं० हंसराज-जी शास्त्री—प्रकाशक—मंत्री श्रीआत्मानन्दजैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अम्बाला शहर; पृष्ठसंख्या ३८; मूल्य =)

रजस्वला (?) के समय पालन करने योग्य आरोग्यता के नियम—लेखक—व्यास पूनमचन्द तनसुख वैद्य; प्रकाशक—पं० मोहालाल व्यास, ब्यावर (राजपूताना); पृष्ठसंख्या ४३; मूल्य ।)

सम्पादक



हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सूचना

"श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक"

नियमानुसार इस वर्ष 'दर्शन' विषय की सर्वोत्तम मौलिक रचना के लेखक को १२००) का श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक देहरादून में, पन्द्रहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर, प्रदान किया जायगा। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, अध्यात्म विद्या और मनोविज्ञान दर्शन विषय के अन्तर्गत हैं। दर्शन के अन्तर्गत उपर्युक्त विषय के ग्रन्थों की नियमानुसार तीन तीन प्रतियाँ सम्मेलन कार्यालय (प्रयाग) में भेज देनी चाहिएँ। पुस्तकें भेजनेकी अवधि श्रावणी पूर्णिमा सं० १९८१ वि० तक है। इसलिए दर्शन विषय के ग्रन्थों के प्रकाशकों और लेखकों से सविनय प्रार्थना है कि वे अपनी अपनी पुस्तकें अवधि से पूर्व ही भेजने की कृपा करें; हस्तलिखित या अधूरी छपी पुस्तक भेजने का कोई सज्जन कष्ट न उठावें।

निवेदक

रामजीलाल शर्मा

संयोजक

श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति

सूचना

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तार का पता अब रजिस्टर्ड करा लिया गया है। इसलिए तार भेजनेवाले सज्जनों को अब पूरा पता लिखने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ "सम्मेलन प्रयाग" इतना ही लिखना काफ़ी होगा।

प्रबन्ध मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सूचना

सम्मेलन-कार्यालय के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों पर भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के आवेदनपत्र व विवरण पत्रिकाएँ मिलेंगी—

(१) हिन्दी-साहित्य-विद्यालय, आगरा।

(२) हिन्दी-साहित्य-विद्यालय, काशी।

परीक्षा मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सूचना

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के किसी विभाग के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार इत्यादि करते समय अथवा रुपया-पैसा भेजते समय सब सज्जनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर कोई पत्र अथवा रुपया-पैसा न भेजा जाय; बल्कि जिस विभाग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का व्यवहार किया जाय, उस विभाग के मंत्री के पद का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा। नाम लिखने की आवश्यकता नहीं।

प्रबन्ध मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

भाग ११, अङ्क १२; श्रावण १९८१

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)

प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। जो लोग भाद्रपद से लेकर फाल्गुन तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें भाद्रपद से, और जो चैत्र से भाद्रपद तक किसी मास में ग्राहक होते हैं, उन्हें चैत्र से 'पत्रिका' के अंक भेजे जाते हैं। डाकव्यय सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिए और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें-"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र—"प्रचार मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाश करने वा न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

आवश्यक सूचना

६—आज से सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी।

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर, दो आना कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) रुपया सैकड़ा

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ़ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं। अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

संयोजक,

मिती चैत्र कृष्ण १०
सं० १९८०

पुस्तक-प्रकाशन-समिति
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग।

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थरत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला [illegible]ाचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही [illegible]। इसमें प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर लिखाये और प्रकाशित किये जाते हैं। अब तक इस माला में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीररस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव हैं, ओज है और प्राण हैं। परन्तु अधिकांश में वह इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने क्लिष्ट स्थानों पर टिप्पणी दे दी हैं और कठिन शब्दों का अर्थ लिख दिया है। कविता में सूत्र रूप से वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, यदि जातीय ज्योति का प्रकाश जगमगाना हो और यदि साहित्यिक आनन्द लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलङ्कार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल दशक तथा भूषण कवि के फुटकर कवित्तों का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थावली साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में भी स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन कौन से रूप पकड़े, किन किन बाधकों एवं साधकों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान-परिस्थिति क्या है आदि गम्भीर विषयों का पता इसी पुस्तक से भली भाँति लग जाता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १८८, मूल्य ।=)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११ प्रयाग।

३—भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

श्रद्धेय पाठक जी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसाप्लावित न होता होगा ? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक श्री पाठक जी के उन गीतों का संग्रह है जिन्हें उन्होंने समय समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखे हैं। इसकी प्रस्तावना साहित्यमर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

ले०—श्री० मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक जिसकी पृष्ठ संख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग।

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री० 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात रहित सम्मतियाँ दी थीं, कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दी भाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ॥)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवा जी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ संख्या ५४, मूल्य ≡)

७—सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी.
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों क उत्तम उदाह-

रण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्द-र्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदास जी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में स्वीकृत भी है। मूल्य ।)

९—भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ६०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, वह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः हो सकता है। इस इतिहास की आवश्यकता प्रत्येक नवयुवक को होनी चाहिए। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४४८, मूल्य ३)

१०—पद्य-संग्रह

संपादक { श्री व्रजराज एम. ए., बी, एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य ।≡)

११—संक्षिप्त सूरसागर

संपादक—श्री वियोगी हरि

सूरदास जी रचित सूर-सागर से २५० पद-रत्न चुन कर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्रीराधाचरण जी गोस्वामी ने

लिखी है। सागर की थाह लेनी सहज नहीं है। तब उसे पार कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिए लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा पूरा उल्लेख आ गया है। कविता की सुन्दरता भी पर्याप्त रूप से दिखला दी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

१२—विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर बिहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है इसमें शृङ्गार रस के दोहों ही का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना

किसी सङ्कोच के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के परीक्षार्थियों को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य ≡)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है। ब्रजभाषा का कोई भी प्रसिद्ध कवि नहीं छोड़ा गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद टिप्पणी लगा दी गयीं हैं जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गयी है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २०० मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

की

मुख-पत्रिका

भाग ११ } श्रावण, संवत् १६८१ { अङ्क १२

कृष्ण साहब हमारा है

छैल जो छबीला सब रंग में रँगीला बड़ा,

चित्त का अड़ीला तिहूँ देवतों से न्यारा है।

माल गले सोहै, नाक मोती सेत सोहै कान,

कुंडल मन मोहै, लाल मुकुट सीस धारा है॥

दुष्ट जन मारे संतजन रखवारे 'ताज',

चित हित वारे प्रेम प्रीति करवारा है।

नंदजू का प्यारा, जिन कंस को पछारा, वह

वृन्दावन-धारा कृष्ण साहब हमारा है॥

—परम वैष्णवी ताज

हिंडोला

[महात्मा सूरदास]

जमुना पुलिन रच्यो हिँडोर।

घोष-ललना संग तरुनी, तरुन नवल किसोर॥
एक सँग लै मचत मोहत, एक देति झुलाइ।
एक निरखति अंग-माधुरि, एक इक उठि गाइ॥
स्यामसुंदर गोपिका गन रही घेरि बनाय।
मनु जलद को दामिनी गन चहति लेन लुकाय॥
नारि सँग वनवारि गावत, कोकिला छबि थोर।
डुलत भूलत मुकुट सिर पर, मनों नृत्यत मोर॥
सुभग मुख दुहुँ पास कुंडल, निरखि जुवती भोर।
चक्रवाक चकोर लोचन करि रहीं हरि ओर॥
थकित सुरललना सहित नभ निरखि स्याम-बिहार।
हरषि सुमन अपार बरषत, मुखहिं जै जै कार॥
करत मन मन यहै बाँछा, भये न वन द्रुम डार।
देह धरि प्रभु सूर विलसत, ब्रह्म पूरन सार॥

नाचे उसपर श्यामा

(स्वामी विवेकानन्द)

[अनुवादक—श्री पं० सूर्यकांत त्रिपाठी]

फूले फूल सुरभि-व्याकुल, अलि गूँज रहे हैं चारों ओर।
जगतीतल में सकल देवता भरते शशि-मृदुहँसी-हिलोर॥
गन्धमन्दगति मलय-पवन है खोल रही स्मृतियों के द्वार।
ललिततरंग नदी-नद-सरसी, चल-शतदल पर भ्रमर-बिहार॥
दूर गुहा में निर्झरिणी की तान-तरंगों का गुञ्जार।
स्वरमय किसलय-निलय बिहङ्गों के बजते सुहाग के तार॥

तरुण चितेरा अरुण बढ़ाकर स्वर्ण-तूलिका-कर सुकुमार ।
पट-पृथिवी पर रखता है जब, कितने वर्णों का सञ्चार ॥
हो जाता है जगतीतल पर, खिलते कितने राग अपार ।
देख देख भावुक-जन-मन में जगते कितने भाव उदार ॥

गरज रहे हैं मेघ अशनि का गूँजा घोर निनाद-प्रमाद ।
स्वर्ग-धरा-व्यापी संगर की छाया विकट-कटक-उन्माद ॥
अन्धकार उद्‌गीरण करता अन्धकार घन घोर अपार ।
महाप्रलय की वायु सुनाती सांसों में अगणित हुंकार ॥
तिसपर चमक रही है रक्तिम विद्युज्ज्वाला बारम्बार ।
फेनिल लहरें गरज चाहतीं करना गिरि-शिखरों को पार ॥
भीम-घोष-गम्भीर, अतल धँस, टलमल करती धरा अधीर ।
अनल निकलता छेद भूमितल, चूर हो रहे अचल शरीर ॥

हैं सुहावने मन्दिर कितने, नील-सलिल-सर-वीचि-विलास ।
वलयित कुवलय, खेल, खिलाती मलय वनज-वन-यौवन-हास ॥
बढ़ा रहा है अंगूरों का हृदय-रुधिर-प्याले का प्यार ।
फेनशुभ्र-सिर उठे बुलबुले मन्द-मन्द करते गुंजार ॥
बजती है श्रुतिपथ में वीणा, तारों की कोमल झनकार ।
ताल ताल पर चली बढ़ाती ललित वासना का संसार ॥
भावों में क्या जाने कितना व्रज का प्रकट प्रेम-उच्छ्‌वास ।
आंसू बहते, विरह ताप से तप्त गोपिकाओं के श्वास ॥
नीरज-नील नयन, बिम्बाधर जिस युवती के अति सुकुमार ।
उमड़ रहा जिसकी आंखों पर मृदुभावों का पारावार ॥
बढ़ा हाथ दोनों मिलने को बढ़ती, प्रकट प्रेम-अभिसार ।
प्राण-पखेरू, प्रेम-पींजरा; बन्द ! बन्द है उसका द्वार ॥

भेरी झरर झररर् दमामें, घोर नकारों की है चोप।
कड़क कड़क सन्सन् बन्दूकें, अररर अररर अररर तोप॥
धूम—धूम है भीम रणस्थल, शत शत ज्वालामुखियां घोर।
आग उगलतीं दहक दहक दह कँपा रहीं भू-नभ के छोर॥
फटते लगते हैं छाती पर घाती गोले सौ-सौ बार।
उड़ जाते हैं कितने हाथी, कितने घोड़े और सवार॥
थर थर पृथ्वी थर्राती है, लाखों घोड़े कस तैयार।
करते, चढ़ते, बढ़ते-अड़ते झुक पड़ते हैं वीर जझार॥
भेद धूमतल,—अनल, प्रबल दल, चीर गोलियों की बौछार।
धँस गोलों—ओलों में, लाते छीन तोप कर वेंड़ी मार॥
आगे फहराती जाती है ध्वजा वीरता की पहिचान।
झरती धारा-रुधिर दण्ड में, अड़े पड़े पर वीर जवान॥
साथ साथ पैदल-दल चलता, रण-मद-मतवाले सब वीर।
छुटी पताका, गिरा वीर जब, लेता पकड़ अपर रणधीर॥
पटे खेत अगणित लाशों से कटे हजारों वीर जवान।
डटे लाश पर पैर जमाये, हटे न वीर छोड़ मैदान॥

देह चाहता है सुख-सङ्गम, चित्त-विहङ्गम स्वर-मधु-धार।
हँसी-हिंडोले झूल चाहता मन जाना दुख-सागर-पार॥
हिम-शशांक का किरण-अंक-सुख कहो कौन जो देगा छोड़—
तपन-तप्त-मध्याह्न-प्रखरता से नाता जो लेगा जोड़?
चण्ड दिवाकर ही तो भरता शशधर में कर-कोमल प्राण।
किन्तु कलाधर ही को देता सारा विश्व प्रेम-सम्मान॥
सुख के हेतु सभी हैं पागल, दुख पर किस पामर का प्यार।
सुख में है दुख, गरल अमृत में, देखो बता रहा संसार॥
सुख-दुखका यह निरा हलाहल भरा कण्ठ तक, सदा अधीर।
रोते मानव, पर आशा का नहीं छोड़ते चञ्चल चीर॥
रुद्ररूप से सब डरते हैं, देख-देख भरते हैं आह।
मृत्युरूपिणी मुक्तकुन्तला मां की नहीं किसीको चाह॥

उष्णधार उद्गार रुधिर का करतीं है जो बारम्बार।
भीम भुजा की, बीन छीनती वह जङ्गी नंगी तलवार॥

❧❧❧

मृत्यु-स्वरूपे माँ ! है तू ही सत्य-स्वरूपा सत्याधार।
काली ! सुख-वनमाली तेरी माया-छाया का संसार॥
अये कालिके ! मां करालिके ! शीघ्र मर्म का कर उच्छेद।
इस शरीर पर प्रेम भाव, यह सुख-सपना, माया कर भेद॥
तुझे मुण्डमाला पहनाते, फिर भय खाते तकते लोग।
'दयामयी' कह-कह चिल्लाते, मां दुनिया का देखा ढोंग॥
प्राण काँपते अट्टहास सुन, दिगम्बरा का लख उल्लास।
अरे भयातुर, असुर-विजयिनी, कह रह जाता, खाता त्रास॥
मुंह से कहता है, देखेगा, पर माँ, जब आता है काल।
कहां भाग जाता भय खाकर तेरा देख वदन विकराल॥
मां ! तू मृत्यु, घूमती रहती, उत्कट व्याधि रोग बलवान।
भर विष-घड़े, पिलाती है तू घूँट जहर के, लेती प्राण॥
रे उन्मत्त ! भुलाता है तू अपने को, न फिराता दृष्टि।
पीछे भय से, कहीं देख तू—भीमा महाप्रलय की सृष्टि॥
दुख चाहता, बता उसमें क्या भरी नहीं है सुख की प्यास।
तेरी भक्ति और पूजा में चलती स्वार्थ-सिद्धि की सांस॥
छागकण्ठ की रुधिर-धार से सहम रहा तू भ्रम-संचार।
अरे कापुरुष ! बना दया का तू आधार—धन्य व्यवहार !

❧❧❧

फोड़ो वीणा प्रेम-सुधा का पीना छोड़ो, तोड़ो वीर।
दृढ़ आकर्षण है जिसमें उस नारी-माया की जंजीर॥
बढ़ जाओ तुम उदधि-ऊर्मि से गरज गरज गाओ निज गान।
आंसू पीकर जीना, जाये देह, हथेली पर लो जान॥
जागो वीर ! सदा ही सिर पर काट रहा है चक्कर काल।
छोड़ो अपने सपने, भय क्यों ? काटो—काटो यह भ्रमजाल॥

दुःखभार इस भव के ईश्वर जिनके मन्दिर का दृढ़ द्वार।
जलती हुई चिताओं में है, प्रेत-पिशाचों का आगार॥
सदा घोर संग्राम छेड़ना उनकी पूजा के उपचार।
वीर! डराये कभी न; आये अगर पराजय सौ-सौ बार॥
चूरचूर हो स्वार्थ,-साध,-सब मान, हृदय हो महा श्मशान।
नाचे उस पर श्यामा, लेकर घन रण में निज भीम कृपाण॥

हिन्दी-शब्द-शैली कैसी हो ?

(साहित्य-शास्त्री श्रीयुत पं० रामप्रसाद पाण्डेय, विशारद, काव्यतीर्थ)

कुछ लोगों का यह कहना है कि बोली जानेवाली (Living) भाषा, यदि दूसरी भाषाओं के शब्दों को लेकर अपने व्याकरण के अनुसार उनका रूपान्तर कर, उन्हें अपने मूल रूप में मिला ले, तो यह उसकी सजीवता का लक्षण होगा, और यदि वह अपने व्याकरण के नियमों में जकड़े रहने के कारण दूसरी भाषाओं के शब्दों को हज़म करने की ताक़त नहीं रखती तो उसे संस्कृत की भांति मृत भाषा (Dead language) की ही उपाधि मिलेगी। वर्तमान हिन्दी-गद्य में किन किन भाषाओं के शब्द आने चाहिएँ और किन किन के न आने चाहिएँ इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। उदाहरणार्थ, कुछ सम्मतियों का आशय हम नीचे देते हैं:—

(क) कुछ लोगों का कहना है कि भाषा के खिचड़ी होने से उसका मूल रूप नष्ट हो जाता है। अतः अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा में न आने चाहिएँ। संस्कृत के शब्दों को ले हिन्दी व्याकरण के नियमों के अनुसार उनमें विभक्ति प्रत्यय जोड़ कर उनका शुद्ध रूप में ही प्रयोग किया जाय। ये लोग इतने कट्टर हैं कि "पैर" को "पाद", "हाथ" को "हस्त" और "हाथी" को "हस्ती" लिखते ज़रा भी नहीं हिचकते।

"रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका, राकेन्दु विम्बानना,
तन्वंगी कल हांसिनी सुरसिका, क्रीड़ा कला पुत्तली'

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के ऊपर उद्धृत अवतरण में न केवल शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया गया है, वरन् संस्कृत व्याकरण के नियमों का मोह भी उपाध्यायजी ने इसके लिखने में नहीं छोड़ा है। सुन्दर "पुतली" वा "पुतरी" शब्द के लिये "पुत्तली" का प्रयोग ज़रा खटकता सा है। हिन्दी-केशरी आदि पत्रों के प्रतिष्ठित सम्पादक बा० गंगाप्रसादजी गुप्त इस मत के पोषक हैं। आप सुअवसर और स्त्रियोपयोगी न लिखकर स्ववसर, स्त्र्युपयोगी लिखते हैं। आप हिन्दी में पाणिनीय सूत्रों के प्रयोग के सच्चे समर्थक हैं।

(ख) दूसरा पक्ष कहता है कि हिन्दी में अंग्रेजी, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के व्यावहारिक शब्द आने चाहिएँ। इस पक्षवालों को भाषा के खिचड़ी होने की कोई चिन्ता नहीं है। इन लोगों का कहना है कि ऐसा करने से हिन्दी सरल और सुबोध हो जायगी। ये लोग भाषा की विचित्र खिचड़ी पकाते हैं, जिसे पढ़ते ही ग्लानि उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिये हम बनारस ज़िला बोर्ड की नोटिस से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"सर्व साधारण को विदित हो कि निम्नलिखित घाटों का दो बारा नीलाम ब ता० २२ सितंबर १९२३ ब वक्त १२ बजे दिन दफ़्तर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में होगा। अतएव ज़रिये नोटिस हाज़ा इत्तला दी जाती है कि जिसको ठीका लेना मंजूर हो वह तारीख मोअय्यनः पर हाज़िर होकर बोली बोले, और नीलाम खतम होने के बाद ज़र चहारूम दाखिल करना होगा और कबूलियत पट्टा का तकमीला अन्दर तीन दिन कर देना होगा।" "मुअय्यनः" और "तकमीला" का "अतएव" "विदित" के साथ क्या ही अच्छा सम्मेलन है! देशी घोड़ी मरहठी जीन इसे ही कहते हैं।

(ग) तीसरा दल वह है जो संस्कृत के कैसे भी बिगड़े रूप को हिन्दी में प्रयोग करने में ज़रा भी नहीं हिचकता। वह दल "प्रत्यक्ष"

को "परतच्छ" "प्रकट" को "परगट" लिखता है। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के मुख्य हिन्दी अध्यापक, विख्यात विद्वान् बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० भी "पर्याप्त" को "परिआप्त" लिखते हैं। आप सम्भवतः इस तीसरे दल के पोषक हैं।

मेरी राय में ये तीनों मत पल्ले सिरे के extreme हैं। इन तीनों पत्तों की सम्मतियों को मिलाकर यदि एक राय स्थिर की जाय और उसी शैली का प्रयोग सब लोग करें तो थोड़े दिनों में सारी कठिनाइयों का नाश हो एक अति उत्तम सरल सुबोध रूप हिन्दी भाषा का हो जायगा।

हिन्दी के वर्तमान भंडार में जितने शब्द हैं, चाहे वे कहीं से क्यों न आकर हिन्दी भाषा में मिल गये हों, मेरी राय में वे काम चलाने के लिये यथेष्ट हैं। मैं हिन्दी में विशेष रूप से प्राकृत शब्दों का प्रयोग अति उत्तम समझता हूं। "नासिका, अक्षि और कर्ण" के बदले "नाक, आंख, कान" का व्यवहार मेरी राय में अधिक उपयुक्त है। जब तक इस प्रकार के प्राकृत रूपों से हमारा काम चल जाय, तब तक हमें न तो संस्कृत से ही सहायता लेनी चाहिये और न किसी दूसरी भाषा ही से। मेरी इस राय के पोषक भिन्न-भिन्न प्रान्त-निवासी स्वनामधन्य प्राचीन हिन्दी-कवि हैं। संयुक्त प्रान्त निवासी गोस्वामी तुलसीदासजी, पंजाब प्रान्त निवासी गुरुनानक, बंगाल प्रान्त निवासी विद्यापति ठाकुर और महाराष्ट्र प्रान्त निवासी समर्थ स्वामी रामदास ने अपनी-अपनी रचनाओं में इसी मत को पुष्ट किया है। इन सब की भाषा प्रायः एक सी है और अधिक लोगों की समझ में सरलता से आ जाती है। इसका कारण यही है कि वह बनावटी नहीं, प्राकृत है। रामायण में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग होने से वह लोगों की समझ में अधिक आ जाती है। यही सरलता उसकी जनप्रियता का कारण है।

हमें इस बात का भी भली भांति ध्यान रखना चाहिये कि हमारी भाषा में प्रान्तीयता न आने पावे।

अंग्रेज़ी, अरबी और फारसी के कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्हें हिन्दी भाषा ने अपना लिया है। अब उन्हें ग्रामीण से ग्रामीण लोग अच्छी तरह समझ लेते हैं। कहना तो यों चाहिये कि उन्हें हम अपनी मां के दूध के साथ ही पीते हैं। जैसेः—

शाबाश, सिफ़ारिश, चापलूसी, कफन, ज़ुल्म, उम्र, जेब, तहसीलदार, कोट, बूट, लालटेन, टेबुल आदि। मेरी राय में ऐसे शब्दों का व्यवहार जिस प्रकार हिन्दीभाषा में चालू है वैसे ही चलते रहना चाहिये।

"खून" शब्द का पर्यायवाची शब्द "हत्या" हिन्दी में व्यवहार होता है। पर ध्यान रहे कि "खून हो गया" वा "खून कर दिया" कहने में जो मज़ा आता है वह स्वाद "हत्या हो गई" या "हत्या कर दी" में नहीं आता। "खून" क़त्ल (Murder) को कहते हैं। मेरी समझ में, इसका यथार्थ अनुवाद "हत्या" वा "नरवध" नहीं है। बंगाली समाचारपत्रों ने "हत्याकाण्ड" का भी प्रयोग चालू किया है, पर वह भी murder का ठीक-ठीक बोधक नहीं है। मेरी राय में इसका दायरा कुछ बढ़ा हुआ है।

दूसरी भाषा के शब्दों को अपनाने वा न-अपनाने के सम्बन्ध में हिन्दी के पर्याय सम्बन्धी शब्दों का न मिलना भी एक बड़ा विकट प्रश्न है। कोश भी इस सम्बन्ध में हमारी पूरी सहायता नहीं करते। मेरी राय में पहले उनके लिये संस्कृत-साहित्य का द्वार खटखटाना चाहिये, जब वहां भी शब्द न मिलें तो दूसरी भाषाओं की शरण में जाना कुछ बुरा नहीं। जैसेः—"एडिटर" के लिये "सम्पादक", "प्रेस" के लिये "यन्त्रालय" या "छापाखाना" "मैनेजर" के लिये "प्रबन्धकर्ता" "प्रबन्धक" वा "व्यवस्थापक" और "मुहाविरे" के "वाग्व्यवहार" आदि का प्रयोग बहुत ही अच्छा लगता है। नये शब्द, जिन्हें हिन्दी ने अब तक नहीं अपनाया है और जो अन्य भाषाओं से लिये जाते हैं, उन्हें जहां तक सम्भव हो संस्कृत से ही लेना चाहिये। किन्तु ध्यान रहे, यदि रूप परिवर्तित करके

हिन्दी ने उन्हें हज़म कर लिया है, तो उनका वही रूप क़ायम रहना चाहिये। जैसे अंग्रेजी बैटेलियन (Battalian) के लिये हिन्दी पलटन, बोतल (bottle) टैम (time) लम्प (lamp) पिन्सिल (Pencil) लालटेन, डिगरी (decree) इत्यादि।

डिस्ट्रिक्ट और म्युनिस्पल बोर्डों तथा दिवानी और फौजदारी कचहरियों में उर्दू का साम्राज्य होने से फारसी और अरबी के शब्दों का अधिक प्रयोग होता है। मेरी राय में अरबी या फारसी के जो शब्द अधिक प्रयोग में आगये हैं और सरलतापूर्वक समझे जाते हैं उनका प्रयोग होना ठीक है, पर अकारण हिन्दी के सरल शब्दों के होते हुए भी अरबी-फारसी के कठिन शब्दों का हिन्दी में ठूसना उचित नहीं। जैसेः—"मुद्दई, मुद्दाअलेह, गवाह और कब्जा" के स्थान में "वादी, प्रतिवादी, साक्षी और अधिकार" बहुत कम लोग समझ सकेंगे। पहले शब्द विदेशी होते हुए भी अब इतने व्यवहार में आ गये हैं कि बच्चा-बच्चा उन्हें समझ लेता है। पर साथ ही "मज़कूर मुदर्रिसों की तकरुरी लाबुदी है। तारीख मुअइनः पर सायल" ऐसे प्रयोग भी न होने चाहिये।

"ग्रहण और त्याग" ये प्रकृति के स्थिर नियम हैं। ध्यान रहे, जो जाति या भाषा इस प्राकृतिक नियम में बाधा डालने का प्रयत्न करेगी, वह कदापि जीवित न रह सकेगी। हमारे शब्द यदि पुराने हो गये हैं और व्यवहार में नहीं हैं तो हमें उनके स्थान में उदारतापूर्वक नये शब्द दूसरी भाषाओं से लेने में ज़रा भी न पीछे हटना चाहिये।

लिखने की भाषा पर लेखकों के मत का प्रभाव पड़ कर उसके भिन्न-भिन्न रूप हो गये हैं। उर्दू या हिन्दुस्तानी—पश्चिमी हिन्दी का वह रूपान्तर है, जिसे मौलवियों ने अरबी और फारसी के कठिन शब्दों को भर कर ऐसा दुरूह कर दिया कि वह साधारणतया समझ में ही नहीं आती। इधर संस्कृत के विद्वानों ने कठिन संस्कृत के शब्दों को हिन्दी में मिलाकर उसे 'पंडिताऊ हिन्दी" का रूप दे

दिया है। इस सम्बन्ध में इस बात पर भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा इन दोनों ही पक्षों के प्रभाव से बची हुई है। अस्तु, यदि हिन्दी को सरल ही करना है, तो मेरी राय में बोलचाल की भाषा का लिखने में भी प्रयोग होना चाहिये और मौलवी तथा पंडितों के आक्रमण से हिन्दी बेचारी की रक्षा करनी चाहिये।

अन्त में कहना यह है कि कभी-कभी अन्य भाषा के शब्द अथवा वाक्यों के प्रयोग से हिन्दीभाषा चटकीली तथा रसीली हो जाती है। हमें कदापि ऐसे प्रयोग को रोकने का प्रयत्न न करना चाहिये। पर ऐसे प्रयोग भी न होने चाहिये जो खटकनेवाले हों।

प्रेमयोगिनी

[श्री पं० मदनलाल चतुर्वेदी]

आजु श्याम कों खोजन जैहौं।
भसम रमाय हाथ वीणा लै, जोगिन भेष बनैहौं।
ब्रजबन प्रति-बीथिन प्रभात ही नित उठि अलख जगैहौं।
गिरिवर, कल कालिन्दी-कूलन प्रेम-राग गुञैहौं॥
वृन्दावन निधिवन कुंजन की माथे धूरि लगैहौं।
जहँ तहँ रूखन पात पात पै प्रीति-कथा लिखि ऐहौं॥
जौ मिलिहैं तौ अपने जियकी सिगरी व्यथा सुनैहौं।
राग रँग रँगो खोलि करेजो मिहदी लौं दिखरैहौं॥
हिय में बसौ रहौ मो नैननि अनत जान जिन दैहौं।
पैयाँ परि वा ढीठ पिया कौं पटुका पकरि मनैहौं॥
सानि सनेह, बांधि अञ्जन गुन चख-पुतरी करि लैहौं।
भागि न जाय कहूँ तासौं पुनि पलक बन्द करि दैहौं॥

पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का अभिभाषण

ॐ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

माननीय हिन्दी-प्रेमी महानुभावो तथा देवियो,

आरम्भ—पूर्व इसके कि मैं आपका स्वागत करूं उस विश्व-मित्र परम कृपालु परमेश्वर का कोटिशः धन्यवाद करता हूं, कि जिस की कृपा से राष्ट्रीय भाषा (हिन्दी) का सौभाग्य उदय हुआ है और जिस परमात्मा की कृपा से वर्तमान समय के विद्वान् नेता माननीय मालवीयजी तथा महात्मा गांधीजी तक महानुभावों ने हिन्दी प्रचार में प्रयत्न किया है। ऐसे महानुभावों का भी धन्यवाद करना आवश्यक है कि जिन के सतत परिश्रम से यह हिन्दी क्रमशः उन्नति के शिखर पर चढ़ती हुई अब बाल सूर्य के समान विश्व भर में अपना प्रकाश कर रही है, जिस की किरणें इस प्रह्लाद-पुरी भूमि में भी पहुंची हुई हैं।

प्रह्लादपुरी (मुलतान) निवासी जनता का यह परम सौभाग्य है कि मुलतान में "पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन" का प्रथमोत्सव हो रहा है। इस में जो कार्य्यभार मुझे दिया गया है, मैं इस के योग्य नहीं था; किन्तु सभा की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझ कर सेवा करने को उद्यत हुआ हूं। आशा है कि विज्ञजन मेरी त्रुटियों का अनुभव न करते हुए केवल "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" पर ही संतोष करेंगे।

स्वागत—मैं समिति की ओर से पञ्जाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन तथा आगत महानुभाव प्रतिनिधियों का हृदय से स्वागत करता हूं। आपने इस प्रह्लादनगरी में पधार कर हम सब को अनुगृहीत किया है। सम्मेलन के यहां पधारने से अवश्य हिन्दी प्रचार में वृद्धि होगी यह मुझे दृढ़ विश्वास है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अर्थ—यद्यपि उक्त संज्ञा का अर्थ करना मानो हिन्दी के विद्वानों की अनभिज्ञता प्रकट करना और अपनी धृष्टता दिखाना है! तथापि अपरिचित हिन्दीप्रेमी भाइयों के लिए इस का सुलभार्थ कर देना अनुचित न होगा। इस का स्थूलार्थ यह है कि "हिन्दी-साहित्य के लिए सम्मिलित होना" और इसका भावार्थ यह है कि हिन्दीसम्बन्धी यावत् कार्य्य जैसे कि हिन्दी-प्रचार, देवनागरी-लिपि-प्रचार, हिन्दी में मौलिक ग्रन्थों का निर्माण हिन्दी प्रचारार्थ सरल उपाय, हिन्दी भाषा और लिपि को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि बनाना, अन्य भाषाओं के उत्तम साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करना, भाषा सम्बन्धी त्रुटियों का संशोधन, जीर्ण ग्रंथों का उद्धार इत्यादि इत्यादि हैं। इन सब को उन्नतावस्था पर लाने के लिये हिन्दीप्रेमियों और हिन्दीपंडितों का सम्मिलित होना ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अर्थ है। इस अर्थ के लिखने का प्रयोजन यह है कि हिन्दीप्रेमियों को इन सब कार्य्यों की उन्नति करने में ही हिन्दी-प्रेम का परिचय देना चाहिये। अस्तु।

मुलतान में हिन्दी-प्रचार और साहित्य-वृद्धि

सम्मेलन के कार्य्य में प्रथम मुलतान में हिन्दी प्रचार का परिचय देना आवश्यक है। प्रायः २५ वर्ष पूर्व यहां जितना हिन्दीभाषा का प्रचार था, वर्तमान में प्रायः १० गुणा अधिक है। उस समय ब्राह्मण जाति में अवश्य संस्कृत विद्या का प्रौढ़ प्रचार था, वर्तमान शास्त्री विशारदों से उस समय के विद्वान् परिपक्वबुद्धि और शास्त्रमर्मज्ञ थे, उस समय सनातनधर्मी विद्वानों की कई शालाएं भी थीं जिन में श्रीयुत माननीय पं० राम बाबाजी तथा श्रीयुत पंडित आशानन्द जी काष्ठपाल की स्वतंत्र पाठशालाएं उल्लेख योग्य हैं जिनमें अनेक विद्यार्थी संस्कृत विद्या की उच्च शिक्षा पाते थे। किन्तु सर्वसाधारण में हिन्दी-प्रचार का प्रायः अभाव था। समय परिवर्तनशील है। स्वर्गीय ला० चेतनानन्दजी तथा ला० मोतीरामजी वकील के

उद्योग से ए-एस. हाईस्कूल खुला, जिसमें संस्कृत-हिन्दी के लिये एक विशेष श्रेणी खोली गई।

फिर श्रीसनातनधर्म सभा के अधिकारियों तथा श्री श्री पण्डित देवराजजी शास्त्री के उद्योग से संस्कृत-पाठशालाओं का विशेष प्रबन्ध हुआ। फिर श्रीयुत पण्डित नरोत्तमदत्तजी के उद्योग से श्री सदाचार्य्याश्रम की स्थापना हुई, एवं आर्य्यसमाज के प्रबन्ध से गुरुकुल तथा अन्यान्य महानुभावों के प्रयत्न से श्रीश्रेष्ठाचार्य्याश्रम विद्यालय, हिन्दी पञ्चायती स्कूल आदि संस्थाओं ने हिन्दी-प्रचार में प्रयत्न किया। हिन्दी-प्रचार के साथ ही साहित्य-वृद्धि का उल्लेख भी अनिवार्य्य है। स्वर्गीय प्रतिष्ठित विद्वान् महामहोपाध्याय श्री पं० ठाकुरदत्तजी ने 'भुवनेश लौकिक न्याय साहस्री' नामक ग्रन्थ बना कर संस्कृत को अलंकृत किया। स्वनामधन्य गो० घनश्यामजी ने गृह्यचिकित्सादि लिख कर हिन्दीसाहित्य को सुशोभित किया है। आप वर्तमान में अष्टाध्यायी पर एक सुगम व्याख्या कर रहे हैं। स्वर्गीय पं० चान्दालालजी विशारद ने राम नाटक, महाभारतादि रच कर हिन्दी का उपकार किया है। स्वर्गीय गो० लीलाधरजी ने हिन्दी में वेदान्त-चन्द्रिका नामक कविता-ग्रन्थ लिख कर हिन्दी की शोभा बढ़ाई। श्री पं० द्वारकानाथजी शास्त्री ने न्याय प्रश्नोत्तर संग्रह रच कर साहित्य को एक रत्न दिया है। स्वर्गीय आत्मारामात्मज वल्लभदासजी वर्मा ने हिन्दी में नाटक, उपन्यास, आदि अनेक ग्रन्थ रच कर हिन्दी का पुनरुद्धार करने में अपना अधिक समय दिया है। हिन्दी के प्रेमी वर्त्तमान स्वागत समिति के मंत्री म० गोपालजी ने आज से प्रायः ८ वर्ष पूर्व हितकारी नामक मासिक पत्र का सम्पादन करते हुए हिन्दी की सेवा की। यह पत्र धनक्षति के कारण एक वर्ष में ही बन्द हो गया। हितकारी नाम को विस्मरण न करते हुए पूर्वोक्त महाशय के प्रयत्न से हितकारी-पुस्तकालय का उद्घाटन हुआ, और साथ ही श्री सनातन धर्म कुमार सभा का प्रह्लाद-पुस्तकालय खुला। इन से पूर्व के आर्य्य

समाज, जैन समाज आदि पुस्तकालयों द्वारा भी हिन्दी-साहित्य की रक्षा तथा वृद्धि हो रही है।

हिन्दी-प्रचार में बाधा—यद्यपि हिन्दी के प्रेमी हिन्दी प्रचार का यत्न करते हैं, किन्तु इस में एक विशेष बाधा हर समय उपस्थित रहती है। वह बाधा है "आजीविका" की। अर्थात् आजीविका के लिये हिन्दी को छोड़ कर सर्वसाधारण की प्रवृत्ति अन्य भाषाओं की ओर हो रही है। वर्तमान समय की व्यापक भाषा हिन्दी न होने के कारण अन्य भाषाओं की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक भी है। न्यायालयों। में राज-कार्य्य, पत्रव्यवहार में इस समय अन्य भाषाओं की आवश्यकता बनी हुई है। इसलिए सर्व साधारण हिन्दी के लिये यत्न भी नहीं करते। यह बाधा तब तक दूर न होगी जब तक हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को व्यापक रूप न दिया जाय। यह तभी होगा, जब हम अपने निज के व्यवहार अर्थात् बहीखाता, पत्रव्यवहार, विवाहादि सब प्रकार के उत्सवों तथा अन्यान्य कार्य्यों में हिन्दीभाषा देवनागरी लिपि का प्रयोग करें, विशेषतया शिक्षा विभाग में हिन्दी को माध्यम बनाने की आवश्यकता है।

हिन्दी की पूर्णता—यद्यपि समयानुसार भाषाओं के संशोधन की आवश्यकता बनी रहती है, तथापि देवनागरी लिपि सर्वाङ्गपूर्ण है, इसमें किसी को सन्देह नहीं। वर्त्तमान समय लंडे अक्षर जिनकी कोई मात्रा नहीं है, नागरी लिपि ही तो हैं। विद्याभ्यास न होने तथा आलस्य के कारण ऊपर की लकीर छोड़ दी जाने लगी और क्रमशः उसका रूप भी बदलता गया। फल यह हुआ कि प्रायः दस कोस के अन्तर में भिन्न भिन्न अक्षरों ने भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिया। यदि वर्त्तमान के लंडे अक्षरों को कोई मुनीम सीखना चाहे तो आयु भर में नहीं सीख सकता। यह दोष केवल ऊपर के कारणों से अर्थात् अविद्या और आलस्य से उत्पन्न हुआ। जिसका फल यह निकला कि आज तीस करोड़ हिन्दुस्तानियों की कोई एक भाषा न रही। इससे न केवल मातृभाषा का अपमान हुआ,

बरन् समस्त जाति की प्रतिष्ठा भंग हुई। जो लोग हिन्दी भाषा लिखने में यह दोष लगाते हैं कि हिन्दी लिखने में अधिक समय लगता है और जिनका यह विचार है कि हिन्दी अधिक स्थान लेती है केवल भ्रम है। यह सब अभ्यास पर ही निर्भर है।

हिन्दी की मौलिकता—प्राचीनता की खोज करनेवाले निष्पक्ष पंडितों ने यह एक मत से मान लिया है कि प्राचीनतम काल में संसार भर में एक संस्कृत भाषा थी जिसके रूप अब भी दुनिया की भिन्न भिन्न भाषाओं में कुछ बदले हुए मिलते हैं। जैसे यू=यूयम्। वी=वयम्। कौ=गौः। ब्रदर=भ्रातृ इत्यादि एवं, फ़ारसी शब्द दस्त=हस्त। सर=शिरः। अब्र=अभ्र। अंगुस्त=अंगुष्ठ इत्यादि। पञ्जाब में पञ्जाबी हिन्दी, गुजरात में गुजराती हिन्दी, सिन्ध में सिन्धी हिन्दी, बङ्गाल में बङ्गाली हिन्दी बन गई। इन सभी भाषाओं में से संस्कृत के शब्द विदेशी भाषाओं में मिलते हैं, और मिलने भी चाहिए। शुद्ध हिन्दी से इन प्रान्तीय हिन्दियों का इतना ही भेद रहा है। जैसे मुलतानी हिन्दी से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मुलतानी हिन्दी	परिमार्जित हिन्दी
मैं तेकूँ क्या जाणदा हां	मैं तुम को क्या जानता हूँ।
तूँ मेड़ा क्या कर सकदैं।	तू मेरा क्या कर सकता है।
अज्ज तेड़ा पिऊ किथ गे।	आज तेरा पिता कहां गया।
कुझ त मेकूँ वी ड्यौ।	कुछ तो मुझ को भी दो।

यही हाल बाकी प्रान्तीय हिन्दयों का भी समझिए। यदि मुलतानी हिन्दी-शब्दों का विवेचन किया जायगा, तो वे परिमार्जित हिन्दी से भी संस्कृत के समीप होंगे। जैसेः—

संस्कृत	मुलतानी	हिन्दी
दत्तः, कृतः	दित्ता, कीता	दिया
गृहीतः, लब्धः	गिद्धाः, लद्धा	लिया
श्रुतः	सुआ	सुना
अक्षिकर्ण	अख कन्न	आंखकान
त्रयः	त्रय	तीन

संस्कृत	मुलतानी	हिन्दी
बहु	बहुं	बहुत
किं करवाणि	कि करावां	क्या करूँ
मंस्ये	मनेसां	मानूँगा
करिष्ये	करेसां	करूँगा
गृहाण	घिन	ले
रक्त	रत्त	लहू
कति	कित्ती	कितने

ऐसे अनेक शब्द हैं जो विस्तार-भय से नहीं लिखे जाते हैं। इन सब विवेचनाओं के बाद हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि हिन्दी भाषा निर्मूल नहीं। अतः इसके प्रचार से अवश्य हमारी मातृभाषा का प्रचार होगा। अन्त में, मैं मुलतान-निवासी हिन्दी-प्रेमियों की ओर से फिर आप का स्वागत करता हूं और आशा रखता हूं कि इन दो दिनों में आप मुलतान-निवासियों पर ऐसा प्रभाव डाल जांयगे जिस से मातृभाषा का सिक्का मुलतान-निवासियों के हृदयों पर जम जावे। आप हम लोगों की त्रुटियों और भूलों पर दृष्टि न दीजिएगा। उन्हें क्षंतव्य समझ कर आप इस ऊंचे मातृभाषा के व्रत को पूरा कराने में हमारा हाथ बटाइएगा।

मुझे विश्वास है कि, जगद्धात्री के आशीर्वाद से हमारा मनोरथ सिद्ध होगा।

चूड़ामणि शास्त्री

पावस-प्रमोद

[श्रीयुक्त भवँर शिवसिंह]

(१)

घहरि घहरि घन आये चारों ओर घिरि,
छहरि छहरि वारि बूँदें बरसावै है।
झिल्ली झनकारनि पपय्या पीउ पीउ करै,
मोरन के सोरन तैं जीय अकुलावै है॥
चंचला चमंकै चारों ओर अचरज भरी,
दादुर रटन हाय! हीय धरकावै है।
प्यारे घनश्याम बिनु बैरी घनश्याम मोहिं,
अति बिकलावैं चित थिर ना रहावै है॥

(२)

[श्रीयुक्त युगलकिशोर मिश्र, "किशोर"]

भारे घन कारे केस धारे छहरारे चारु,
चंचला चमंक सोई चख चपलाई है।
भाल में गुलाल लाल राजत बधूटी-बिन्दु,
सारी सुखकारी हरियारी छबि छाई है॥
झिल्ली झनकार झाँझ जोर सों 'किशोर' होत,
कोकिलादि गान भोर सोर सों बधाई है।
आवन सुनि सावन मनभावन को बेगि भौन,
देखौ बरसात आजु बाला बनि आई है॥१।

(३)

जानिये न कारे घन, ये हैं बिथुरारे केस,
तरप करेजे सो चमंक चपला की है।
राजती न लाल लाल भूमि पै बधूटी बीर,
बेंदिहू उतारि डारि दीन ये दसा की है॥

छाजती हर्‌यारी नाहिं, छहर छरा को छोर,
मोर को 'किसोर' सोर कहर कसाकी है।
नैन नीर धार सों अपार झर लाये मेघ,
बिरही गुहार ये बहार बरसा की है॥

(४)

घेरि घन घोर की गराज सों गिराई गाज,
दामिनी दुधार दौरि खरग चलाई रे।
जोरि जोरि जुगुनू जराय गात गारे हाय,
बेधि बुन्द बान सों अमान झर लाई रे॥
कहत 'किसोर' केकी कोकिला बुलाय लाये,
झींगुर झंगार चातकादि जे कसाई रे।
साजिये समान अबलानि सों लराई ठान,
मघवा महान तोहिं लाज हू न आई रे॥

हिन्दी-प्रचार-निरीक्षण-सम्बन्धी दक्षिण-यात्रा

मेरी निरीक्षण-सम्बन्धी यात्रा का आरम्भ १९ पौष (सौर) अर्थात् ३ जनवरी २४ को हुआ और इस लम्बी यात्रा को मैंने ३ फाल्गुन अर्थात् १५ फरवरी को समाप्त किया। इस यात्रा में मैंने मदरास, बैजवाड़ा, बंगलोर और रामेश्वरम् को छोड़ कहीं भी पूरे चौबीस घंटे का विश्राम नहीं किया। बराबर यात्रा में रहा। सबेरे कहीं, शाम को कहीं, दोपहर को कहीं और रात को प्रायः रेल की सवारी में। इस तरह सोने का सुभीता बहुत कम मिलता था। तीसरे दर्जे में अकसर बड़ी कठिनाई से गंदी जगह में बेंचों के नीचे हम लोगों को सोने का मौका मिला। दो तीन बार लाचार हो मैंने सेकंड क्लास का टिकट लिया कि सो सकूं। बोलते-बोलते गला ऐसा बिगड़ गया

था कि रामेश्वरम् के डाक्टर ने बोलना बन्द कर देने की सलाह दी। परन्तु लाचार था। श्रोषधि के बल गले से अन्ततक काम लेना ही पड़ा। परिणाम यह हुआ कि लगातार तीन मास तक स्वर-यंत्र बेकार रहा। एक मास तक मौनव्रत करना पड़ा। इस यात्रा में मैंने आंध्र प्रान्त, तामिल प्रान्त और केरल प्रान्त देखा। अस्वस्थ हो जाने से कर्णाटक न जा सका। वहाँ प्रचार का काम भी शुरू नहीं हुआ था। वहां कई प्रचारक भिजवाये और काम आरम्भ कराया।

(२) पिछले रिपोर्टों से काम की जितनी मात्रा बतायी जाती है, उसमें अत्युक्ति नहीं है। पहले तो अपना अपूर्व स्वागत और अनेक अभिनन्दन-पत्रों को देख कर मुझे सन्देह हुआ कि प्रचारकों ने इन प्रदर्शनों का विशेष प्रबन्ध किया है, वस्तुतः हिन्दी भाषा से उतना प्रेम और उत्साह न होगा जितना दिखाया जाता है। परन्तु मैं ऐसे स्थानों में भी गया, जहां का जाना मेरे पूर्व निश्चित क्रम में न था, जिसके लिये पूर्व सूचना न थी, जिसमें मेरे साथ कोई प्रचारक न था—और वहां भी मैंने शुद्ध हिन्दी-प्रेम और सीखने में उत्साह पाया। मुझे स्टेशनों पर और रास्तों में भी ऐसे लोग मिले जो किसी प्रचारक द्वारा प्रेरित होकर नहीं, वरन स्वयम्भूत उत्साह से हिन्दी पढ़ रहे थे। गाड़ियों में यात्री मिले, जिनके पास हिन्दी पढ़ने के साधन थे। लोग पूछते थे कि कैसे पढ़ें। चाहते थे कि उनके गावों में प्रचारक जायँ। विरोध से भी मैं अप्रत्यक्ष रीत्या प्रचार के आधिक्य की अटकल करता हूं। तमिल प्रान्तों में इसके विरोधी हैं, क्योंकि इसे संस्कृत का ही एक रूपान्तर मानते हैं और आदि द्रविड़ों को संस्कृत और आर्य्य संस्कृति का विरोध है। यह बात स्पष्ट रूप से श्री १०८ तिरुवानमा मलइ रामानुजाचार्य्य ने स्वयं मुझे समझायी। त० गणपति शर्म्मा से भी यही बात मलूम हुई। डा० वरद राजुलु नायडू ने तो यहां तक कह डाला कि उर्दू अक्षर और अर्बी-मिश्रित भाषा द्रविड़ों के लिये हिन्दी की अपेक्षा अधिक सुगम है! इन विरोधों से मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि

हिन्दी का प्रचार कुछ ज़ोर बांध रहा है। यही देख कर कट्टर तामिल भाषी भ्रमवश इसका विरोध कर रहे हैं। भ्रम निवारणार्थ मैंने हर जगह इस बात पर ज़ोर दिया कि अपने प्रान्त की भाषा का स्थान पहला है, राष्ट्रभाषा का दूसरा। प्रान्त की भाषा नष्ट करके राष्ट्र-भाषा का प्रचार करना सम्मेलन का उद्देश्य नहीं है।

(३) मदरास, वेजवाड़ा और त्रिचिनापल्ली इन तीन कार्य्यालयों में मैंने हिसाब जांचना चाहा, परन्तु मेरे रहते तक जांच के लिये कोई कार्य्यालय तय्यार न था और न हो सका। बैजवाड़े और मदरास की जांच जितनी कर सका उससे मैंने यही परिणाम निकाला कि कार्य्यालयवालों में हिसाब रखने के ढंग की कमी है।

स्टाक बुक कहीं भी नहीं रखा जाता। इसकी बड़ी जरूरत है। सम्मेलन को चाहिये कि इसका रखना अनिवार्य्य कर दे।

पुरजे (वौचर) सभी प्रयाग आ जाने से वहाँ के लेखें की सत्यता की जांच नहीं हो सकती। असली पुरजे भेजना ज़रूरी है। पर उसकी प्रामाणिक नकल यदि प्रयाग से भेज दी जाया करे तो हिसाब की जांच में सुभीता हो सकता है। प्रयाग-कार्य्यालय का काम अवश्य बढ़ जायगा। अथवा कोई लेखापरीक्षक—लेखा-मात्र जांचने को—यहां से पुरजे आदि लेकर जाया करे और वार्षिक जांच किया करे।

कांग्रेस के नाम से अनेक लोग भागते हैं और प्रचार का काम प्रायः वही कर रहे हैं जिनका कांग्रेस से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लक्षण यह दीखते हैं कि अर्थाभाव से लाचार हो हम यह काम जल्द ही कांग्रेस को सौंप देंगे। परन्तु भरसक सम्मेलन को यह काम अपने हाथों में रखने में ही श्रेय है। और जैसा काम अबतक होता आया है, उससे ही प्रचार यथेष्ट हो सकता है। कांग्रेस से आर्थिक सहायता अवश्य लेनी चाहिये। यह अनिवार्य्य है।

हमारे प्रचारक बहुधा अध्यापक-समुदाय से सहायता ले रहे हैं। एक शिक्षक को हिन्दी शिक्षा देने और हिन्दीभक्त

बना देने का अर्थ है एक बड़े भारी हिन्दी-प्रचारक को तैयार करना। वह जितने छात्रों को पढ़ावेगा सब में राष्ट्रभाषा-प्रेम का संस्कार उत्पन्न करेगा। कई स्कूलों में यही बात देखी गयी। इस-पर मुझे यह विश्वास हो गया कि "प्रचार मंत्री का यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये कि सम्मेलन के साथ ही साथ एक अध्यापक-सम्मेलन भी किया करें।" हिन्दीभाषा-भाषी प्रान्तों में भी हिन्दी-अध्यापन की दशा अच्छी नहीं है। और जगहों की तो कहना क्या है! अध्यापक सम्मेलन के प्रधानतः तीन विषय होने चाहिये—(१) भाषा-साहित्य (२) भाषा-माध्यम और (३) राष्ट्रभाषा। हिन्दीभाषी प्रान्तीय अध्यापक विशेष रूप से पहली दो बातों पर, और अन्य प्रान्तीय अध्यापक तीसरी बात पर विशेष ध्यान दें तो सम्मेलन का काम बहुत ही सरल हो जाय। राष्ट्रिय शिक्षण-विधि भी उसका विषय हो, परन्तु उसे गौण स्थान देने से काम चल जायगा। दक्षिण के अध्यापकों में हिन्दी का प्रचार हो जाय और उनका संगठन हमारा काम उठा ले तो हमारे प्रचार के काम में अपरिमित सफलता की संभावना है।

(४) तीर्थों में और मुसल्मानों में पहलेसे हिन्दी का प्रचार है। परन्तु प्रचारकों की कमी न हो तो इनमें भी काम करने की आवश्यकता है। नागरी-लिपि का प्रचार इन स्थानों में मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। यदि द्रविड़ भाषाओं के लिखने का माध्यम यही लिपि न बनायी जाय तो संस्कृत के लिये इसका प्रचार आवश्यक कर देने से हमारे काम में बहुत सौकार्य्य संभव है।

(५) सब बातों पर विचार करके मैं यह मुक्तकंठ से कह सकता हूँ कि प्रचारकों का कार्य्य सन्तोषजनक है और उसमें जितनी आर्थिक सहायता की गयी है उसका दुरुपयोग नहीं हुआ है।

श्री काशी
—४—८१

रामदास गौड़

बाबा दीनदयाल गिरि की कुछ सूक्तियां

[श्री पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, विशारद]

बाबा दीनदयाल गिरि का स्थान हिन्दी-साहित्य में बहुत ऊँचा है । इनकी सम्पूर्ण कविताओं के मनन से ज्ञात हुआ है कि गिरिजी एक उत्तम कवि थे। "मिश्र बन्धुओं" के कक्षा-विभाग में तो इन्हें प्रथम श्रेणी का ही कवि मानना पड़ेगा । इनकी सम्पूर्ण कविता में सूक्तियों का अधिकांश है । शिथिल कविता बहुत थोड़ी है । इनका अनुरागबाग और अन्योक्ति-कल्पद्रुम दर्शनीय हैं। मेरे विचार में गिरिजी की कविता 'पद्माकर' तथा 'द्विजदेव' आदि कवियों से ऊँची है । क्योंकि इन कवियों ने अनुप्रास के पीछे भाव का त्याग दिया है, पर बाबा जी ने ऐसा नहीं किया है। जो आनुप्रासिक शब्द भाव को प्रदर्शित करते हुए आ गये हैं, उन्हें इन्होंने सहर्ष स्वीकार किया है, अन्य सभी प्रकार के आनुप्रासिक शब्दों का त्याग ही इन्हें इष्ट था। नीचे इनकी सूक्तियों से चुने हुए कुछ उदाहरण देकर मैं अपनी बात के पुष्ट करने का प्रयत्न करूंगा ।

सुकवि और माली का रूपक बाँधते हुए गिरिजी क्या ही पते की बात बतलाते हैं ! देखिये—

कवित्त

मूरुख मतंग ढिग आवन न देत क्यों हू;
पापी पसु पामर को करत किनारे हैं ।
पूरि मद कंटक को दूरि करि यातें, भूरि
ईरषा कुसन खनि बाहिर निसारे हैं ॥
सूकर कुचाली नीच निन्दक विदारक जे,
बाटिका बिरोधी तिन्हैं दंड दै बिडारे हैं ।
धारे बनमाली अनुराग घट प्रेमसाली,
माली यहि बाग के सुकवि रखवारे हैं ॥

गिरिजी ने अपने अनुराग-बाग के माली की प्रशंसा इस कवित्त में की है अथवा उसका वर्णन किया है, किन्तु यही सुकवि माली काव्य-वाटिका का भी रक्षक है, क्योंकि जिस कवि की रचना में पाप, मद, ईर्षा, कुचाल और निन्दा की बू रह गयी वह सुकवि नहीं कहा जा सकता और न उसके कारण नाममात्र काव्य की वृद्धि हो सकती है। वह कुकवि है, तुक्कड़ है। अतः सुकवियों में अपनी गणना करवानेवाले कवियों को यह कवित्त समझ लेना परमावश्यक है।

बसंत और संत का रूपक किस प्रकार निरूपण करते हैं—

कवित्त

कलित कमंडल कमल कलिका के कर;
किंसुक-कुसुम वर अम्बर सुहायो है।
ठौर ठौर भौंरन की श्रेनी जपमाल मौर,
सजे हैं रसाल जटाजूट सो बढ़ायो है॥
सिष्यन के गीत कीर कोकिला कपोत संग
पढ़ै हैं उमंग चहूं ओर सोर छायो है।
कन्त वनमाली को पठायो लाली सों लसन्त,
आली री बसंत धनि संत बनि आयो है॥

इसी प्रकार इन्होंने सभी ऋतुओं का रूपक अलग-अलग चीज़ों से या लोगों से बांधा है। फिर इन्होंने श्लेषमय षट्ऋतु का वर्णन किया है। बसंत-वर्णन देखिये—

कवित्त

जामैं पंच सुर धुनि सुखमा विराजि रही,
देइ सु विनोद मैं सुवास सदा गति है।
कुंदन की कला चहूं ओर झलामलै होति,
मनों उमापति की उदोत ज्योति अति है॥
माधव सेव रसाल विकसे विसाल वेला;
ठौर ठौर जामैं सुक बानीहू लसति है।

किधौं सुखरासी है बसंत ऋतु दीनद्याल,
किधौं अविनासी पुरी काशी विलसति है ॥

यह कवित्त बसन्त ऋतु और काशी दोनों पर घटेगा। बसन्त ऋतु पक्ष में अर्थ–जिसमें पंच सुर-धुनि (कोकिल की पञ्चम स्वर की बोली) की शोभा शोभित है, प्रसन्नता देती है; सुवास (सुगन्ध) युक्त जिसकी गति (चाल) है। कुन्द (पुष्प) की प्रभा चारों ओर झलक रही है, मानों महादेव की ज्योति उदित हुई है। माधव (भौंरे) रसाल (आम) सेते हैं; बेला (पुष्प) विकसे हैं। स्थान-स्थान पर सुक (तोते) बोल रहे हैं। क्या यह सुखकी राशि बसंत ऋतु तो नहीं है ?

काशी-पक्ष में—जिसमें पंचसुर-धुनि (पंचगंगा) की शोभा विराजती है जो आह्लाद देनेवाली है; सुवास (बसने) से ही गति (मुक्ति) है। जहां कुन्दन (सोना) की छटा चारों ओर छायी है। मानों महादेव की प्रभा उदित हुई है। रसाल (रसयुक्त, रसिक) माधव (विन्दुमाधव) को सेते हैं (पूजते हैं) विसाल (बहुत) बेला (समय) विकसे (बीते) अर्थात् रात्रि में सन्ध्या समय, सुक (शुकदेव) की वाणी (श्रीमद्भागवत की कथा) शोभित होती है अर्थात् व्यास कथा कहते हैं। सो क्या यह अक्षय-पुरी काशी है ?

विस्तार-भय से और ऋतुओं का वर्णन नहीं उद्धृत किया गया।

महात्मा सूरदासजी की तरह गिरिजी भी कालिमा की खोटाई का वर्णन करते हैं। काले रंगवाले सभी भ्रष्ट या बुरी प्रकृति के होते हैं। कोकिल अपने पोषण करनेवाले कौए का उपकार नहीं मानते कौए दोषी हैं, नाग काट लेते हैं, चाहे उन्हें कोई दूध पिलाकर भी जिलाये। भौंरा मालती का रस चूसकर उसे त्याग देता है। काले बादलों की आशा में चातक रटन लगाये रहते हैं, पर वह भी ध्यान नहीं देता। ठीक है, ईश्वर ने काले रंग वालों को ही बुरा बनाया है। पर कृष्णजी में तो इन सब के अवगुण भरे हैं !

कवित्त

कोकिल न मानैं पोस, दीसते भरे हैं काग,
नाग डसैं तिन्हें पय पियाय जे उवारे हैं।
मालती लता मैं फिरैं भाँवरी भरत भौंर,
गंधहीन देखि और ठौर को सिधारे हैं॥
पूरैं नद नारे भारे जल सौं जलद कारे,
चातक बिचारे बूँद हेत रटि हारे हैं।
कारे कारे एक से सँवारे करतार ऊधो,
एते सब कारे स्याम अंगनि पै वारे हैं॥

बिरह से जली हुई गोपियां अपनी दीनता दिखाकर विधि की ही विडम्बना दिखाती हैं ! श्याम का क्या दोष "कारे कारे एक से सँवारे करतार ऊधो"। क्या ही बढ़िया उक्ति है !

श्याम से गोपियां वैर करेंगी, इसे कवि कैसी उत्तम उक्ति द्वारा व्यंजित करता है—

कवित्त

छ्वैहैं नहिं इंदीवर, न्हैहैं न कलिन्दी माहिं,
नाहिं अब सखी स्याम बिंदी हू लगाय हैं।
आनि जनि नीलमनि-भूषननि मेरी वीर,
दूरि करि ए री ! मृगमद को न लाय हैं॥
आली काक-पाली की न सुनिहैं रसाली कूक,
अब तौ तमालन के कुंज में न जाय हैं।
देखि हैं घटान कों न चढ़िके अटान भूलि,
स्याम संग वैर अब हम हू बढ़ाय हैं॥

श्याम (कृष्ण) से वैर करने के लिये श्याम रंगवालों का ही संसर्ग छोड़ देना कैसी बड़ी शत्रुता है ! इसी प्रकार की उक्तियों को सूक्तियां कहते हैं, तुकबन्दियों और व्यर्थ के शब्दों से युक्त छन्दों को नहीं।

अब कुछ अन्योक्तियों को भी देखिए—

कुण्डलिया

वासा यह तरु पैं तुम्हें **बासा** बासर एक।
चकै न इत व्याधा जुरे वाही ओर अनेक॥
वाही ओर अनेक **काक** हौं **बाज** रहैना।
जाल **परेवा** होय जौन दुख सो कहुँ **मैंना**।
बरनै दीनदयाल करै तू **केकी** आसा।
लाल मानि अब टेरि भजो सर आवत वासा॥

बासा (बाज़) के प्रति यह अन्योक्ति है। एक तो अन्योक्ति के कारण यह संसार के मनुष्यों के ऊपर घटती ही है, दूसरे इसी में मुद्रालंकार भी खूबी के साथ आ गया है। जो शब्द मोटे अक्षरों में हैं, वे सब पक्षियों के नाम हैं।

पनिहारी पर एक उक्ति है; देखिये, यह उक्ति संसार के जीवों के ऊपर तथा सांसारिक आवागमन के ऊपर कैसी घटित होती है!

कुण्डलिया

पनिहारी यहिसर परैं लरति रही सब पाह।
रीतो घट लै घर चली उतै मारिहै नाह॥
उतै मारिहै नाह काह तेहि ऊतर दैहैं।
रोय रोय पति खोय फेरि सर पैं फिरि ऐहैं॥
बरनैं दीनदयाल इतै हँसिहैं सब नारी।
ख्वारी दुहुं दिसि परी अरी गँवारी पनिहारी॥

कैसी सुन्दर उक्ति है! जो आत्मा-पनिहारी पुण्य-पात्र भर कर इस संसार-सरोवर से नहीं गयी उसे वहां—ईश्वर के यहां—मार खानी होगी। फिर रोकर उस पति को (पनिहारी के पक्ष में पति का अर्थ लज्जा है) त्याग कर फिर इसी संसार में आना होगा और दोनों ओर हँसी ही होगी, ठीक है। सुकर्म करके पुण्य-पात्र भरना ही श्रेयस्कर है।

प्रातःकालीन उषा की लालिमा पर कवि की उक्ति देखियेः—

कवित्त

कौन सरि करै सरि सरि-सिरताज साथ,
माथ पीटि हाय करि पाप बिलपाय है ॥

पन करि तपन-तनुज को बढ़ायो तेज,
तासु तनुजा को किये चेरी लिये जाय है ॥

तातें दिसि पूरव अपूरव बनाय वेस,
उदयगिरि ऊपर दिनेस रह्यो आय है ॥

करै फिरियाद यादि करि कै अनादि पाहिं,
लालिमा न भोर, भाल भगवाँ सुहाय है ॥

प्रातःकाल की यह लालिमा नहीं है, मस्तक पर बंधा हुआ भगवा (वस्त्र) है। प्राचीन काल में मुसलमानी सल्तनतों में यह प्रथा थी कि फ़िरयाद करनेवाला अपने मस्तक पर लाल वस्त्र बांध कर जाता था। सो यह सूर्य अनादि (ईश्वर) के पास फ़िरयाद के लिए चला है, क्योंकि इसके पुत्र यम (तपन-तनुज) का तेज इन्होंने (गंगाजी ने) प्रण करके बढ़ाया है (नष्ट कर दिया है; बढ़ाने का अर्थ नष्ट करना हैं, जैसे "दूकान बढ़ाओ" दूकान बन्द करो। "दिया बढ़ाओ" दीपक गुल कर दो।) और इसकी पुत्री (यमुना) को सरि-सिरताज (गंगाजी) अपने साथ चेरी बनाये जा रही हैं। भाव यह है कि, गंगाजी ने बहुत से पापियों को तारा इससे यम का तेज नष्ट हो गया, दूसरे यमुना भी इसी में मिल गयी हैं, इसी कारण सूर्य ईश्वर से प्रार्थना करने जा रहा है कि, भगवन् बचाइये, कहीं ये और हमारे लोगों पर भी हाथ न साफ़ करने लगें। इधर गंगाजी की स्तुति हो गयी, उधर एक सुन्दर युक्ति भी आ गयी। अपन्हुति-अलंकार है।

गंगा की स्तुति व्याज से कवि कर रहा है। इसमें देखिये, हास्य कैसा अद्भुत है! यमराज कहते हैं—

कवित्त

कहैं यम, लखो गुन त्रिदस तरंगिनी के
नीके अवनी के बीच याकी कला जाने को ॥
रचति अनेक हर एक ही लहर माहिं,
कहर निहारे होय हहर सयाने को ॥
नाम हैं अनंत सो अनंत हार ह्वै हैं गरै,
खंड खंड सुधानिधि ह्वै है सीस बाने को ॥
बाहन तो एक है सवार के ठिकाने नाहिं,
दरद न जान्यौया ने बरद पुराने को ॥

प्रत्येक लहर में गंगाजी सैकड़ों, करोड़ों महादेव बनाती हैं। उन सबके लिये सर्प, चंद्रमा और सवारी के लिये बैल भी चाहिये। मान लिया कि, अनन्त (शेषनाग) के अनंत हार हो जायँगे और शीश पर के चन्द्रमा को सब खण्ड-खण्ड कर बांट लेंगे। पर नान्दी तो एक ही है! न जानें, कितने कल्पों का पुराना है। उसके तो खण्ड होंगे नहीं। सब को एक ही नान्दी पर बैठना होगा, तो फिर भला वह बेचारा मरेगा या बचेगा? उसे कुछ दर्द न होगा? २, ३ बहुत थे, सैकड़ों जब कस के बैठ गये, तब बेचारे नान्दी की क्या दशा होगी? हे मैया! तू उसके दर्द को नहीं जान पायी! कैसी अनुपम उक्ति है! हास्य रस कैसा कूटकूट कर भर दिया गया है। पढ़ते ही हँसी आ जाती है।

गिरिजी कवियों को कैसी फटकार बतलाते हैं, देखिये—

कवित्त

थूक औ खखार को अगार मुख, ताकों कहि,
चन्द अरविन्द कन्द मोहै मतिहीन को ॥
हाड़ के लसन्त दन्त दुरगन्ध के समेत,
देत उपमान तिन्हैं कुन्द की कलीन को।
मास के निवास कुच तिन्हैं कहैं श्रीफल से,
कंचन की बेलि कहैं तीन्तन मलीन को।

देखत मसान माहिं खाल को बिहाल हाल,
होत नाहिं लाज अहो निलज कवीन को ॥

गिरिजी ने चित्रोत्तर तथा चित्रालंकार में बहुत से छन्द लिखे हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण केवल एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

अन्तर्लापिका, छप्पै

कहा राज तें होत ? सूर केहि में यश पावत ?
कहा धरे निरुपाधि कृत्य। कह को यह आवत ?
कहा कियो मिथिलेश ? कौन चंचल जगमाहीं ?
दाता केहि दै जात देवपुर देवन पाहीं ॥
गुरु कहा कहत है शिष्य पै ? का भंगुर भाख्यो बुधन ?
को जग है दीनदयाल गिरि ? 'मार मोह प्रमदा सुधन' ॥

एक अन्योक्ति देकर मैं अपने लेख को समाप्त करूंगा—

कुरंग, कुंडलिया

तेरे ही बिच वस्तु वह जाको जगत सुगंध ।
खोजत कहा कुरंग ! तू अम्बक आछत अंध ॥
अम्बक आछत अंध, कहा दिसिदिसि भरमैहै ।
अपनी दिसि अवलोकि तवै वाको सुख पैहै ॥
बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर हेरे ।
अंतरमुख ह्वै ढूंढ़ सुगंध सबै घट तेरे ॥

इस अन्योक्ति में ईश्वर को इधर-उधर ढूंढते फिरनेवाले लोगों की खूब हँसी उड़ाई गयी है। कहते हैं कि, मूर्ख ! जिसे तू देश-देशान्तरों में, तीर्थ में, मन्दिर में, मस्जिद में या गिरजे में खोजता है, वह तो तेरे ही अन्दर है; तू इसी में पैठ, आपे को पहिचान, आत्मा को चीन्ह ।

ऊपर दिये हुए इन थोड़े से ही उदाहरणों से बाबा दीनदयाल गिरिजी की कवित्व-शक्ति का पता पाठकों को लग गया होगा

अन्योक्ति-कल्पद्रुम की सभी अन्योक्तियाँ अमूल्य हैं। इनका चित्र-काव्य भी बड़ा उत्तम, और बहुत है। गिरिजी की सूझ कैसी और कहां तक होती थी यह इन्हीं उदाहरणों से प्रकट है। एक बार दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पढ़ने से बाबाजी की कविता का सच्चा नमूना साहित्य-मर्मज्ञ पा सकते हैं। अलंकारशास्त्र के ये पूर्ण-ज्ञाता थे, श्लेष में इनकी कविता बहुत है, रूपक भी अधिक हैं, अन्योक्ति पर तो दो ग्रन्थ ही रचे गये हैं। दृष्टान्त-तरङ्गिणी में दृष्टान्तालंकार की बहार है। बाबाजी एक संन्यासी पुरुष और हठी थे यह बात उनकी जीवनी से मालूम होती है। इन्होंने नायिका-भेद पर क़लम बहुत कम चलाया है। अनुराग-बाग में ही थोड़ा सा श्रीकृष्ण के वियोग का दिग्दर्शन करा दिया है, सो भी क्या ही उत्तमता के साथ कि जिसका करना अन्य कवियों के लिये दुष्कर है।

एक बात और कहनी है। बाबाजी को कविता जितनी उत्तम है उससे कहीं उत्तम बन कर "दीनदयाल गिरि-ग्रंथावली" रूप से श्यामसुन्दर दास बी. ए. द्वारा सम्पादित होकर "नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला" से निकली है। ईश्वर करें, ऐसी उत्तमता किसी दूसरे कवि के साथ न हो। इस "ग्रंथावली" की अशुद्धियों के कारण परेशान होना पड़ता है। यदि छापे की अशुद्धि होती, तो अशुद्धि-पत्र तो होता !

परीक्षा-समिति की तीसरी बैठक

मिति ज्येष्ठ शुक्ला १४ सं० ८१

उपस्थिति—१—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
२—पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी
३—पं० लक्ष्मीधर वाजपेई
४—रामरत्न (परीक्षा मंत्री)

१—पं० रामरत्नजी के प्रस्ताव और पं० लक्ष्मीधर वाजपेई के अनुमोदन पर पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल सभापति बनाए गये।

२—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण सुनाया गया और स्वीकृत हुआ।

३—"रत्न" परीक्षा के लिए लिखे हुए निबंध उपस्थित हुए, और निश्चय हुआ, कि यह पूरी सम्मतियों के साथ अगले अधिवेशन में उपस्थित हों।

४—नरोत्तम स्वामी विशारद प्रेषित "साहित्य शास्त्र" की निबंध-सूची वर्त्तमान स्वरूप में अस्वीकृत हुई।

५—'संस्कृत नाट्य-साहित्य और उसका इतिहास' नामक सूची उपस्थित हुई; क्रम ठीक करने के बाद उस पर निबंध लिखने की आज्ञा हुई।

६—'भागवत धर्म' पर निबंध लिखने की आज्ञा नहीं मिली।

७—खैर और रायपुर के पूरे शुल्कसहित आवेदनपत्र आने पर क्रम से प्रथमा तथा मध्यमा के केन्द्र खोले गए, तथा दरबठ प्रतापगढ़ में भी मध्यमा का केन्द्र बनाया गया।

८—वर्ग बनाने का विषय अगली बैठक के लिए उठा दिया गया।

९—वियोगीहरिजी के मध्यमा के साहित्य २ के परीक्षक होने की असमर्थता पर पं० ठाकुरप्रसादजी शर्म्मा एम ए. उनकी जगह परीक्षक चुने गये।

१०—बाबू गोपालस्वरूप भार्गव का व्यवस्थापकीय त्यागपत्र स्वीकृत हुआ, और उनके विशेष गणित के परीक्षक होने से त्यागपत्र देने पर बा० राधारमणजी विशेष गणित के परीक्षक चुने गये।

११—पं० रामरत्नजी के प्रथमा के साहित्य ३ के प्रश्नपत्र की असमर्थता पर बा० मदनलाल जैन उनकी जगह परीक्षक चुने गए।

१२—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसादजीका परीक्षा-क्रमका तीन वर्ष का निर्धारणवाला प्रस्ताव अगली बैठक के लिए स्थगित किया गया।

१३—पं० कमलाकर द्विवेदी मध्यमा के गणित के परीक्षक चुने गए।

१४—बाबू चन्द्रप्रकाश सकसैना का लौटा हुआ उपाधिपत्र उपस्थित किया गया, और श्रेणी (डिवीज़न) सम्बंधी भूल संशोधित हुई। वह प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण माने जा सकेंगे।

निम्नलिखित परीक्षार्थियों को मध्यमा में बैठने का अधिकार दिया गया—

(१) श्रीसोमनाथ त्रिपाठी　　(४) श्रीगोपाल सनाढ्य
(२) श्रीयदुनाथ शर्मा　　(५) श्रीबंशीधर द्विवेदी
(३) श्रीभवानी प्रसाद गुप्त　　(६) श्रीरामप्रताप उपाध्याय

रामरत्न
परीक्षा मंत्री

हिन्दी-प्रचारक विद्यालय, मद्रास

(उद्घाटन का उत्सव)

श्रावण कृष्ण ११ रविवार, तदनुसार ता० २७ जुलाई को मैलापुर के मनथोम में, "रत्नाकर भवन" में, उपर्युक्त विद्यालय के उद्घाटन का उत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ। मद्रास के सभी प्रतिष्ठित सज्जन और महिलायें उपस्थित थीं। जिनमें से मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जस्टिस श्री. टी. वी. शेषगिरी अय्यर, श्री एस सत्यमूर्ति, श्री. के. भाष्यम्, श्रीयुत संजीवि कामत, श्री. पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी तथा डाक्टर श्री बालकृष्ण शास्त्री जी के नाम उल्लेखनीय हैं। समाचार पत्रों के प्रतिनिधि भी आये थे। आरम्भ में स्थानीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग कार्यालय के व्यवस्थापक श्री० पं० हरिहर शर्माजी के निवेदन करने पर श्री० शेषगिरि अय्यर ने कार्यारंभ किया।

अध्यक्षका प्रारम्भिक भाषण

श्री शेषगिरि अय्यरजी ने विद्यालय के उद्घाटनार्थ अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। प्रातःकाल ठीक ८ बजे "वन्देमातरम्" राष्ट्रीय गीत तथा "आओ आओ, सकल भारत कुमार" स्वागत गान के साथ कार्यारम्भ हुआ। सभापति ने कार्य प्रारम्भ करते हुए कहा कि मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि मेरे हाथों आपने इस शुभ कार्यका प्रारम्भ कराया। जिन लोगों ने उत्तर भारत में भ्रमण किया है वे जानते हैं कि हिन्दी भाषा जानने से कितने फायदे हैं। हिन्दी जाननेवाला मनुष्य तमाम उत्तर भारत में बड़ी आसानी से भ्रमण कर सकता है। यह दुःख की बात है कि हमारे तमिल प्रान्त के लोग बेतरह अंग्रेज़ी के पीछे पड़ गये हैं, और इसी वजह से वे अपनी मातृ-भाषा की ऐसी उन्नति नहीं कर सके जैसी उत्तर भारतीयों ने की है। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो सारे भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हो सकती है। इसलिये मुझे इस विद्यालय के खोलने में बड़ा आनन्द प्राप्त हो रहा है। आज का दिन भी बहुत पवित्र है। श्रावण की एकादशी व भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म नक्षत्र रोहिणी है। विद्यालय का आरम्भ बड़े शुभ दिन को हो रहा है। मैं प्रधान वक्ता श्रीसत्य-मूर्तिजी को भाषण के लिये बुलाता हूं।

श्री सत्य मूर्तिजी

बोलने को खड़े हुए। हिन्दी में भाषण करने की असमर्थता ज़ाहिर करते हुए आपने अपना भाषण अंग्रेजी में शुरू किया। आप का भाषण बड़ा ज़ोरदार और भावपूर्ण हुआ। सभी जानते हैं कि सत्यमूर्तिजी भारतीय राष्ट्र के एक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा निर्भीक स्पष्ट वक्ता एवं कट्टर देशभक्त हैं। आपने कहा कि यद्यपि हमारी भाषा हिन्दी नहीं है, तथापि हम हिन्दी की आवश्यकता को समझते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। पर यह विवाद तब तक चलता ही रहेगा जब तक हमें स्वराज्य की सिद्धि नहीं हो जायगी और कचहरियों व सरकारी दफ़तरों से अंग्रेजी को बिदाई न मिल जायगी।

आपने कहा कि—कोई भी विदेशी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। यह अप्राकृतिक बात है और संभव नहीं। मुझे अपनी मादरी ज़बान तामिल भाषापर बड़ा अभिमान है और मैं इसकी खूब उन्नति चाहता हूं। पर यह जानता हूँ कि दो करोड़ आदमियों की भाषा हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। मैं एक आवश्यक बात कहूंगा—वह यही कि प्रचारकों को बूढ़े-जवान आदमियों को पढ़ाने में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिये। उन्हें अपनी सारी शक्ति नवयुवक व बालकों में हिन्दी के प्रचार करने में लगाना चाहिये। हिन्दी-प्रचार के साथ "राजनैतिक आन्दोलन" का नाम मत जोड़िये। हिन्दी के अच्छे-अच्छे राष्ट्रीय तथा ज्ञान-भक्ति विषयक कीर्तन गा-कर तथा तेलुगु व तमिल भाषा की कहानियों का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी का प्रचार बढ़ाना चाहिये।

श्री सत्यमूर्ति के भाषण के बाद प्रयागस्थ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रबन्धमंत्री श्री पं. द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी का हिन्दी में व्याख्यान हुआ; आपने यह स्पष्ट घोषणा की कि, हिन्दी-प्रेमी दक्षिण भारतीय सज्जनों को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि सम्मेलन का यह कभी भी उद्देश नहीं है कि वह यहां की तमिल तेलुगु आदि (आपकी मातृभाषाओं) को तहस-नहस कर उनके स्थान पर हिन्दी को चलाना चाहता है। वह पहले आपकी मातृभाषाओं को पहला स्थान देता है, उसके पीछे भारतवर्ष के हित के लिये राष्ट्र-भाषा के स्थान पर हिन्दी की स्थापना कर रहा है। आपके भाषण होने पर वेजवाड़े के पिंगलि लजपतिराव प्रचारक भी हिन्दी में कुछ बोले, तदन्तर अध्यक्ष का अन्तिम भाषण होनेपर श्री के. भाष्यंजी ने अध्यक्ष तथा आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया। पान-सुपारी चन्दन वितरण के उपरान्त सभा का कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ। अन्त में, साबरमती आश्रम से श्री० भाई देवदास गांधी का भेजा हुआ पूज्य महात्माजी का सन्देश भी तार के द्वारा पहुँचा, जिसमें उन्होंने विद्यालय की सफलता के लिये शुभाशीर्वाद भेजा था।

(हिन्दी प्रचारक)

साहित्य-समालोचन

(सहयोगी पत्र)

प्रणवीर

(विशेषाङ्क)—सहयोगी के इस विशेषाङ्क का नाम "भगवान् तिलक" है। सहयोगी चार वर्ष से हिन्दी में राष्ट्रीय भावों का जिस सुदृढ़ता से प्रचार कर रहा है यह किसी देश-प्रेमी से छिपा नहीं है। प्रस्तुत विशेषाङ्क लोकमान्य तिलक की चतुर्थ वार्षिक स्मृति के उपलक्ष में बड़ी सजधज के साथ निकाला गया है। इसकी छपाई बड़ी सुन्दर हुई है। लोकमान्य के कई भावपूर्ण सुन्दर चित्र दिये गये हैं। राष्ट्र सूत्रधार तिलक महाराज के संबंध में, इसमें, अनेक गंभीर लेख हैं। अनेक स्थलों पर लोकमान्य तिलक के लिए केवल "भगवान्" शब्द का जो प्रयोग किया है वह कहां तक ठीक है हमारी समझ में नहीं आता। हम लोकमान्य को "तिलक भगवान्" लिख सकते हैं, पर केवल भगवान् नहीं, क्योंकि केवल 'भगवान्' शब्द, जहां तक हम जानते हैं, केवल ईश्वर के लिए ही प्रयुक्त होता है। भाषा-संबंधी अशुद्धियां भी इस अंक में यत्र-तत्र खटकती हैं। यह कदाचित् मराठी प्रेस में छपने का कारण है। हम मुक्त कंठ से कह सकते हैं कि आज तक किसी हिंदी-पत्र ने ऐसा अपूर्व "तिलक अंक" प्रकाशित नहीं किया था। यह अंक प्रत्येक राष्ट्रसेवी को अवश्य संग्रह करना चाहिये।

—"संपादक"

पुस्तकें

रामचरित मानस

सम्पादक—श्री रामदास गौड़; प्रकाशक—श्री बैजनाथ केडिया हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता; छपाई-कागज सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ६४०, सजिल्द मूल्य केवल १)

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने रामचरित मानस का ऐसा सुन्दर और सस्ता संस्करण प्रकाशित कर, वास्तव में, हिन्दी-जगत् का महान् उपकार किया है। इस संस्करण का पाठ बहुत ही शुद्ध और प्रामाणिक है। सहृदयवर गौड़जी का यह संपादन-कार्य स्तुत्य है। पाद-टिप्पणी में, जहां-कहीं पाठान्तर है, उसे भी आपने दे दिया है। आदि में संक्षिप्त भूमिका, मानसकार का जीवन-चरित्र और आलो-चना अधिकांश में विवेचनापूर्ण है। यदि प्रूफ-संशोधन में अनव-धानता न की जाती, तो शुद्ध पाठ का महत्व और भी बढ़ जाता। हम हिन्दी पुस्तक एजेन्सी को इस प्रशंसनीय कार्य के लिये जितनी बधाई दें उतनी थोड़ी है।

जगदीशचन्द्र बोस और उनके आविष्कार

लेखक—श्री सुखसंपत्तिराय भंडारी; प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, अध्यक्ष—पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर; छपाई-कागज़ सुन्दर; डिमाई ८ पेजी साइज़, पृष्ठ-संख्या ८६; मूल्य (अज्ञात)

सुप्रसिद्ध विज्ञानाचार्य डाक्टर सर जगदीशचन्द्र बोस भारत के उन अमूल्य रत्नों में से एक हैं, जो आज भी संसार की आंखों में अपने दिव्य विज्ञान प्रकाश से चकाचौंध लगा रहे हैं। बोस महो-दय के आविष्कारों ने विज्ञान-प्रधान पाश्चात्य देशों में भी हलचल सी मचा रखी है। प्रस्तुत पुस्तक में सुयोग्य लेखक ने बोस बाबू की संक्षिप्त जीवनी और उनके कतिपय आविष्कारों का बड़ी ही सुन्दरता से समावेश किया है। पुस्तक उपादेय है।

रामकोष

लेखक और प्रकाशक—श्री मास्टर रामलाल, जीवन सुधार पुस्तकालय, बाढ़ (पटना); छपाई-कागज़ साधारण; पृष्ठ-संख्या ७७; मूल्य ।-)

प्रस्तुत पुस्तक पद्यात्मक कोश है। इस प्रथम भाग का नाम "एकार्थ दोहावली" है। सुप्रसिद्ध कविवर नंददास-कृत अनेकार्थ माला आदि के ढँग पर इसकी रचना हुई है। पृथ्वी, तरंग, कामदेव सिंह आदि के विविध नाम दोहों में गूथे गये हैं। कविता साधारणतः बुरी नहीं है। कुछ स्थलों पर लेखक को शब्दों में भ्रम हो गया है। कहीं-कहीं पर शिथिलता भी आ गई है। फिर भी पुस्तक विद्यार्थियों के बड़े काम की है। लेखक का यह परिश्रम अभिनन्दनीय है।

दरिद्र कथा

लेखक और प्रकाशक—साहित्याचार्य श्री पंडित चंद्रशेखर शास्त्री, ओझाबंधु-कार्यालय, पटना; छपाई-कागज़ बढ़िया; पृष्ठ संख्या ८८; मूल्य ॥)

शास्त्री जी, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी, हिन्दी के अनन्य भक्त हैं। आपके लेख हिंदी-संसार में अपना ख़ास स्थान रखते हैं। आपकी भाषा में लोच और भावों में जान होती है। समाज शास्त्र पर आपका अच्छा अधिकार है। प्रस्तुत पुस्तक लिख कर आपने वास्तव में "दरिद्रात्मा" भगवान् की षोड़शोपचार पूजा की है। इसमें आपने दिखाया है कि दरिद्रता सुख-दुःख की सच्ची कसौटी है, वह कोई पाप नहीं है, उससे घृणा और प्रेम का रहस्य अवगत हो जाता है, वह भगवान् की एक बड़ी कृपा है और मानव-जीवन के उत्थान के लिए एक सौभाग्य-सूचक चिन्ह है। पुस्तक के आदि के यह २८ पृष्ठ पढ़ने ही योग्य हैं। इसके बाद लेखक ने विश्वामित्र, बुद्ध देव, गुरुगोविंदसिंह, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, रोमिली, विलियम टेल, गेरीबाल्डी आदि दारिद्र्यव्रतधारी

महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनी बड़ी ही रोचकता से अंकित की है। यह छोटीसी पुस्तक दरिद्र भारत के घर-घर में स्थान पानेयोग्य है।

ऊषा चरित्र

लेखक और प्रकाशक—श्री देवीप्रसाद वर्णवाल, विंध्याचल (मिर्ज़ापुर) काग़ज़, छपाई साधारण; पृष्ठसंख्या ८६; मूल्य ॥।) इस पुस्तक में ऊषा और अनिरुद्ध के गांधर्व विवाह का पद्यात्मक वर्णन किया गया है। छन्द वीर है, और भाषा अवधी-मिश्रित व्रज-भाषा। रचना में माधुर्य और ओज का अभाव नहीं है। रस-प्रदर्शन भी साधारणतः पर्याप्त मात्रा में है। एकाध स्थल पर इसमें जो अश्लील वर्णन आ गया है, वह कुछ खटकता सा है। युद्ध-वर्णन में भी रचयिता ने कौशल तो खूब दिखाया है, पर कहीं-कहीं शब्दाडम्बरपूर्ण कृत्रिमता आजाने से प्रकृत गंभीरता तिरस्कृत सी हो गई है। 'यस्युपनाम' 'पउत्र' 'सिरी' जैसे कतिपय शब्दों की कपालक्रिया देखकर भाषा पर तरस आ जाता है। यह सब होने पर भी पुस्तक पढ़ने योग्य है।

—"साहित्यानंद"

प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हो गयी हैं। प्रेषक महोदयों को अनेक हार्दिक धन्यवाद!

बरन (?) माला (पहला भाग और दूसरा भाग)—लेखक—श्री रामदास गौड़; प्रकाशक—श्री बैजनाथ केडिया, हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता। मूल्य =)॥

हिन्दी-तमिल बालबोधिनी—लेखक—श्री पं० हरिहर शर्मा विशारद; प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन—प्रचार कार्यालय, ट्रिप्लिकेन, मद्रास, मूल्य =)

अथ (?) गया कृत्यम्—संपादक—श्रीयुक्त बाबू ललितेश्वर सिंह; पता—आनंदपुर पुस्तकालय, पो० आनंदपुर (दरभंगा) मूल्य ।=)

समुद्र को सैर—लेखक—श्री रवीन्द्रनाथ सेन; अनुवादक—श्री महावीर प्रसाद श्री वास्तव; प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता। सजिल्द मूल्य ॥।=)

मैथिल भक्त प्रकाश—लेखक और प्रकाशक—श्रीयुक्त बाबू ललितेश्वरसिंह; पता—लक्ष्मी पुस्तकालय, पो० आनंदपुर (दरभंगा) मूल्य ≡)

"सम्पादक"

सम्मेलन की स्वागतकारिणी समितिका निर्वाचन

ता० २६-७-२४ को श्री० प्रिन्सिपल लक्ष्मण प्रसादजी एम० ए० की अध्यक्षता में स्वागत-कारिणीके सदस्यों की सभा हुई। निम्न-लिखित अधिकारी चुने गये—

अध्यक्ष—श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

उपाध्यक्ष—१-लक्ष्मणप्रसाद एम. ए. प्रिन्सिपल डी. ए. वी. कालेज

२-श्री० पं० विश्वम्भरदत्त चन्दोला, सम्पादक—गढ़वाली

प्रधान मन्त्री—श्री० पं० अमरनाथ औदीच्य वैद्यशास्त्री

उपमन्त्री—१-श्री ठा० मनजीतसिंह बी० ए०, एम० एल० सी०

२-श्री पं० हरिनारायण मिश्र

कोषाध्यक्ष—श्री० ला० उग्रसेन रईस

आय-व्यय परीक्षक—१-श्री० बा० जयन्तीप्रसाद, मुखत्यार

२-श्री० ला० सन्तलाल पृथ्वीसिंह

प्रधान मंत्री—स्वागत-कारिणी-समिति, देहरादून

सूचना

(१)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तार का पता अब रजिस्टर्ड करा लिया गया है। इसलिए तार भेजनेवाले सज्जनों को अब पूरा पता लिखने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ "सम्मेलन प्रयाग" इतना ही लिखना काफ़ी होगा।

प्रबन्ध मंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

(२)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के किसी विभाग के सम्बन्ध में पत्र व्यहार इत्यादि करते समय अथवा रुपया-पैसा भेजते समय सब सज्जनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर कोई पत्र अथवा रुपया-पैसा न भेजा जाय; बल्कि जिस विभाग के सम्बन्ध में किसी प्रकार का व्यवहार किया जाय, उस विभाग के मंत्री के पद का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा। नाम लिखने की आवश्यकता नहीं।

प्रबन्ध मंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित।
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित